अणिमा-उपन्यास-माला की प्रथम भेंट

वि व र

सम्पादक, नियोजक और सचालक

शरद देवड़ा

विवर

समरेश बसु

•

अपरा प्रकाशन

८१ ए, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता-१

[अनुवादक : इसराइल]

प्रथम संस्करण
दिसम्बर १९६६

प्रकाशक :
महावीर देवड़ा
४१ ए, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता-१

मुद्रक :
महावीर देवड़ा
अपरा प्रिन्टर्स
४१ ए, ताराचन्द दत्त स्ट्रीट, कलकत्ता-१

प्रच्छद :
कमल बोस

अन्तर्सज्जा :
समीर सरकार

मूल्य : ६ रुपये

'अच्छा, अगर हम सब-के-सब सच बात ही कह पाते '

वि
व
र

' या, अच्छा, घटना क्या इस तरह नहीं है कि, एक आइडियल चतुर काँइये जिद्दी और अचूक निशाने के शिकारी ने एक बाघ को मारने के लिये, जाल में फाँस कर मारने के लिये, एक स्वस्थ पुष्ट बकरे को, रात के अन्धकार में, जंगल में पेड़ से बाँध रखा था। और बाघ अपने शिकार की आवाज सुनकर, गंध सूँघता हुआ, दबे पाँव खोजता-खोजता वहाँ आया। देखा। देखने के बाद खेल शुरू हुआ। किताबों में तो यही लिखा है। पक्के शिकारियों के अनुभवसिक्त वर्णनों में भी यही लिखा रहता है कि, थोड़ा खेल (खेल ?) न हो तो शिकारी की प्यास नहीं बुझती। अर्थात् दबे पाँव थोड़ा करीब जाना, फिर लौट आना, चक्कर काटना, चक्कर काटते-काटते दूरी को कम कर लेना, निशाना साधना, फिर एक छलाँग। और छलाँग के साथ ही साथ ।'

मुझे हँसी आ गई। एक आँख दबाकर आईने की ओर देखा। जैसे उस शिकारी को खोजने लगा। बाघ के शिकारी को। फिर यह सोच कर कि, यहाँ उस शिकारी का कोई अस्तित्व नहीं, अपने को ही कई बार आँख मारता हूँ। उस अस्तित्वहीन कल्पित शिकारी को मुँह चिढ़ाकर गाली देता हूँ। छाती के बल लेटे हुए होने पर भी सिगरेट मेरे होंठों में ही थी। और ठीक पलँग के बराबर ही ड्रेसिंग टेबुल का बड़ा आईना है। है, अर्थात् रखा ही गया है इस तरह कि सोये-सोये ही खुद को, खुद को और अगर कोई और हो तो उसको भी देखा जा सके। 'कोई और' कहने से क्या अर्थ निकलता है ? बदमाश। अबोध बनते हो ? 'कोई और' कहने से क्या अर्थ निकलना

है, क्या तुम नहीं जानते ? डवल डेकर वस की भीड़ में या चौरंगी के सिनेमा की लावी में तुम एक ही झलक में, जिस पर जरा भी निगाह पड़ी, उस लड़की को मन-ही-मन नंगा कर देख सकते हो, और पलँग के बरावर आईने में, तुम्हारे नजदीक या एकदम बगल में या अन्य जिस तरह भी हो, 'कोई और' कहने से क्या समझ में आता है, या क्या उद्देश्य होता है, या कौन-सी चालाकी मन की इच्छा बनी छिपी रहती है, क्या तुम यह नही जानते ! देखने की कौन-सी कामना खून को पुकार-पुकार कर हिलोरती है, जिसके लिये तुम 'ए' मार्का विदेशी फिल्म देखने के मकसद से बेचैन हो पहले से ही एडवांस टिकट कटाते हो या ब्लू फिल्म छिपकर देखने जाते हो। क्या तुम्हारे लिये वह अनजान है !

'खचड़ !' घूँट भर धुआँ छोड़ मैंने अपने को ही प्यार से पुकारा। और आईने की प्रतिच्छवि में ही नीता के शैम्पू किये रूखे बालों के गुच्छे की ओर देखा। बालों के जिस गुच्छे को कुछ ही देर पहले मैंने उसकी गर्दन से उठाकर माथे पर रख दिया है। नीता भी, मुँह के बल लेटी है। मैंने ही उसे मुँह के वल कर दिया है। ठीक जहाँ थी, वहीं। वह मेरी छाती से, मेरी गोद से सटी हुई थी ; अब भी उसी तरह है ! मुँह मुझसे विपरीत दिशा में है। आईने की दूरी इतनी है, कि उसकी आँखें और गोरा चेहरा साफ दिखाई पड़ता है। उसकी पूरी देह नजर आती है। उसकी सुगठित खुली पीठ, इतनी सुन्दर और स्वस्थ, गर्दन के पास से दोनों ओर ढालू होकर नीचे उतरती गयी है और एक गहरी लकीर पड़ गई है। ढालू सुकोमल गोरी पीठ उघड़ी हुई है। पीठ क्रमशः त्रिभुज की रेखा में कमर की ओर उतर गई है। उसके बाद लाल नीले रंग के छाप की साड़ी (रंग का यह कौन-सा फैशन है, मैं नहीं जानता।) से मैंने ही उसको कमर तक ढँक दिया है। ढँक देना उचित था, इसी चेतना की वजह से ढँक दिया था, यह मुझे याद नहीं आ रहा है। हो सकता है, मात्र आँख से देखने के अभ्यास की वजह से ही ढँक दिया था। साया तो पलँग के एक किनारे पड़ा ही है, जहाँ ब्लाउज और ब्रेशियर पड़ा है।

नीता मेरी बाईं ओर है। उसका दाहिना हाथ माथे से ऊपर मुड़ा पड़ा है। बायाँ हाथ उसकी छाती से सटा है, केहुनी मुड़ी है। बायाँ हाथ अगर उस तरह न होता तो उसका चौबीस वर्षीय पुष्ट यौवन (यौवन कहकर मैं उसकी सुगठित छाती की बात ही कह रहा हूँ। और इस तरह की बात याद आते ही अपनी संधिवेला में बेलियाघाटा के मौसेरे भाई से सुने गीत की कड़ी हूबहू

याद आ जाती है, ओ मालिन, तेरे बगीचे की डाली में इत्यादि) नजदीक से सम्भवत और भी 'उग्र' हो उठा होता। उसके शरीर में गहनों की बहुलता नही है। दाहिने हाथ में एक कड़ा और बाँये हाथ में घड़ी है।
आईने के प्रतिबिम्ब मे ही उसकी ओर निगाह घुमा कर मैंने देखा। अलसाई भगिमा में देह हिला-हिलाकर हँसा और नीता को ही जैसे गवाह मान लिया, क्योंकि डेढ घण्टा पहले या शायद दो घण्टे हो सकता है, हम दोनों ही आईने की छाया में दोनों को देख रहे थे, और बकवास कर रहे थे। 'देखती हो?'
'हत् असभ्य।'
नीता ने शर्म से हँस कर कहा था। निगाहे बन्द ही रख रही थीं, जिससे आईने की ओर किसी भी तरह नजर न पड़े। लगता था, लज्जा वास्तव में कामना से उद्वेलित हो रही थी और वह सिमट जाने की चाह से ही वैसा कर रही थी। अथवा पर्याप्त खुली और सहज होने के बावजूद औरतों में इन सब विषयों पर लज्जा-टज्जा कुछ अधिक होती ही है। या कौन कह सकता है, देखने की जगह अनुभव के नशे मे खूब गहराई तक डूब जाना ही उन्हें पसन्द आता हो। नहीं बाबा, इतना सब नहीं जानता। मोटे तौर पर यही कि नीता आईने की ओर न देखने की कोशिश कर रही थी। कोशिश ही कर रही थी, क्योंकि मैं देख रहा था, उसकी नजरों को आईना एक सहेली की तरह हाथ से कोंच कर पुकार रहा था, 'ऐ, ऐ नीता, देख, देख।' और उसी पुकार को सुन, चकित हो, कभी-कभी आईने की ओर देख लेती थी और दोनों हाथों का देह के विभिन्न अगों पर रखना चाह रही थी। वह वेश्या तो है नहीं कि एक क्षुब्ध घृणा से प्राय चेतनाहीन देह को एक आलोकित घर मे बाजार की तरह खोल-फेंक कर डाल दे जहाँ अवलोकन या अनुभूति का कोई मूल्य या तात्पर्य ही नहीं होता। निश्चय ही यह सब मेरी धारणाएँ हैं। जैसे कि सर्कस के नेपथ्य में मैनेजर की आवाज सुनाई पड़े, 'ओ रे वीरेश क्लाउन! इस आखिरी खेल को तुम और निपटा आओ।' 'सर, मैने नाक और पूँछ खोल कर रख दी है।' 'फिर से लगा लो।' 'अच्छा सर।' उसके बाद नाक और पूँछ लगाते समय वह मन-ही-मन कहता है—'शूअर का बच्चा! मैनेजरी करने आया है। साले ने दो महीने की तलब नहीं दी है। ठीक से खा तक नहीं ' कहकर दाँत पीसता हुआ हूक् हूक्-क् की आवाज निकालता, हँसता हुआ मच पर जाता है। और खेल दिखाकर लौटते वक्त एक ही क्षण मे भूल जाता है कि, क्या खेल दिखाकर आया है, सिर्फ विक्षोभ ही अन्दर भरा रह जाता है। बहुत कुछ उसी तरह मैं कह रहा हूँ।

छोड़ो इन सब बातों को। मेरी धारणाओं से क्या होता है। मोटे तौर पर बाजार की वेश्या और नीता एक नहीं है, यह मेरा विश्वास है। क्योंकि उसके जीवन में भी तरह-तरह की बाधा-निषेध के बावजूद इच्छानुसार पुरुष के संसर्ग में आने का उपाय है। ऐसा नहीं कि पुरुष का संसर्ग ही उसकी जीविका हो। शायद अब भी अच्छा लगने वाली बात ही उसके साथ है। पता नहीं, ऐसी औरतों को ही स्वेच्छाचारिणी कहा जाता है या नहीं। क्योंकि नीता अपने अच्छा लगने को ही मुक्त होकर काम में लाती है। जैसे मैं। मैं भी उसके अच्छा लगने की मुक्ति के काम में आता हूँ। मैं भी स्वयं में ऐसा नहीं हूँ क्या? कौन नही है, यह नहीं जानता। इस बारे में अच्छा लगने की आजादी को काम में लाने से कौन बाज आता है? कौन स्वेच्छाचारी नहीं है? मेरा तो खयाल है, पूरी पृथ्वी ही स्वेच्छाचारियों के भार से दबी है।
किन्तु दूर्‌र्! भाड़ में जाय पृथ्वी! नीता के अच्छा लगने की बात सोच रहा था। अच्छा लगना अब भी है, इसीलिये आईना या छाया, या मैं, उसके लिये कुछ भी शायद नितान्त प्राणहीन नही था।
'अपने को न देखने की बात ही अगर सच हो तो आईना उस जगह रखा ही क्यों गया है?'
मैंने पूछा था।
'नही जानती। फालतू।'
आम औरतों की तरह नीता ने होंठ फुला कर धमकी के स्वर में हँसते हुए कहा था। इसका अर्थ है, वह अच्छी तरह जानती थी। इसीलिये इस वक्त आईने की ओर देखने पर वह सब बातें याद हो आईं और मेरी निगाह नीता पर ही टिक गई। उसको ही जैसे साक्षी मान लिया। कई बार सिगरेट का धुआँ उड़ाने के बाद बाँया हाथ उसकी पीठ पर रखा।
इस वक्त मैं अच्छा लग रहा हूँ तो! आल ओपेने टैरेलिन शर्ट के सब बटन ही खुले हैं। आस्तीनें मुड़ी हैं। ऑलीव ग्रीन ड्रेनपाइप पैंट कमर से पाँव तक कस कर चिपका है और ऑलीव ग्रीन का ही मोजा है। प्वायंटेड इटालियन काला जूता मेरे पाँव पर उठा हुआ है। जिस चीनी कारीगर ने जूता तैयार किया था, उसने कहा था, 'तुमको अब जेब में छूरी नही रखनी पड़ेगी'। जिसका अर्थ है, नोक इतना पतला और तेज है कि छूरी का काम चल जायेगा। चीनी ने और भी कहा था—'इफ यू शत एनिबोदी ऑन द बेली, तो बेली फात जायेगा।' यह कह, सोने के दाँत दिखा, वह खूब हँसा था। आईने में जूते के तले की छाया पड़ रही है। जूते के तले में अधिक मैला लगा है क्या? लगा

है, लेकिन उतना नहीं। नीता ने जूता खोल देने को कहा था। डनलोपीलो के गद्दे पर चमकदार सफेद चादर है। पलँग भी तो सुन्दर ही है। नेचरल कलर का विलायती पलँग है। रंगीन फर्श के बीच में उसका एक हल्का प्रतिबिम्ब पड रहा है। सर्वोपरि नीता, जिसके साथ मैं एक ही पलँग पर लुढक गया था, भी रूपसी है, युवती तो हजार बार है और पोशाक-चोशाक भी खूब ही फैशनेबल है।

उसने कहा था, 'जूता खोलो।'

मैंने कहा था, 'लो अब जूता खोलो। छोडो भी।'

नीता ने कहा था, 'बिस्तरा मैला नहीं होगा क्या ?'

'और अब कितना होगा।'

नीता के कुछ और कहने के पहले ही मैं गद्दी पर छलाँग लगा गया। नीता थोडी देर स्तम्भित-सी हो गई थी। उसने भौं मटकायी थीं जिसे विरक्ति का लक्षण कह सकते हैं। मै कुछ पगला गया था, नीता भी, लेकिन मै कुछ अधिक ही पगला गया था। इसीलिये उसके स्तम्भित हो जाने या भौं चढाने का असर मुझ पर नहीं हुआ। शाम को प्रतियोगिता-मूलक नौकरी में एक आदमी की बहाली के लिये रूबी दत्त के पास मेरे जाने की बात थी, जिससे उम्मीदवारी का पिछला दरवाजा खुल जाय। कलकत्ते मे रूबी दत्त के मुकाबिले *रूबी देवी के नाम से ही वह अधिक जानी जाती है।* देवी तो वह सचमुच ही है, कोई-कोई तो उसे काली कलकत्तावाली भी कहता है। अर्थात् कलकत्तेश्वरी या बंगेश्वरी कहने में भी कोई नुकसान नहीं। मेरी इच्छा तो ठाठेश्वरी कहने की होती है, कभी-कभी मन-ही-मन कहता भी हूँ। वही रूबी दत्त अगर सामने खडी हो तो कितने पिछले दरवाजों के ताले निःशब्द खुल जाँय। पता नहीं, इस औरत के पास कौन-सा जादू है, यह मुझे नहीं मालूम। लेकिन यह मालूम है कि बडे-बडे क्षमताशील व्यक्ति इसके आँचल में बँधे हैं। बहुत लोगों का कहना है कि औरत जाँबाज है। औरत जाँबाज हो तो कलकत्ता के क्षमताशील लोगों को आँचल में बाँध लेगी, यह बात मै नही मानता। विद्वेषी लोगों को किसी-न-किसी को उपाधि बाँटते रहना अच्छा लगता है। सुनने में जो कर्णप्रिय हो, उसके अर्थ-चर्य की आवश्यकता नहीं होती है, ठीक है न ? तब तो डेसडेमोना भी जाँबाज थी। उसका रूप जाँबाज का रूप क्यों नहीं था ? उसने तो इतने बड़े सेनापति को आँचल में बाँध रखा था। जो हो, रूबी दत्त के साथ मैं डेसडेमोना की तुलना नहीं करता। उसमें फिर भी निष्ठा, पवित्रता, सतीत्व इत्यादि था। रूबी दत्त

विवाहित है। हाबुल दत्त अर्थात् जो गंदे व्यापार करता है, नशे में चूर रहता है, टेंटिया बदमाश के रूप में मशहूर, उसी लोकेन दत्त की वह स्त्री है। शारीरिक पवित्रता या सतीत्त्व जैसी मूर्खता या शालीनता में उसका विश्वास नहीं है। तीस-बत्तीस की उम्र में भी उसमें रूप-यौवन का अभाव नहीं है। पेट में विद्या की कमी नहीं है, सोसाइटी, कल्चर की जानकारी भी उसे है। यद्यपि मात्र इन सब मूलधन से ही क्षमताशील लोगों को कब्जे में नहीं किया जा सकता। इस तरह की तो बहुत हैं जो कलकत्ते में घूम रही हैं, जो स्वी-दत्त बनना चाहती हैं, किन्तु बन नहीं पाती। मेरे बगल में लेटी, यह नीता भी शायद यही चाहती थी। लेकिन यह वैसा नहीं बन पाती। तब स्वी दत्त में निश्चय ही कोई प्रतिभा है। प्रतिभा! कौन जानता है, क्षमताशील लोगों को कब्जे में करने के लिये स्त्रियों को किसी प्रतिभा की आवश्यकता होती है या नहीं। अगर ऐसा नहीं है तो दूसरी औरतें भी स्वी दत्त क्यों नहीं बन पातीं? आँचल में चाबी का भारी गुच्छा तो सब लटकाना चाहती हैं।

इस विषय में प्रतिभा को 'काम में लाना'—कहा जा सकता है या नहीं, कौन जाने। यही तो उस दिन सुना था, बड़े कानून दाँ हारान नियोगी (समझो, विराट कानून दाँ का नाम है हारान नियोगी! मुझे तो लगता है, एक मात्र कारखाने की किरानी शान्तबाला के पति का ही यह नाम हो सकता है।) बरस भर से एक लड़की को लिये पड़ा है। लड़की अर्थात् यहाँ उपपत्नी का ही अर्थ ग्रहण किया जा सकता है। आधी उम्र बीत गई है। विवाहित है। एच० एन० (हारान नियोगी) के दोस्त और परिचित सभी हैरान रह गये हैं। पखवारे या महीने-महीने जो आदमी लड़कियों को बदलता रहता है, नई-नई को प्राप्त करता है, बरस भर से एक ही लड़की के साथ है। बरस भर शेष कर लेने के कारण ही हैरानी है और लोगों को जलन होती है। सुना, जलन मुझे भी होती है। किसे जलन नहीं होती, मुझे नहीं मालूम। और जलन होने का अर्थ ही होता है कि स्वाद बदलने के लिये सबों की जीभें ललक रही हैं। प्यास कलेजे में ही सूख जाती है, किसी की अक्षमता से, तो किसी की मारे भय के। फिलहाल सब अवाक रह गये हैं, क्योंकि यह (घटना) प्रायः अघटित जैसी है। फिर भी अगर यह लड़की पहले की तमाम लड़कियों के मुकाबले देखने में अनारकली होती तो एक बात थी। ऐसी बात भी नहीं। अब तो सब यही सोच रहे हैं कि यह लड़की एच० एन० के पास शायद हमेशा के लिये ही रह गई। इस वक्त यह लड़की एच० एन० के आस-पास के लोगों के लिये दुश्मन हो गई है। क्योंकि धीरे-धीरे लड़की

कुछ-कुछ क्षमता का अधिकार प्राप्त करती जा रही है। एच० एन० के धन-दौलत से शुरु कर उसकी बुद्धि-शुद्धि सब कुछ पर ही लड़की का कुछ-कुछ अधिकार होना स्वाभाविक है। अगर सहसा कोई प्रतिद्वन्द्विनी न आ जाय तो अधिकार का स्थायी हो जाना कोई विचित्र नहीं। किसी-किसी ने गम्भीरता से गर्दन हिलाकर कहना शुरु किया है, 'तो क्या जीवन की सन्ध्या में आकर एच० एन० को प्यार प्राप्त हो गया?' उल्लू! इसके सिवाय ऐसे लोगों को मैं और कुछ नहीं कह सकता। इसे काव्य करना नहीं, बकूता करना कहते हैं। जीवन की सन्ध्या में, प्रेम! पीरित का हलुआ! बिल्वमंगल और चिन्तामणि, पुरवा और उर्वसी (उर्वशी) नहीं? तब इतने दिनों से लोग क्यों कहते आ रहे हैं कि फलाँ की परी जैसी बीवी है, फिर भी वह एक कालीकलूटी को लिये पड़ा है। पहले के लोग होते तो कहते—इसी का नाम परवरशन है। सेक्स एड्जेस्टमेंट कहने से, लगता है, गाली नहीं समझी जाती? या सेक्स एटैच्मेंट? या कि यह अब वैसा विज्ञान सम्मत नहीं है। अब तो सब साइन्स जानते हैं, सब साइन्टिफिक हैं। जो हो, मोटे तौर पर मैंने यही समझा है कि एच० एन० की भूख को यही लड़की जगा सकती है, तृप्त कर सकती है। अतएव यह आइसक्रीम है, जिसको जम जाना कहते हैं। अब इसे प्रेम कहो या हिपनौटिज्म, जो खुशी।

इस बात को क्या लड़की की प्रतिभा कहना होगा? स्वी दत्त के पास भी इस तरह की प्रतिभा है या नहीं, खैर जो हो, दरअस्ल बात तो यह है कि, यह बड़ी-बड़ी चाबी के गुच्छों वाली स्वी दत्त मुझे कुछ अच्छी नजर से देखती है। क्यों देखती है, और मुझमें भी इस तरह की प्रतिभा है या नहीं, कौन कह सकता है। प्रतिभा! प्रतिभा की लूट। लेकिन स्वी दत्त ने मुझको स्वी ही कह कर पुकारने का हक़ दिया है। और 'तुमको अगर मेरी जरूरत-जरूरत पड़े तो बताना' या 'समय मिले तो जरा खोज-खबर लेना'—इस तरह का अधिकार मुझे दिया है। स्वी दत्त! समय मिले तो! जरूरत-वरूरत!

घूँट भर धुआँ उगल, मैंने आईने में खुद से ही पूछा, और हँसी के कारण डनलोपिलो की गद्दी सहित मेरा शरीर नाचने लगा। नीता का शरीर भी, जिस तरह पड़ा था, जैसे मेरे साथ उसने भी ताल दिया। और हँसी रुकते ही मेरी आँखों के सामने स्वी दत्त का चेहरा चमकने लगा। कैसे समझाऊँ, कि-त-नी जरूरत है, कि-त-ना अनमोल समय तुम्हारे लिये दे सकता हूँ—स्वी दी, न जाने क्या है, आँखों में, शरीर में, भगिमा में, कि मैं परवाने की तरह पंख फड़फड़ाने लगता हूँ। यही न कि, उम्र में कुछ बड़ी हो। किन्तु

कब आयेगा वह दिन—'मेरी आँख के इस्सारे (इशारे) की पुकार पर हाय'…।
अच्छा, अगर इस तरह का एक यंत्र आविष्कृत हो जाता, छोटा-सा एक यंत्र, पाकिट या वैनिटी वैग में ही जिसे रखकर चला जा सकता, और तुम जिसके मन की वात जानना चाहते, वही वात उभर आती उस यंत्र में, वह जो सोचता, वही तुम्हारे यंत्र में आ जाता तो कैसा रहता ? मान लो, स्वामी के पास एक है, प्रेमी के पास एक, प्रेमिका के पास एक, पुलिस और अपराधी के पास दो, तो दुनिया का रूप कैसा होता ? अनेक दोस्तों और सहेलियों को देखा है, वे इस तरह के यंत्र पर वातचीत करते समय हँसते-हँसते सिहर जाते हैं। भय से सिकुड़ जाते हैं। कहते है, 'नही, नहीं, ऐसे यंत्र की जरूरत नहीं भाई ! सब रसातल चला जायगा, खून-खरावा होने लगेगा।' इसका अर्थ है, किसी को भी अपने पर विश्वास नही, कोई भी किसी की पकड़ में नहीं आना चाहता। स्वामी-स्त्री, प्रेमी-प्रेमिका, वन्धु-वान्धवी, और दारोगा-चोर की वात तो छोड़ ही देता हूँ। सभी लोगो के पास ऐसा कुछ है, जो न कहा जा सके, ऐसा कुछ जो दोनों एक दूसरे को कभी नहीं कह सकेंगे। कह तो सकते ही नहीं, वरन् जीवन भर एक दूसरे से कैसे अच्छी तरह छिपा कर रखा जा सके, कितने सुन्दर तरीके से, दोनों परस्पर एक-दूसरे को पता नहीं लगने दें, इसकी ही कोशिश करेंगे। यही तो दिखाई देता है सव जगह। आखूचर। घर-वाहर, रास्ता-घाट, प्रतिक्षण इसी गोपनीयता के लिये ही तो कितना आडम्वर, कितनी वातें, कितना विचित्र आचरण !
लेकिन क्या सच ही एक ऐसे यंत्र की जरूरत है ? यंत्र के विना भी क्या लोग एक-दूसरे को नहीं पहचानते हैं ? नहीं जानते हैं ? जानते भी हैं और पहचानते भी हैं। 'यह अन्याय है, यह पाप है,' मन-ही-मन कहने के वाद, परस्पर एक-दूसरे को स्वीकार लेते हैं। जिसका नाम एड्जेस्टमेंट है। तुम जो हो, वही मैं भी हूँ। पाप के साथ परस्पर एक तरह का खेल खेलकर, समझौता कर, लोग नहीं चल रहे है क्या ?
तव, स्त्री दत्त या मेरे पास इस तरह का यंत्र रहने से ही क्या लाभ होता ? क्या हम एक दूसरे को नहीं पहचानते ? स्त्री दत्त क्या मेरी आँखों में देखकर वातें नहीं करती ? मैंने क्या अक्सर ही स्त्री दत्त को नेक नजर वाली, तिरछी निगाहों में थोड़ा प्यार-भाव मिला कर, हँस कर यह कहते नहीं सुना है, 'क्या हीरो चेहरा है, विलकुल पेशेवर लेडी कीलर है !' यंत्र के अलावा भी, क्या हमारा परस्पर एक दूसरे से मिलना-जुलना, मेरी हुक्म-वरदारी, एक पाँव पर खड़ा होना, मेरी करुणायाचक और सचकित भाव-भंगिमा, और फलस्वरूप स्त्री दत्त

की खुशी और तृप्ति और मेरे हर काम में उसकी सस्प सहायता, क्या हमने परस्पर महसूस नहीं किया है।
किया है, और लगा भी हूँ। यहाँ मुझे ही लगा रहना होगा, क्योंकि स्वी दत्त बहुत ऊँचाई पर है, उसके बहुत-से भक्त हैं। मुझे लडना होगा, लड कर ही लेना होगा। यही तो, आज ही नीता कह रही थी। नीता स्वी दत्त से बहुत अधिक सुन्दर है, उसकी उम्र भी बहुत कम है, होंठ फुला कर अभिमान के स्वर में उसने कहा था—'अब तुम्हारा स्वी दत्त के पास आना-जाना क्या मुझे अच्छा लगेगा ?'
बात ऐसे समय कही गई थी, जब मै सर से पाँव तक खुशी में डूबा था, सुख के ज्वार में पागल उसे प्यार करते-करते प्राय आत्मविस्मृत हो मैने अटकते हुए कहा था, 'सच कहता हूँ, नीता! तुमको—तुमको मै कभी भी भूल नहीं पाता हूँ, तुमको यदि हमेशा के लिये पा जाता, अकेले अपने लिये ।' उसी समय उसने वह बात कही थी। उसकी चेतना मेरे पागलपन के प्रभाव से तब भी बची हुई थी, मैं समझ गया कि इसीलिये उसने पूरे होशो-हवास मे मुझे वह ठोकर मारी थी। मैंने कहा था, 'दिमाग खराब है तुम्हारा, स्वी दत्त कितनी बडी है।'
'बडी है तो क्या ?'
'इस समय वाहियात बातें छोडो।' मैं उसे प्यार करके चुप करा देना चाहता था। और उसके प्रति भी जवाबी कटाक्ष करने का मेरा दिल हो रहा था। वैसे, यह सब कहने-सुनने से कोई फायदा नहीं होता। क्योंकि मैं तो खैर रोज स्वी दत्त के पास आता-जाता हूँ, लेकिन क्या नीता तुलसी की धुली पत्ती है? इस घर में, नीता की भाषा में ऐपार्टमेंट मे, इसी पलँग पर, इसी बिस्तरे पर, इस तरह सोया हुआ क्या मैं ही अकेला व्यक्ति हूँ, जो उस आईने मे इस तरह अपने को देख रहा हूँ, और नीता को देख रहा हूँ? क्या और किसी ने नहीं देखा है? इस तरह की बातें मुझे सब मालूम हैं। हाँ, शुरु-शुरु में मेरी जरूर यह धारणा थी कि नीता मेरी है, सिर्फ मेरी, हममे प्रेम हुआ है। पेरेम।
जिस दिन सर्वप्रथम मेरी यह धारणा टूटी, और मैं जान पाया कि मैं अकेला नहीं हूँ, उस दिन, हाय भगवान! मुझे कितना क्रोध आया। कितना दुख हुआ! हालाँकि उसके दो दिन पहले ही दक्षिण बगाल के एक गाँव में मैं घूमने गया था तो अभी-अभी चटखने वाली सोलह-सत्रह वर्ष की लडकी को बलिहारी है उस लडकी की भी। गाँव की निरीह गाय की आँखों वाली लडकी, मेरी आँखों की चमक देखकर ही पिघल गई थी। हँसी थी, और प्राय निडर ही क्या बताऊँ—लडकी को प्यार-दुलार करने के बाद मेरे मुँह

से निकल गया था, 'जा : साला !'
फिर भी सर्वप्रथम जिस दिन यह जान पाया, कि नीता अकेले मेरी नही है उस दिन, उफ ! 'ए मर्डर, ह्विच आई थॉट सैक्रीफाइस : आई मा दाइ हैंडकरचीफ।' लेकिन मैं उसके बाद कई दिनों तक अकेला-अकेला ही हँसता रहा, तुम साधु पुरुष हो ! और नीता चरित्रहीन, विश्वासघातिनी है ! तुम्हारा मर ! जो तुम हो, वही मैं हूँ। यह तो जानी-बूझी बात है, बाबा !
उफ् ! ख्याल ही न रहा, कब सिगरेट खत्म होने को आई, आग की गर्मी होंटों को छू रही है। शायद होंठ जल ही गये। लाल हिस्से के साथ अटके आग के टुकड़े को जल्दी में हाथ से हटा दिया और बॉई ओर घूम गया। नीता की खुली पीठ पर रखे बायें हाथ पर शरीर का बोझ रख, दूसरे हाथ से कुछ दूर पड़े टी-पाय पर रखे एश-ट्रे में सिगरेट का टुकड़ा डाल दिया। होंठ चाट कर महसूस करना चाहा, सच ही जल गया है क्या ? आईने के प्रतिबिम्ब में होंठ उलट कर देखना चाहा, शायद फफोला नही उठा है। लेकिन जलन हो रही है, ताप लग रहा है। और इसका अनुभव करते समय लगा, बाँया हाथ बर्फ पर पड़ा है। ठंडा और सख्त, प्रायः भूल ही गया था कि नीता डेड, यानी मरी पड़ी है। लेकिन अब तक तो इतना ठंडा नही लगता था। इतनी थी भी नही। अब लगता है, जैसे ठंडी और सख्त हो गई है। उसकी सुगठित पीठ की वह कोमलता अब अनुभूत नही होती।
मैं दाहिने हाथ से अपना गाल और मुँह छू लेता हूँ। कितना फर्क है ! अगहन का महीना, ठण्डक तो है ही। तब भी मुझे अपने हाथ, मुँह पर ठण्डक के बावजूद गर्मी महसूस होती है। और नीता के शरीर की ठण्डक, इसे ही शायद 'मृत्यु की शीतलता' कहते हैं। और मेरे अन्दर क्या यह 'जीवन की उष्णता' है ? हो भी सकता है। लेकिन नीता जो निश्चित रूप से 'मृत्यु शीतल' है, इसमें कोई सन्देह नही। इसके पहले मृत मनुष्य की देह पर मैंने कभी हाथ नहीं रखा था। मृत के प्रति श्रद्धा दिखाना धर्म है। जानता हूँ, लेकिन सच कहूँ तो मेरा मन घिन से भर उठता था। इस तरह, जैसे मैं साँप की देह पर हाथ रख रहा होऊँ। भय मिश्रित सिहरन मुझ में होती थी। लेकिन नीता के सम्बन्ध में, मुझको ऐसा कुछ नही लगा। शायद इसलिये तो नहीं कि, उसकी देह मेरे लिये अधिक जानी-पहचानी थी ? या इसलिये तो नहीं कि उसकी देह हमेशा मुझको बेहद सुन्दर और अच्छी लगती रही है, और अब भी उसकी पूरी देह में एक सुन्दर गंध है ? मुझे घिन नहीं लगती और शव के प्रति एक अलौकिक भय से मैं सिहर नही रहा हूँ। ऐसा कुछ है जरूर,

जिस कारण उसके पास से हट जाने का मेरा दिल नहीं होता।
मैं अपनी हथेली उसकी पीठ से हटाता हूँ। किसी तरह का दाग नहीं पड़ा है। फिर भी, दवाव से उँगलियों के छाप का हल्का गड्ढा जैसा बन गया है। इसके पहले, जब कभी मैंने उसकी गोरी देह पर जहाँ कहीं इस तरह का दवाव डाला है, वहीं लाल दाग उभर आया है। इस वक्त कोई रंग नहीं उभरा। मर जाने के बाद शायद किसी तरह का दाग नहीं उभरता। घड़ी के फीते से उसकी पीठ पर दवाव डाल कर देखा, हाँ, सच ही, छाप गहराई तक पड़ती जा रही है। मैंने उसका हाथ खींच कर सीधा करना चाहा। लेकिन हाथ ऊपर उठा नहीं, मानो नीता हाथ को बलपूर्वक उठने नहीं देना चाहती हो, मैं उठकर दूसरी ओर घूमे हुए उसके मुँह पर झुक गया। मुँह के करीब मुँह ले गया। नहीं, इस तरह के सन्देह का कोई कारण नहीं है कि, वह मरी नहीं है। मैं मुँह की ओर देख रहा हूँ, आँखें तो प्राय खुली ही हैं, मानो बिस्तरे की सिलवटों की ओर वह निगाहें झुका कर देख रही हो। क्लान्त और बिखर कर, बाजवक्त जैसा वह किया करती थी, पीछे घूमकर, आगे होकर लेटी हुई अवस्था में, आँखें अधखुली रख एक ओर देखती रहती थी, और बीच-बीच में होंठ हिलाकर, बहुत कुछ प्रलाप के स्वर में बकने लगती थी, 'अच्छा, बता सकते हो, जीवन का क्या अर्थ है?' 'सचमुच मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता।' 'कभी-कभी जी करता है, आत्महत्या कर लूँ।' इसी तरह की हजार बातें। यह सब बातें दरअसल सच नहीं होती थीं। आलस्य, आराम से निढाल हो, स्वप्न के विलास में डूबी वह धीमी आवाज में कहती, 'हाँ, यही ठीक है, खून के एक चकित कर देने वाले नशे में डूबी हूँ, दुख की जितनी बातें हैं, अभी ही कहने को जी करता है।' भोजन के बाद आराम के लिये करवट बदलने जैसा ही यह सब होता। शब्द चाहे जितने कटु हों, तात्पर्य यही होता। आदतन ऐसा प्रलाप करने वाली वह लड़की नहीं थी। इसी का नाम है ढंग करना। ढाका जिला की माँ दुलार से अपनी सुहाग चढ़ी बेटी को कहती है, 'ढंग न करो।' यह तरीका कुछ कुछ 'ढंग' जैसा ही है। इस शब्द की उत्पत्ति कहाँ से हुई है, कौन जाने। नीता भी जब नीची आवाज में धीरे-धीरे इस तरह से बोलती तो मुझे लगता, ढंग कर रही है।
जो हो, इस वक्त नीता उसी तरह पड़ी है। दूसरे वक्त, जब वह इस तरह पड़ी होती और मैं अपना चेहरा उसके ऊपर झुका लेता, तो वह समझती कि, -मैं उसे चूमना चाहता हूँ। लेकिन वह उस वक्त कुछ भी नहीं कहती, निश्चल,

निर्विकार पड़ी रहती, प्रतिदान तो दूर की बात है, वह इसी तरह पड़ी रहती, जिस तरह इस वक्त पड़ी है। इसी तरह, मरी लाश की तरह। लेकिन उस वक्त यह होंठ उत्तप्त, नर्म और भीगे-भीगे होते। और साँसें उठती-गिरतीं, नाक के दोनो किनारे काँप-काँप उठते। होंठ दोनो ठीक इसी तरह रहते, लिपस्टिक के रंग चूस लेने के बाद (इस वक्त तो उसके होंठो का सब रंग मेरे पेट में है।) हल्का दाग रह जाता, जिस वजह से स्वाभाविक लाल रंग फीका नजर आने लगता और दोनो होंठो के बीच एक ऐसी फाँक होती; जिससे ऊपर के दाँतो की पंक्ति दिखाई पड़ती, जैसा कि इस समय है। लेकिन नहीं, इस समय हू-ब-हू वैसा नही है। इस समय कुछ अधिक फाँक हो गयी है। ऊपर के दाँतो की पंक्ति के बीच से मैं मुँह के अस्पष्ट अन्धकार के बीच उसकी जीभ भी देख रहा हूँ।

मैंने उसके गाल पर हाथ रखा। ठंडा। थोड़ा दबाव डाल कर देखा। नहीं, उतना नर्म नहीं है, जितना जिन्दा रहने पर था। थोड़ा सख्त हो गया है, नर्म जगह पर फोड़ा उठने के बाद जैसा होता है। होंठो को छुआ। ठंडा। दबाया। और प्यार-दुलार से जिस तरह करता था, उसी तरह नाखून से चिकोटी काट लेता हूँ। लेकिन पहले जैसा नम-गर्म नहीं है, कठोर हो गया है, अच्छा, दाँत की फाँक मे उँगली डालकर जीभ छू कर देखूँ? जीभ जैसे अन्दर ही ऐंठ कर रह गई है। लेकिन ठीक ऐन वक्त अगर उसका मुँह बन्द हो जाय तो? मृत अवस्था में बाजवक्त शव का कोई-कोई अंग हरकत कर बैठता है। मैं अगर मुँह में उँगली डाल देता हूँ और उसी समय टक् से उसके दाँत बन्द हो जाते हैं तो उँगली कच् से कट कर अन्दर ही रह जाती है—हमेशा के लिये। उफ्! उँगली ही खत्म समझो।

मैं अपने प्रतिबिम्ब को देखता हूँ। देखता हूँ, मेरी आँखें गोल हो गई हैं। बाल ललाट पर बिखर गये हैं और उनकी झुरमुट से झाँकती मेरी दो निगाहें ···मुझसे हँसे बिना रहा न गया। और मैंने खुद को ही फिर एक बार आँख मार कर प्यार किया—साला! (शाला) उसके बाद ही अपनी छाया की ओर देखकर मन में आया—मैं देखने-सुनने में ज्यादा खराब तो नहीं हूँ। सिनेमा स्टार होने के लायक हूँ। एक-दो बार बातें भी चली थी। पाँच वर्ष पहले एक फिल्म डाइरेक्टर के पास बहुत बार गया था। उसने आश्वासन भी दिये थे। तब क्या मालूम था कि इस तरह के आश्वासन मेरे जैसे अनेक आलतू-फालतू को दिये जाते हैं। बीच में मैं, जिसे मूवी स्टार कहते हैं, बन गया था। उल्लू! (इसके अतिरिक्त अपने को और क्या कहा जा सकता

है।) अब तो एक तरह से ठीक है, उस वक्त तो बालों को बिलकुल दूसरी तरह बना लिया था। चेहरे पर हमेशा क्लर्ड स्नो। बात बोलने की मात्र-भंगिमा बिलकुल बदल गई थी, जैसे हमेशा ही अभिनय कर रहा होऊँ। जो भी फिल्म देखकर आता, उसी की नक्ल करता। मेरे अन्दर उस वक्त आशा और विश्वास का झमेला लगा था। 'चेहरा तो आपका अच्छा ही है। इसी तरह लम्बे चेहरे की जरूरत है। हाइट भी दुरुस्त है—पाँच फीट, दस ईंच। गले का स्वर भी माइक फिटिंग है। ठीक है, आपको रोज-रोज आने की जरूरत नहीं। वक्त आने पर हम ही आपको खबर देंगे।'

खबर देंगे। आईने में होंठ बिचका कर अपने को ही मुँह चिढाया। फिर भी, बहुत दिनों तक खबर न मिलने पर फिर गया था। भद्र पुरुष ने घर में छिप कर आदमी से कहलवा दिया था—'वे अभी घर में नहीं हैं।' सच ही, उस वक्त कौन बेचारा था—मैं या डाइरेक्टर, समझ नहीं पाया। तब मैंने कहा, 'मैं प्रतीक्षा करना चाहता हूँ।' देखा, सब घबरा गये। सबके चेहरे पर जैसे भय छा गया। सबों ने एक साथ मुझको समझाना शुरु किया। वे आज आयेंगे या नहीं, कोई ठीक नहीं। व्यर्थ प्रतीक्षा से क्या फायदा। मैं तो फिर किसी भी दिन आ सकता हूँ। शायद तब भी मेरे अन्दर कुछ आशा बाकी थी। इसीलिये फरेबी की तरह प्रतीक्षा करने की जिद्द नहीं की। सच कहने में क्या लगता है, मेरा मन तब भी हँस रहा था। मनुष्य स्वाधीनता से किस कदर डरता है। विशेषत' अगर भद्र पुरुष हों तो फिर कहना ही क्या। हम जिसे भद्र पुरुष कहते हैं, जैसे कि मैं। मैं भी अपनी नौकरी पर या दूसरी जगहें भी जब भद्र पुरुष का चोंगा पहन बैठा होता हूँ, तब अपनी पूरी स्वाधीनता को विसर्जित कर, माथे पर हाथ टिका कर बातें करता हूँ। अन्तर की भाषा तब कितनी जघन्य होती है कि अपना ही कान सुनना नहीं चाहता। या तो हम, झूठे हैं या अभद्र। फिर भी इस अभद्रता के बीच भद्रता का दावा हम बड़े ही कौशल से कायम रखते हैं। अर्थात् मैं भद्र पुरुष के रूप में ही इस तरह के जघन्य कार्य करने के लिये बाध्य हूँ। क्योंकि इस तरह के उदण्ड आचरण के बिना तुम्हारे जैसे लोगों को टिट_नहीं किया जा सकता। इसका अर्थ है, स्वाधीन होने की अक्षमता को इस तरह से छिपाये रखने का फरेब ही हर समय मैं रचता रहता हूँ। बहुत सोच कर देखा है, जब झूठ बोलता हूँ और जब उदण्ड आचरण करता हूँ, तब दोनों एक समान ही होता है। मैं ताले में बन्द माल हूँ। अर्थात् अपनी हजार पराधीनता से स्वाधीन होने की योग्यता मुझमें नहीं है, सिर्फ नहीं है की बात नहीं, स्वाधीनता से

मुझे डर लगता है, जैसे नीता से सम्पर्क न रखने की सब स्वाधीनता के बावजूद उसकी एक पुकार पर मैं चला आया हूँ, जिसका अर्थ है, मेरे रक्त का प्रत्येक कण पराधीनता के नशे में चूर है, संभवतः जीना भी वही है, दरअसल मैंने इसी पराधीनता के बीच ही, खैर, जो हो, खा-पीकर बचे रहने का आश्रय पाया है। इस रूप में स्वाधीनता को आग समझ कर सबों को उससे भयभीत होते देखा है, जैसे जल मरने के भय से सब सावधानी से पाँव बचा-बचा कर चल रहे हैं।

जो हो, विद्रूप हँसी को, जितना संभव था, अभिजात्य बनाते हुए मैं लौट आया था, और फिर वहाँ नही गया। उस समय मैंने देखा, आफत विदा हो गई, जानकर उन्होंने छुटकारे की साँस ली थी, उसके बाद भी एक-दो जगह उम्मीद बाँधे मैं गया था। मेरे जैसा लड़का कौन है, जो मूवी स्टार नही होना चाहता? निगाहें उठा कर देखने मात्र से ही—समझ में आ जाता है। सर उठा कर सबों की ओर नजर दौड़ाओ, अपनी ओर भी जरूर देखो। सच बोलने में क्या हर्ज है, अरबी उपन्यासों के नायक बनने का इससे सहज रास्ता और क्या है? ख्याति, अर्थ, भोग। भोग शब्द को फोड़ दें तो उसके भीतर है—लड़की। प्रधान मन्त्री से लेकर जिस किसी भी बड़े आदमी के पास तुम खड़े हो सकते हो। अखबारों या सिने पत्रिकाओं की तस्वीरें देखने से ही समझा जा सकता है कि देश-विदेश के किसी भी सौहार्दपूर्ण समझौते पर दस्तखत होते समय भी जो आनन्ददायक परिवेश नही बन पाता, सिनेमा स्टारों के साथ वही परिवेश झलमल करने लगता है। बात ही ऐसी है कि, सबकी जीभ ललक जाय। स्टारों के साथ कौन फोटो खिचवाना नही चाहता? और रुपया? वह तो बेहिसाब है। अलीबाबा का खजाना है। उसके बाद दिमाग जब खराब हो जाए, तो एक जगह ही दौड़ना जानता हूँ, वही एक जगह जहाँ अभी हूँ। मैं नीता के शैम्पू किये बालों का स्पर्श करता हूँ। तब मैं हो जाता हूँ मकड़ी का जाला बुननेवाला, आओ, कितने कीड़े आओगे, आओ मेरे काले रुपये के जाल में, मेरे ग्लैमर में, जिसे कहते हैं, 'मरीचिका' में।

मुझे हँसी आ गई। बात क्या ऐसी ही नही है? मैं तो ऐसा ही समझता हूँ। इस तरह के जीवन के प्रति किसमें खिचाव नही होता! उसके बाद समझा, चेहरा चाहे जैसा हो, काम नही बनेगा। लेकिन मन की बुनियाद में कोई एक परिवर्तन नहीं आया। पर्दे पर न जा सका, पर्दे से बाहर रह कर भी पर्दे की बनावट, आशा, आकांक्षा, भाव-भंगिमा मुझको छोड़कर नहीं गई।

द्रुत, इस बार एक सिगरेट—किन्तु यह क्या, नीता के बाल भी सख्त हो गये हैं क्या ? पहले जैसे नर्म, धुनी रूई जैसे तो नहीं हैं, या मेरे हाथ का स्पर्श ही इस तरह का है। अथवा मृत आदमी के बाल ऐसे ही हो जाते हैं। कुछ कड़े, सख्त, कर्कश।
मैंने उसकी गर्दन के पास से हाथ चलाते हुए बालों को समेट कर माथे के पास मुट्ठी में पकड़ा। माथा छोटा है। खोपड़ी ठंडी है, फिर भी शैम्पू की हल्की गंध अभी भी कायम है। पता नहीं, मृत आदमी की भी कोई गंध होती है या नहीं। सड़ी लाश की बात नहीं करता। सड़ जाने पर तो सब कुछ में बदबू होती है। नीता अभी सड़ी नहीं है। हो सकता है, रात भर में सड़ जाय। कहा नहीं जा सकता, जाड़े का समय है। ठंडक में सब कुछ जम जाता है। कोल्डस्टोरेज में जैसे मछली, मांस, तरकारी आदि रहती हैं। किन्तु सद्य मृत की देह से क्या कोई गंध निकलती है ?
नीता की खुली पीठ पर मैंने नाक गड़ा दी। पीठ ठंडी और सख्त लगती है। एक हल्की, मीठी गंध भी उसकी देह से आ रही है। हो सकता है, शाम की वेला में उसने दूध जैसी सफेद लिक्वीड क्रीम अपनी पूरी देह में लगायी हो। पता नहीं, आज किसने लगा दी है ? उसने एक-दो बार मुझे भी लगाने दिया है। लेकिन पीठ में ही, जब कि मेरी स्वाभाविक चाह दूसरी तरफ लगाने की ही थी—'दूसरी तरफ'। बीच-बीच में मेरा मन भी अच्छी बात सोच लेता है। अत जब मैं 'दूसरी तरफ' के विषय में सोच रहा हूँ तब नीता के आगे का हिस्सा ही मेरी आँखों के सामने चमक रहा है। उसका आगे का हिस्सा भी अच्छा है। अलबत्ता छातियाँ थोड़ी-सी ढल जरूर गई हैं, जिसे न जाने क्या कहते हैं—ईषत्-ईषत् नम्र, फिर भी आकृति अत्यधिक सुघड़ है, बड़ी और सुगठित, शायद इसी वजह से, उन पर जब निगाहें पड़ जायँ, तो जिसे उद्धत कहते हैं, ऐसा ही महसूस होता था। दोनों छातियों से ऊपर कंठ तक का चौड़ा भाग और पेट में चर्बी अर्थात् तोंद न होने की वजह से पूरा आगे का हिस्सा, एक शब्द में जिसे कहें, अद्भुत सुन्दर। पिक्चर जिसे कह सकते हैं। पिक्चर ! इसका अर्थ क्या हुआ ? खूबसूरत ? उर्वशी ? गोली मारो। लेकिन एक बात—शरीर की पवित्रता किसे कहते हैं ? इसका अर्थ तो आज तक समझ में नहीं आया। पेट में बीमारी नहीं, डिस्पेपसिया, या डिसेन्ट्री नहीं, लीवर खराब नहीं, पीलिया नहीं, दाँत में पायरिया नहीं, कान पका नहीं, नाक में घाव नहीं, पाँव में खाज नहीं। अर्थात् जो प्राय ही रहता है, क्रॉनिक जैसा (सामयिक बड़ी-बड़ी बीमारियाँ नहीं।) क्या इसे ही शरीर की

पवित्रता कहते हैं ? पता नहीं, इसीके बीच सतीत्व-टतीत्व की बातें भी शामिल हैं या नहो। संभवतः असल अर्थ वही है। लेकिन देखे तो बहुत-से शरीर हैं। घर में जब-तब लापरवाही की हालत में अपनी बहन को ही देखा है। अवश्य उसकी बातें सोचने से भी कोई फायदा नहीं, तेईस वर्ष की उम्र में ही उसने बहुत प्रेम (पीरित !) किया है। बिना मिलावट के कोरी 'संधिवेला की नवीन देह' जिसे कहते हैं, उसे भी देखा है। ऐसी देहें जिनके सम्पर्क में नही आया या जिनके सम्पर्क में आया। बहुतों को देखा है, जिनमें वेश्याएँ भी हैं, फिर भी इज्जतदार ही अधिक हैं, सती-असती की छाप तो कही नजर नहीं आयी। जब कि बातें हमेशा से कही जा रही हैं।

इसीलिये हीरेन की कहानी मुझे हमेशा याद रहती है। उल्लू आर्टिस्ट है! (प्यार के कारण ही कह रहा हूँ।) उसने कसबे की इति को खोज निकाला। इति के बारे में वान गाख की तरह कहना शुरु किया, 'ईश्वर का पुत्र स्त्री के गर्भ से।' गोया किसी ने यह इनकार किया हो कि ईशा किसी स्त्री के गर्भ से जन्मे थे। बुद्धदेव या हजरत, कौन नही जन्मा है! हम भी। इसका अर्थ है कि हीरेन ने ही सर्वप्रथम खोज निकाला कि स्त्रियाँ महान हैं। ठीक, हम पेट में धारण नहीं कर सकते, इसीलिये अमहान हो गये, तो गये काम से। स्त्रियाँ ही इसका गवाह हैं। (मैं आईने में आँख मारता हूँ) दरअस्ल, इति के चेहरे और आँखों में उसने 'एक करुण निष्पाप पवित्रता' की खोज की। हाँ, बात एक तरह से सच ही थी। हीरेन द्वारा बनाये इति के पोर्ट्रेट को बहुत दिनों से देखता आया हूँ, इति को भी बहुत दिनों से जानता हूँ। याद है वह चेहरा—कुछ लम्बा-सा, बीच में माँग, दोनों ओर बिखरे बाल। पता नही, इति स्वस्थ थी या नहीं, पहली बातचीत के समय मुझे उदास-सी लगी थी। आँखें, सच ही, बड़ी और सुन्दर थीं, पुतलियाँ तो सचमुच बेहद सुन्दर थीं, शायद इसे ही आँखों की गम्भीरता कहते हैं, जैसे हमेशा ही उसकी आँखों में पानी छिपा रहता हो। ऐसा लगता था, अभी ही टप-टप टपक पड़ेगा। सुतवा नाक, होंठों को पतला तो नही कहा जा सकता, बल्कि बहुत कुछ मन्दिर की दीवारों पर खुदी पत्थर की मूर्तियों जैसा कह सकते हैं। पत्थर की मूर्तियों के होंठों को निश्चय ही पतला नहीं कहा जा सकता। भारतीय मूर्तियों के होंठों की एक विशेष भंगिमा है (पता नहीं क्यों, होंठों का मोटापा चुम्बन के लिये सुखदायक ही लगता है)। इति के होंट कुछ-कुछ वैसे ही थे। मेरी राय है, हिन्दुस्थान की अधिकांश लड़कियों के होंट ऐसे ही होते हैं, किन्तु सब चेहरों के साथ होंटों की यह बनावट ठीक-ठीक नहीं

बैठती। इसके अलावा, मुझे लगता था, उसकी होंठों के आस-पास की मास-पेशियों को इस तरह चढ़ा रखने की आदत थी कि, समझा जा सके कि होंठों के मामले में वह काफी सचेत है। सचेत तो निश्चय ही थी। फिर भी, उसकी कातर, बड़ी-बड़ी और करुण आँखों में जैसे क्लान्ति उमड़ती रहती थी, क्लान्ति और विषण्णता। सब मिला कर मुझे लगता था, जैसे लम्बी बीमारी से छुटकारे के बाद आरोग्यका आभास मिल रहा हो। बातें आहिस्ता-आहिस्ता कहती, गर्दन घुमा कर देखने में देर लगाती, सुस्त और धीरे चलती। मैंने भी, सच कहूँ तो, हीरेन की यह बात मान ली थी—'एक करुण निष्पाप पवित्रता।'

एक महीने के अन्दर ही चार पोर्ट्रेट बन गये। लेकिन इति का लम्बा मुँह इसी बीच कुछ-कुछ गोल हो गया। अर्थात् चेहरे पर मांस आने लगा। कई महीने के अन्दर ही देखा, इति का चेहरा बदला जा रहा है। हम जिसे सुखी कहते हैं, वैसा ही चेहरा होता जा रहा था। खून चूने लगा था। उन बड़ी-बड़ी करुण आँखों में सम्भवत गम्भीरता तो थी, लेकिन चमक आनी शुरु हो गयी थी। दुश्मनों के मुँह में राख डाल, उसकी दुबली-पतली देह भी फैलने लगी थी। मुझे तो तब वह अधिक अच्छी लगने लगी थी। हीरेन को भी निश्चय ही अच्छी लगने लगी होगी, क्योंकि वह गदहा तो अपनी खोज के नशे में चूर था। मुझे समझ में आने लगा था कि विवाह के पानी से प्रेम का पानी कम गाढ़ा नहीं होता। और इति की वह प्रेम-मैदान में स्थापित मूर्ति देखकर मुझे कुछ भी पापी, अपवित्र, अकरुण नहीं लग रहा था।

उसके बाद अचानक एक दिन हीरेन ने आकर छूटते ही कहा, 'बँध गई।' उसे देखकर लगा, जैसे ओझा के हाथ में भूत आ गया है। मैंने कहा, 'तो क्या हुआ। मैरिज रजिस्ट्रार का आफिस तो खुला ही है।'

ईश्वर के पुत्र को जो जन्म देती है, हीरेन उसके साथ विश्वासघात करेगा, सोचा भी नहीं जा सकता। लेकिन पूछने की मेरी आदत नहीं है। कहा, 'तो फिर इवाकुयेट।'

'इवाकुयेट का मतलब ?'

'निकाल फेंकना।'

'हूँ, अर्थ तो यही हुआ, और क्या। पर जो हो, कुछ डर-डर-सा लग रहा है।'

बात गाल ! ईश्वर का पुत्र। साले ने गोपाल ठाकुर को पहचान लिया है।

इस वार मरो। दरअस्ल उसे रुपयों की जरूरत आ पड़ी थी। मैंने वादा किया था कि, दूँगा। इन्तजाम भी कर लिया था। लेकिन दे न सका। ठीक उसी समय मुझे एक लड़की मिल गई, जिसे अनएक्सपेक्टेडली कह सकते हैं, यद्यपि व्यय-सापेक्ष थी, फिर भी, दो दिनों में सब रुपये खर्च कर इस सुयोग का सदुपयोग कर लिया मैंने। हीरेन भी निश्चय ही मेरे लिये वैठा नहीं था। उपाय भी तो नहीं था। पानी के भाव किसी तरह वहुत-से चित्रों को वेच कर उसने रुपया प्राप्त कर लिया था और उसका काम निकल गया था। सोचा था, उससे कहूँगा, कसम से, हजार कोशिश के वावजूद रुपये का इन्तजाम न कर सका। साथ ही यह भी सोचा था, रुपया अगर उसे देना ही पड़ता तो क्रोध और घृणा से किसी-न-किसी दिन उसकी पीठ पर लात दे मारता, अन्ततः मन-ही-मन तो जरूर ही मार देता।

किन्तु रुपये का इन्तजाम न कर पाने का वहाना हीरेन के सामने वनाने का मौका ही नहीं मिला। क्योंकि वह लापता था। सोचा, वुरा माने वैठा है। मुझसे वुरा मानना, चलो अच्छा ही है वावा, झूठ वोलने से वच गया। उसके वाद एक महीने के अन्दर ही इति से मुलाकात हो गई थी। आश्चर्य (लो वावा !) ठीक वही मूर्ति, पहले देखा हुआ ठीक वही चेहरा, हीरेन का सर्वप्रथम वनाया वही पोर्ट्रेट। गाल का मांस झर गया है, चेहरा फिर लम्वा हो गया है। शरीर फिर उसी तरह दुवला-पतला। वीच में माँग, दोनों ओर विखरे वाल। दो वड़ी-वड़ी आँखों में वही गहराई भी है या नहीं, कौन जाने। हाँ, उसी तरह आँखों के भीतर पानी जमा है, जो किसी भी क्षण टप् टप् चू पड़ेगा। ठीक वही, 'करुण निष्पाप पवित्रता' की छवि। 'ईश्वर का पुत्र, स्त्री के गर्भ से।' कौन नहीं है! ऐसा तो कभी भी नहीं सुना कि पुरुष के गर्भ से कोई पुत्र जन्मा है। वही तो एक माइथोलाजी में है, जाने राजा का नाम क्या था? वड़ी दिलचस्प घटनाएँ हैं, पुरानी कहानियों में। सिर्फ दिलचस्प ही क्यों, आदमियों के वारे में ऐसी घटनाएं कहीं और भी हैं, मैं नहीं मान सकता। धार्मिक, प्रेमी, योद्धा, कामुक सव के सव वेहद सीधे और सहज हैं। छल-कपट भी कम नहीं है। सिर्फ पढ़ने में ही अच्छा लगता है, ऐसी वात नहीं है, मन होता है, खुद भी उसी तरह डाइरेक्ट हो उठें। इसीलिये तो इस तरह पीठ पर लात पड़ी है। लोग महाभारत, महाभारत रटते हैं, मैं तो समझ ही नहीं पाता कि, उसके साथ हमारी समानता कहाँ है। कौन विश्वास करेगा कि वे सव इस देश के पूर्व-पुरुषों के कारनामे हैं। खच्चरों के पूर्व-पुरुष को क्या घोड़ा कहा जा सकता है?

लेकिन यह भी सच है कि बहुत दूर तक अपनी कल्पना को दौड़ाया जा सकता है। बीच-बीच में मुझे पढ़ना अच्छा ही लगता है! हाँ, उस राजा का नाम याद आया, भगास्वन। अग्नि के वर से उसके एक सौ बच्चे थे। इन्द्र को क्रोध आया कि, उसे पूजा नहीं दी गई, अतएव माया-जाल फैलाकर राजा को एक सरोवर में स्नान करा दिया। इस तरह वह एक सुन्दर स्त्री बन गया। स्त्री होने मात्र से ही एक पुरुष की जरूरत महसूस होती है, इसलिये वह वन में एक ऋषि के पास गई। फिर एक सौ बच्चे हुए। और लड़की राजा हो गई एवं वह एक सौ लड़के भी राजभोग करने लगे। इन्द्र ने देखा, जा बावा, नुक्सान करते-करते इस आदमी को दो सौ बच्चे मिल गये। फिर उसने दो सौ लड़कों को लड़ा दिया। राजा के लड़के और ऋषि के लड़के—सब मर गये। ठीक जैसे आफिस की घटना हो, किस अधिकारी का मन रखना है, तय करो, और जिस किसी ओर ही जाओ, मरोगे। इससे तो अच्छा है चेम्बर में जाओ, और 'सर, आपने जो कहा है, दैट इज राइट।' कह कर काम निकाल लो। हुआ भी यही। राजा बेचारा रोने-धोने लगा, तब 'सिम-रेंक' के अधिकारी इन्द्र ने आकर कहा, 'सजा मैंने ही दी है, जब क्षमा माँग रहे हो तो, तुम्हारे बच्चों को फिर जिन्दा कर दे रहा हूँ, लेकिन एक सौ लड़कों को ही दूँगा (प्रमोशन रोकूँगा नहीं, लेकिन पूरा नहीं दूँगा।)—बोलो, किन लड़कों को चाहते हो?' राजा ने कहा, 'जो मेरे पेट से निकले हैं, उनकी माया अधिक है, उनकी मैं माँ जो हूँ।' इन्द्र ने कहा, 'तथास्तु, अब बोलो, और क्या चाहिये?' राजा ने कहा, 'दया कर मुझको स्त्री ही बना दीजिये, क्योंकि पुरुष होकर स्त्रियों से समागम कर जो सुख पाया है, स्त्री होकर पुरुष के साथ देखा, स्त्रियों का सुख बहुत अधिक है।' सीधी बात है, भाई, इसके बाद भी जो फ्रायड को मथना चाहें, मथें। कहानी हवाई है या नहीं, पता नहीं, लेकिन बात में जो सचाई है, वह मैंने अनेक बार महसूस की है। वह तो उनका सुख देखकर ही समझा जा सकता है, नीरा जब सुख के आलस्य में निढाल हो, स्वप्न के नशे में बक-झक करती, 'सच ही, जीवन का कोई अर्थ खोज नहीं पा रही हूँ,' 'कभी-कभी मन करता है, सुसाइड कर लूँ।' तो मुझे लगता, दरअस्ल सुख शेष क्यों हो जाता है, यह इसी का विलाप होता था, अथवा सुख की तीव्रता का प्रलाप। इसके अलावा, पुरुष के स्त्री बन जाने की घटना तो अब महाभारत से अखबारों तक में चली आयी है। लेकिन इसमें किसी इन्द्र की कारसाजी है या नहीं, इसका पता नहीं चला है।

खैर, छोड़ो इन सब बातों को, मैं औरत बनना नहीं चाहता, फिर सोचने से

फायदा क्या। वह सब हीरेन के भेजे में ही रहे तो अच्छा। मैंने इति से पूछा था, 'वह कहाँ है ?'
इति की हँसी पहले जैसी ही थी, जिसे करुण कहते हैं, 'बहुत दिनों से मुलाकात नहीं हुई।'
'यह क्या ! कुछ गोलमाल-टोलमाल की बात सुनी थी।' पर्याप्त सहृदयतापूर्ण हँसी के साथ ही मैंने कहा था। तरह दे जाना भी नहीं चाहा था। इससे इति जो चाहे सोच सकती थी, कुछ बनता-बिगड़ता नहीं था। दोस्ताना तरीके से लेती है तो ठीक, नहीं तो उपाय नहीं। निगाहें झुका कर इति हँसी थी, पता नहीं, लज्जा से या योंही। खूब ही धीरे से कहा था, 'खत्म हो गया।'
तो क्या हीरेन धोखा दे गया, यह सोच कर मैंने अवाक होकर इति की ओर देखा था। लेकिन जिस तरह का सांघातिक सत्यान्वेषी यानी महत्वाकांक्षी वह था, अक्सर भयंकर अपराधी को पकड़ने वाले कुत्ते जैसा ही महत्वाकांक्षी होकर घूमता रहता था, वह हीरेन इस तरह धोखा दे जायेगा, यह मैं सोच ही नहीं सकता था।
बात हो रही थी रेस्तराँ में, रेस्तराँ, सिनेमा, बार, कैबरे, जो कहो, सब ही। इति ने जैसे कुछ द्विधा, कुछ लज्जित हो (या करुण हो, कौन जाने) कहा था, 'आप खूब व्यस्त हैं क्या ?'
हूँ, मैं अब मरियल, करुण, निष्पाप आदि से वैसा लगाव नहीं रखता। फिर भी वह लड़की है, इसीलिये नजदीक के एक रेस्तराँ में गया था, असली बात कहने के पहले इति ने मुझसे पूछा था—हीरेन के साथ मेरी मुलाकात होती है या नहीं। इसके बाद मुझे मालूम हुआ था, नर्सिंग होम में 'क्यूरेट' करते समय डाक्टर ने हीरेन को बताया था कि वह अधिक घबराये नहीं, इसके पहले भी इति का 'क्यूरेट' केस हो चुका है। (इससे हीरेन का क्या ! इति माँग में सिन्दूर लगा सकती है, ताकि हीरेन उसे छोड़ न जाय, लेकिन इससे इति के बोझ से हीरेन के सिर पर कोई बोझ नहीं चढ़नेवाला था) मैं यह नहीं जानना चाहता कि इसके पहले भी उसे फन्दा तोड़ने की कोशिश करनी पड़ी थी या नहीं। उसने भी मुझको कभी भी हाँ, ना, में जवाब नहीं दिया था। किन्तु महत्वाकांक्षी कलाकार की पतलून ढीली हो गई थी, यह बात इति ने मुझे बताई थी, और कहने के साथ वही 'करुण, निष्पाप पवित्र' हँसी हँसी थी। सिर्फ यही नहीं, हीरेन इतना बड़ा गधा है, महत्व के खोजी जैसा ही, डाक्टर से (इति जब ऐनेसथेसिया के प्रयोग से बेहोश थी उस

समय) पूछ कर जान लिया था कि पहले के इवाकुयेशन का सम्भावित समय वही था जब इति के साथ उसका प्रथम परिचय हुआ था। डाक्टर के लिये यह बताना कोई बडी बात नहीं थी, किन्तु महत्व को खोजने वाले ने, इस बारे में भी खोज करते-करते दिमाग खराब कर लिया था, प्राय पागल ही हो गया था। फिर सात दिन के बाद उल्लू ने उन्माद में इति को बुलाया था और एक और पोरट्रेट बनाया था, जो हू-ब-हू पहले जैसा ही बना था। तब इति से कहा था—इससे उसके समक्ष यह प्रमाणित हुआ कि, इति के साथ उसकी प्रथम भेंट के समय उसने उसकी जो मूर्ति देखी थी, वह भी दरअस्ल नर्सिङ्ग होम में 'भीतर की मिलावट' को नष्ट कराने के बाद की ही थी। और 'भीतर की मिलावट' का अर्थ ही पाप है—अर्थात् 'करुण निष्पाप पवित्रता' के रूप में जिससे परिचय हुआ था, वह हो गयी, 'पाप की नारकीयता।' हुश! वे इस युग की एक तेईस-चौबीस वर्ष की लड़की के साथ प्रेम करेंगे और उसका एक-आध बार 'क्यूरेट' हो गया तो महाभारत शुरु। तुमने खुद जो फ्री स्कूल स्ट्रीट की अनेक क्रिश्चियनों के बीच 'लाञ्छित आत्माओं' की खोज की थी सो। लेकिन इससे क्या, उनके साथ तो घर बसाने का प्रश्न नहीं था। इति के साथ तो घर बसाने का सपना था, इसीलिये 'शुद्ध सती' की खोज हो रही थी। इसीलिये तुम महत्व और पवित्रता के इन्वेस्टिगेटर हो गये।

इन सब बातों के बाद, इति की देह से सट कर बैठे-बैठे कॉफी पीते हुए मैंने कहा था, 'मै लेकिन आर्टिस्ट नहीं हूँ।'

'जानती हूँ।'

मेरी इस बात का निश्चय ही एक उद्देश्य था। मेरा उद्देश्य था, इति सिर्फ आर्टिस्टों के साथ ही दोस्ती करेगी, उसने अगर ऐसा फैसला न किया हो तो मेरे साथ भी उसकी दोस्ती हो सकती है, इसीलिये मैंने फिर कहा था, 'महानता और पवित्रता की खोज करना मेरा पेशा नहीं है।'

इति हँस पडी थी। हँसी की ध्वनि में प्रश्रय देने जैसी कोई वलगैरिटी थी या नहीं, समझ नहीं पाया। लेकिन उसके मुख की छवि ज्यों-की-त्यों ही थी। उसने कहा था, 'अभी कोई जरूरी काम है क्या?'

था, बापजान के लिये एक डाक्टर की लेबोरेटरी से रिपोर्ट-विपोर्ट ले आने की बात थी। रिपोर्ट तो जब तक जिन्दा हैं तब तक कायम रहेगी। चौबीस घण्टा देर होने से भी क्या बिगड़ता है। मैंने कहा था, 'काम-वाम की अपेक्षा तो अच्छा होता कि कोई *वाहियात फिल्म* देखने चलते और एकान्त में बैठते।' इति फिर हँस पडी थी, 'अगर ऐसी बात है तो यहाँ समय नष्ट करने से

क्या फायदा।'

हम खाली हॉल में ही आ बैठे थे। उसके बाद आज तक अनेक बार इति के साथ खाली या बन्द हॉल या कमरे में बैठा हूँ। हीरेन के साथ भी मुलाकात हुई थी। शिकारी कुत्ते की तरह वह आज भी महानता की खोज करता फिरता है। इति के साथ मेरा जो मेल-जोल बढ़ गया है, जिसे 'गोलमाल' कहते हैं, वह जानता है। और वह इसे इस तरह व्यक्त करता है (उसके अन्दर कहीं एक परिशीलित आधुनिक मन है, जिसकी वजह से वह इन सब तुच्छताओं से ऊपर चला जाता है।) जैसे इसके लिये उसके अन्दर कोई क्षोभ नहीं है। चूँकि मनुष्य अपनी सत्ता का स्वाधीन रूप से संचालन करता है, इसलिये कोई भी पशु नहीं बन सकता है। 'विश्व-प्राण के भीतर जो वेदना छिपी है'—जानता हूँ, आधी रात के ताड़ीखाने में ही उसकी दवा छिपी है। किन्तु क्या मेरे मुँह का खून एक बार भी हीरेन के पाँव में नहीं लगा है! जरूर लगा है। उसकी क्रोधित लात कई बार मेरे मुँह पर पड़ी है।

छोड़ो यह सब, जिस वजह से यह सब सोच रहा था, वह मुख्य बात है कि, निष्पाप, पवित्र इत्यादि के साथ चेहरे और शरीर के लक्षणों को मिलाने की जरूरत नहीं। तब लोगों ने ऐसी कहावत क्यों बनायी थी—'घूँघट के बीच से त्रिया-चरित्तर।' दरअस्ल मन या शरीर की पवित्रता की बात ही अर्थहीन है, आदमी के मन में इन सब बातों का कोई दाम नहीं। नीता की पीठ पर नाक रख गंध सूँघते समय ही यह सब बातें याद आईं। आज शाम, शायद उसकी उसी पार्ट टाइम छोकड़ी नौकरानी ने उसकी पीठ में क्रीम लगा दी थी। क्या नाम है उस लड़की का, अलका ही शायद। ठीक याद नहीं आ रहा है। लड़की का नाम नौकरानी जैसा नहीं है। अशोका, अनीता, ऐसा ही कुछ होगा, जो नाम उसे उधार लेना पड़ा होगा। वह जिस तरह अपनी दीदीमणि को पहचानती है, दीदीमणि भी उसको उसी तरह पहचानती है। इसीलिये नौकरानी और मालकिन की अपेक्षा उनमें सहेली का रिश्ता ही अधिक है। अलका (या अशोका, अनीता) दक्षिण बंगाल की एक काली लड़की है। लेकिन चेहरा खराब नहीं। उम्र भी मालकिन जितनी ही है और शरीर से तो वह और भी मजबूत है। उसने शायद आज क्रीम लगाकर पाउडर छिड़क दिया था। इसके लिये उस लड़की से ईर्ष्या करने की कोई बात नहीं है, बल्कि कौन जानता है, अगर वह लड़की किसी दिन पीठ खोल कर खड़ी हो जाती तो हो सकता है मैं ही क्रीम लेप देता। नीता के मुँह से ही

सुना है, उस लड़की के भी बहुत-से प्रेमी हैं, और उनमें कोई भी नौकर नहीं है। भद्र पुरुषों के साथ ही उसका सम्बन्ध है। भद्र पुरुष। (मेरे सिवाय और कौन भद्र नहीं है।) लड़की के लिये शायद यही सन्तोष की बात है कि अभिजात्य लोगों के साथ उसकी आशनाई है।

नीता की छाती से सटे हाथ को खींचकर उसे चित करने का मन होने लगा। किन्तु वह भारी लगी। उठाते समय लगा, वह एक पत्थर की मूरत है। इसी बीच आवाज सुनाई पड़ी। अटका निश्वास हठात जैसे गले से निकल जाय, वैसी ही आवाज हुई। मैं भौंहे सिकोड़ कर नीता के टेढ़े मुँह की ओर देखता हूँ। नहीं, जिन्दा रहने का कोई चिह्न उसमें नहीं, कोई अभिव्यक्ति नहीं, जिससे यह मान लिया जाय कि उसके गले से ही आवाज निकली है। मैं आईने मे अपनी ओर देखता हूँ, मन-ही मन पूछता हूँ, 'क्या बात है? ठीक से सुना तो था न?' या कि चारपाई की आवाज थी? लेकिन इस सदर्भ में तो चारपाई को पूरी तरह भद्र ही पाया है मैंने, धमा-चौकड़ी करने पर भी कभी कोई आवाज नहीं करती।

देह हिलाकर गद्दी को कई बार हिलाया, डबल गद्दी के ऊपर मेरी और नीता की देह एक ही साथ हिली, मगर कोई आवाज नहीं हुई। कोई आवाज नहीं, तो क्या आवाज मैंने नहीं सुनी है? सच कहूँ तो मुझे घबड़ाहट ही हुई। लम्बी-चौड़ी बातें करने से फायदा नहीं, प्रेतात्मा, ट्रेतात्मा की बात सही है क्या, मुझे नहीं मालूम। अगर मडक की बात होती तो, ऐसी बात को गोली मारता। और इस घर में भी, अगर नीता जीवित होती तो। लेकिन इस वक्त न जाने कैसा लग रहा है, कहीं कुछ देखना ही पड़ा तो। मरा! अगर इसी वक्त मुँह के बल पड़ी नीता उठ खड़ी हो, उसकी कमर इसी तरह टेढ़ी ही रहे, एक हाथ सिर के पास ऊपर और एक की केहुनी मुड़ी, आँखें जिस तरह हैं, एक भाव अभिव्यक्तिहीन मूरत की तरह, वह उठ खड़ी हो जाय तो—मैं गया! हूस्स, इस तरह कहीं सोचा जाता है।

सोचते-सोचते मैंने नीता को बाँये हाथ से दबा दिया। कहूँ प्राण-पण से दबा लिया। मानो वह बाईचान्स उठ खड़ी हो, तो पकड़े रह सकूँ। घर मे चतुर्दिक देखा—वार्डरोब, किताबों की आलमारी, दो सिंगल सोफे, टेबुल पर एक फैशन मैगजिन, रेडियोग्राम, जिस पर एक गुड़िया, एक ड्रेसिंग टेबुल और आईना। आईने में अपने को देखकर घबड़ाहट दूर करने की कोशिश में भौंहों पर बल दिया। खुद को सान्त्वना देने के स्वर में कहा, 'जा मैया री।' मैंने मन-ही-मन कहा, मुझे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा था। हो सकता है,

आवाज मेरे ही गले से निकली हो। जोर लगाकर जब उसे उठा रहा था, तभी शायद आवाज निकली हो।

मुँह घुमा कर बाथरूम के दरवाजे की ओर देखा—बन्द है। पास के छोटे कमरे में मद्धिम रोशनी जल रही है। मोटा पर्दा नजर आ रहा है और वहाँ कोई नहीं है, अर्थात् कोई भी फालतू चीज, छाया-टाया, या कोई आवाज, कुछ भी नहीं। किताबों में लिखा है और लोग कहते हैं, इसीलिए यह सब सच नहीं हो सकता। इस कमरे में रोशनी तो तेज ही है। कहीं-कहीं, बिलकुल धुँधला-सा अन्धकार है, वार्डरोब या स्टील आलमारी के निकट। फिर भी वहाँ का सब कुछ साफ दिखाई पड़ रहा है। इस कमरे की तेज रोशनी को नीता ने बुझा देना चाहा था, क्योंकि आईने से उसे कुछ संकोच हो रहा था। रोशनी न रहे तो आईना भी साथ-ही-साथ भाग खड़ा हो। लेकिन मैंने रोशनी बुझाने नहीं दी। मुझे अन्धकार में, भूत की तरह न कुछ देखना, न सुनना, न समझना, अच्छा नहीं लगता। दिमाग में यह बात तो रहती है कि किसके साथ हूँ, फिर भी आँखों से देखने की बात ही और है। इसी कारण तो कितना कुछ देखना चाहते हैं हम।

जो हो, इसमें अब सन्देह नहीं, कि आवाज नहीं हुई, न मैंने सुनी ही, और भला नीता उस तरह से क्यों उठ खड़ी होगी। उठ खड़ी नहीं हो सकती। सुना है, शव बाजवक्त हरकत कर बैठता है। हो सकता है, टेढ़ा पड़ा हाथ 'खट्' से सीधा हो जाय, किन्तु यह जिन्दा होने की पहचान नहीं है और अचानक मरने पर बाजवक्त गले में, या छाती में आवाज अटकी रह जाती होगी, और दबाव पड़ने पर हिचकी जैसी ही बाहर आ जाती होगी। गला कटी हुई और खाल उधेड़ी हुई मुर्गी को मैंने देखा है। गला कटी, खाल उधेड़ी मुर्गी का पेट दबा कर मैंने सुना है—कक्-कक् आवाज आती है, ठीक मुर्गी की आवाज। एक बार पिकनिक में मेरे दोस्त की बीबी यही देखकर चकरा गई थी। एक मांस-पिंड से अगर जीवन्त आवाज आती है तो चौंक तो जाना ही पड़ेगा। यही देखकर मेरे दोस्त की बीबी 'हाय राम! यह क्या!' कह भाग गई थी। मांस भी नहीं खायगी, कहा था उसने, लेकिन उसके बाद खाया भी था। कुछ लोग हैं, जिन्हें सब कुछ में भय दिखाई पड़ता है, शायद भय में ही उन्हें सुख मिलता है। 'हाय राम, नहीं, नहीं, नहीं', संभवतः 'अहा! हाँ-हाँ-हाँ', ये सब शब्द ही फालतू हैं।

किन्तु जो हो, मरी मुर्गी के बारे में मैं जानता हूँ। हो सकता है, नीता के पंजर पर मेरे हाथ का दबाव पड़ा हो और आवाज निकल आई हो और सच

ड्डी निकली हो और मैंने सुनी हो। ऐसी स्थिति में जब घबडाहट हो रही हो तो कई बार 'राम-राम' कहने से कैसा रहेगा। अथवा 'भूत मेरा पूत, प्रेतनी मेरी दासी' (आईने में देखकर हँसा था।) सा—।

एक बात मुझे महसूस हो रही है, नीता का भूत अगर प्रगट हो तो, मुझे डर नहीं लगेगा। क्यों नहीं, नहीं बता सकता। शायद इसलिये कि उसके शव के निकट रह कर भी मुझे घृणा नही हो रही थी। बशर्ते की वह साथ में किसी को न लाये, क्योंकि भूतों की दुनिया के बारे में कुछ कहा नहीं जा सकता, क्या पता, बगाल के कब्रिस्तान से नाइनटीन्थ सेन्चुरी के किसी डकैत साहब का भूत ही अपने साथ ले आये। लेकिन, नीता अगर अकली ही आये, मुझे तो पता नहीं, भूत का चेहरा कैसा होता है, हो सकता है छाया के रूप में आये, या एकदम सशरीर आये, लेकिन उससे मुझे भय नहीं लगेगा। फिर भी यह बात ठीक है कि अगर वह अभी आकर मुझसे यह पूछ बैठे कि, 'तुमने मेरा गला उस तरह अचानक क्यों पकड लिया था, मुझको मार क्यों डाला', तो मैं सच ही कोई जवाब नही दे पाऊँगा।

सच, इस वक्त मैं सारी बातों को ठीक से सोच नहीं पा रहा हूँ कि क्यों मैंने उसका गला धर दबाया था। वह क्या कह रही थी, मैं क्या कह रहा था। नहीं, इस तरह से सोच कर तो मैं रात भर में भी पूरी बात याद नहीं कर पाऊ गा। ठीक किस बात पर मैंने उसका गला—अच्छा, उस समय तो, उस समय भी वह चित ही लेटी थी, मेरा बाँया हाथ उसकी देह पर पडा था, उसका मुँह मेरी ओर था, हम दोनो अलसाये से थे, मैं उसके मुँह की ओर देख रहा था। कुछ ऐसे भाव से देख रहा था, जैसे किसी भी कीमत पर मैं उधर से नजर नही हटा सकता। अगर सच कहूँ तो, उसके सुन्दर मुख पर उस समय जो सुख की, सुखजनित आलस्य की और अनुभूति की, आभा थी, उस ओर से पलक झपकाने को भी मैं तैयार न था, जैसे,पलक झपकाने से ही मैं उसे खो दूँगा (पेट मे उस समय अधिक माल नहीं था कि, ख्वाब देखता।) और उसके चेहरे को दोनों हाथों मे लेकर चूमने की बडी इच्छा हो रही थी, साथ ही, न जाने, कैसी एक घृणा और क्रोध से, या शायद ईर्ष्या से भी, हठात् उसके मुँह पर थूक देने की इच्छा हो रही थी। लेकिन यह इच्छाएँ तो आज नई नहीं थीं, बहुत पुरानी हैं। इसकी सही वजह क्या है, किसी दिन भी नही समझ पाया। नीता के पास रोज आने की इच्छा के बावजूद (इच्छा रहने पर भी रोज आना सभव नहीं था, क्योंकि उसके और भी दोस्त-मित्र हैं, और रोज आने की कोशिश करने पर झगडा तो

निश्चय ही होता, यहाँ तक कि, अधिक जोर-जबर्दस्ती करने पर, उसके लिये पुलिस बुला लेना भी असंभव नही था। और यही जो गाहे व गाहे अर्थात् महीने में तीन-चार दिन मैं जो आता हूँ, इसके लिये पहले से उसे खबर देता हूँ, या नीता मुझे खबर देती है।) इच्छा को मन से बाहर ही रखता था। पता नहीं, यह भी सेक्स एटैचमेंट है या नहीं, और सेक्स एटैचमेंट के साथ इस तरह की घृणा और क्रोध का क्या सम्पर्क है, लेकिन यह बिलकुल सच है कि नीता के पास आने की खूब ही इच्छा होती रही है। शायद इसी कारण दूसरी लड़कियो के संसर्ग के समय भी नीता याद आती रही है, अचानक ही याद आ जाती रही है, और मैं इससे विरक्त होता रहा हूँ और विकृत आचरण करता रहा हूँ।

यह कैसी घटना है, जिसकी व्याख्या भी मैं नही कर पा रहा हूँ। शराब के नशे जैसी एक आसक्ति है या नही, कौन जाने। जैसे आसक्ति के नशे को जोर से ऊपर खींच लिया और फिर गले में ऊँगली डालकर उसे बाहर फेंक दिया। अर्थात् नीता के पास आने के लिये जितना बेचैन होता हूँ, सच कहूँ तो, उतनी ही अनासक्ति भी महसूस करता हूँ। यह कैसी बात है! क्या ऐसा नहीं होता कि, जैसा बावन वैसा तिरपन! अनासक्ति ही, दरअस्ल घृणा है क्या? क्रोध है क्या? और अगर उस पर क्रोध ही करूँगा तो उसके पास आने के लिये इतना बेचैन क्यो रहूँगा? अच्छा, इस तरह सोचूँ, अनेक बार ऐसा हुआ है कि नीता को बाँहो में जकड़ लेता हूँ और खूब प्यार से चूमता हूँ, चूमते-चूमते आँखें बन्द हो रही हैं, फिर आँखें खोलकर देखता हूँ, और उसका आवेश भरा चेहरा देखते-देखते, हठात, बिलकुल हठात् ही मन करता है, उसकी नाक के दोनो छिद्रों को दाब दूं, साँस बंद कर उसे मार डालूँ। निश्चय ही, वही आज व्यवहारिक रूप में हो गया है, लेकिन प्यार करते-करते नहीं। हालाँकि कुछ ही देर पहले, यहाँ तक कि, मुख से उसके पाँव के नख तक को छुआ है। इसका अर्थ क्या है, मैं ठीक-ठीक क्या चाहता हूँ या इतने दिनों से चाहता आ रहा हूँ, या क्या चाहा था, उसको ही तो नहीं समझ पा रहा हूँ। मारना तो बहुतो को चाहा था, लेकिन मारा नहीं, या मार सका नही, और आज इसको मारने के लिये आया भी नही था, या किसी दिन इसका खून करूँगा, यह तो मैंने कभी सोचा भी न था। एकमात्र—एकमात्र उसी समय ही, कभी-कभी, मुझको लगा है कि मैं उसे बरदाश्त नहीं कर पा रहा हूँ, असह्य घृणा की कय होना चाह रही है, क्रोध उबल पड़ना चाह रहा है, जब मैं उसे खूब जी भर कर प्राप्त करता हूं। सारी बात ही कैसी अजीब-अजीब-सी लगती है, लेकिन, सच ही;

इसके सिवाय और किसी भी तरह इसकी व्याख्या मैं नहीं कर सकता।
आज इसी तरह की चालबाजी (चालबाजी के अलावा इसे और क्या कहूँ, पता नहीं।)जैसी मन की हालत में जब हाँ-आ नहीं, उँ-उ भी नहीं, अर्थात यह भी है, और वह भी है, खूब प्यार से उसके दोनों होंठों को मुँह में भर कर खूब चूम लेने को जी कर रहा था, अथवा साथ-ही-साथ घृणा और क्रोध से थूक देने को भी मन कर रहा था, ठीक उसी वक्त, इम दोनों ने वह बात कह डाली थी। बात सर्वप्रथम किस तरह शुरु हुई थी । नहीं, इस तरह याद करने से ठीक से याद नहीं कर पाऊँगा। अतएव इसके पहले की सभी घटनाएँ एक बार पूरी-तरह याद कर लेना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे इस बार तैयार होना पड़ेगा। जा कुछ मैंने किया है, उसके चंगुल से निकल जाने के लिए।

शाम को आफिस से निकल कर स्वी दत्त के पास जाने का ही मैंने फैसला किया था। अपने एक दोस्त की नौकरी के लिये पिछला दरवाजा खोला जा सकता है या नहीं, इसकी कोशिश में एकमात्र स्वी दत्त को ही काम में लगाया जा सकता था, क्योंकि पिछले दरवाजे की चाभी का गुच्छा स्वी दत्त के ही आँचल में बँधा रहता है।
लेकिन स्वी दत्त के पास जा न सका। एक दोस्त से मुलाकात हो गई। उसने मुझसे कहा—राजा मुन्ने की तरह कहाँ जा रहे हो मेरे चाँद। दोस्त जिस कम्पनी में नौकरी करता है, उसी कम्पनी की गाडी में जा रहा था। एक अच्छी पोस्ट पर वह नौकरी करता है। मैं जल्दी में टैक्सी खोज रहा था, शायद इसीलिये मैं अच्छे लड़के की तरह लग रहा था। अन्य दिनों तो आफिस से निकल कर कहीं-न-कहीं अड्डेबाजी करने लगता हूँ। दोस्त ने गाडी का दरवाजा खोलकर कहा था, 'चले आओ।'
मैं इस उम्मीद में उसके साथ बैठ गया कि इसी गाडी पर स्वी दत्त के घर पहुँच जाऊँगा। मैंने यह बात कही भी थी कि, मुलाकात होकर अच्छा ही हुआ, मैं उसके साथ ही चला जाऊंगा। दोस्त ने गर्दन पर एक हाथ जमाया और आँख मार कर कहा था, 'तुम्हारी स्वी दी क्या तुम्हारे इन्तजार में बैठी है ?' मैंने कहा था, 'नहीं, बात यह है कि एक दूसरा काम है, एक आदमी के लिये—।'
दोस्त ने मेरी बात पूरी नहीं होने दी। हँस पड़ा था, कहा था, 'हुस्स साला

भादोका (भादो का कुत्ता, भादो महीने में जो—छोड़ो) जाऊंगा, जाऊंगा। तुम्हें रोकूँगा नहीं। जाने से पहले थोड़ा मुँह में डाल लो मेरे शहंशाह। दो कुल्हड़ चढ़ जाने पर अच्छी तरह जमेगा।'

दोस्त ने एक न सुनी। एक बार में खींच ले गया। यह बात नहीं है कि एक-आध घूंट पीने के बाद मैं स्वी दत्त के पास नहीं गया हूँ। स्वी दत्त के डेरे में बैठकर भी एक-दो बार पी चुका हूँ। फिर भी अधिक नहीं पी है, जैसे सब के समक्ष अधिक पीने की हिचकिचाहट मुझ में है, दिखाना चाहता हूँ। (आईने में फिर एक बार आँख मारी, कितना ढंग आता है, तुम्हें!) मतलब और कुछ नहीं, स्वी दत्ता आदर करेगी, आश्रय देगी और मुझे पेशेवर नशेबाज नहीं समझेगी।

दोस्त ह्स्की पीते-पीते अपने आफिस की स्टेनो के बारे में बता रहा था। लड़की स्टेनो है और वह आज भी उसी से मिलने जा रहा है। इसीलिये पहले ही दो कुल्हड़ चढ़ा रहा था। लेकिन उसकी बीवी बेहद गोलमाल कर रही है। छाया की तरह पीछे-पीछे डोल रही है। पता नहीं, बीवी किस पर्दे के पीछे से सब देख रही है, इसीलिये आफिस से निकल कर बार में घुस जाता है। प्रायः पाँच बजे दोस्त से मुलाकात हुई थी और एक घण्टे में हम तीन-तीन पेग पी गये थे और दोस्त घड़ी देख कर हठात उठ खड़ा हुआ था, बेयरा को बुला कर बिल दे दिया था और कहा था, 'एक्सक्यूज मी, फिर मुलाकात होगी, चलूँ।'

'साला।'

मैंने मन-ही-मन कहा था। मैं भादो का, और वह—लेकिन स्वी दत्त के पास जाने की बात भी याद थी और जाने के लिये ही बाहर निकल आया। इस बार एक टैक्सी लूँ। इसी बीच पूरी तरह अंधकार उतर आया था, रोशनी जल गई थी, लेकिन दम-घोट धुएँ से शहर ढँक गया था। मैं जब आफिस से निकला था, उस वक्त ही अन्धकार उतरना चाह रहा था। अब छः बजा है, पाँच बजे ही सूर्य डूब जाता है। रोशनी जलने से ही क्या होगा। धुएँ ने नरक बना दिया है महानगर को। यह तो उत्तर कलकत्ता नहीं है, मध्य कलकत्ता के सबसे उम्दा स्थान के नजदीक है, तब भी इतना धुआँ यहाँ कहाँ से आया! मुझे साँस लेने में भी तकलीफ हो रही थी। सब कुछ धुँधला-धुँधला नजर आ रहा था। मैं टैक्सियों के ऊपर रोशनी देख रहा था। जलती रोशनी देखते ही चिल्लाऊंगा। मुसीबत है। पिल्लों की तरह कितने लड़के टैक्सियों के पीछे दौड़ रहे हैं और टैक्सी पकड़ कर यात्रियों

को दे रहे हैं और पैसे ले रहे हैं। कलकत्ता। महीने की आज कितनी तारीख है। याद नही आ रही थी। मैं भी तो नौकरी करता हूँ, मुझे तारीख याद रहनी चाहिये थी। तारीख याद न आने के कारण झल्ला गया और खुद को ही गाली देने लगा। तारीख याद न हो तो किस तरह समझ पाऊंगा कि आसानी से टैक्सी मिल जायगी या नही। महीने की दूसरी, तीसरी तारीख हो तो दूसरों की बात ही नही, शायद मेरे घर का बेयरा भी टैक्सी पर घर लौटेगा। महीने की सात तारीख तक किसी के बाप के बस का भी नही कि शाम को, विशेषत शाम को ही, टैक्सी पाले। उस पर एस्प्लानेड और चौरंगी इलाके में। सिर्फ यही नही, ६ बजे सिनेमा शो खत्म हुआ है—मैटिनी शो। सन्ध्या शो शुरु होगा। ऐसे समय में टैक्सी पाना लॉटरी जीतने जैसा ही है। उस पर यह आवारा बच्चे, बड़ी-बड़ी बसों के नीचे एक-आध पिचक क्यों नही जाता? आखिर मुझे भी इन्ही लोगो की शरण मे जाना पड़ेगा, नहीं तो ऐसे टैक्सी पाना असभव है। क्योंकि टैक्सी वालो को भी देख रहा हूँ, इन आवारा बच्चों के प्रति उनका न जाने कैसा एक समर्थन है, जिसे सवेदना कह सकते हैं। अगर ये टैक्सी पकड़वा दें तो आप जबतक इन्हें पैसा नहीं दे दें, टैक्सी स्टार्ट नहीं करेगा। सब दयालु हैं। सब दूसरों के प्रति दया दिखाने के लिये मुँह बाये हैं। और ये कीड़े 'साब, मेमसाबों' को ही पहले टैक्सी देंगे, मै भी तो सर से पाँव तक 'साब' हूँ। उफ्। लेकिन तारीख मुझे किसी भी तरह नहीं याद आ रही है, सात, आठ या दस है। क्योंकि भीड़ देखकर ही समझा जा सकता है कि महीने का प्रथम पखवारा ही है। सिनेमा, होटल, रुपया—सबकी भीड़ है, और (कौन लड़की जा रही है, मेरी ओर दो बार देखा है उसने) क्रमश बढ रही है, रात आठ बजे तक यही हालत रहेगी। मै समझ गया कि अब स्वी दत्त के यहाँ नहीं जाऊंगा। जिसकी नौकरी के लिये स्वी दत्त के पास जाने की बात थी, उस पर बेहद क्रोध आ रहा था। कहाँ है वह, एक टैक्सी पकड़ने में भी सहायता नहीं कर सकता। मेरा मन फिर बार में ही जाना चाह रहा था। जो दोस्त मुझको पकड ले गया था (शायद वह फागुन महीने का बेकार कुत्ता था।) उस पर भी क्रोध आ रहा था। शायद वह अब तक छिपे आश्रय की माँद में स्टेनो को लिपटाये बैठा होगा। दरअसल उसे ड्रिंक करने की जरूरत महसूस हो रही थी, इसीलिये रास्ते में किसी भी एक परिचित को प्राप्त करने से काम चल जाता। 'कोई भी एक'—मैं ही मिल गया। कोशिश। लोगों की बलिहारी है, एक-एक खाली टैक्सी पर इस तरह झपट रहे हैं, जैसे चोर-डाकू पर झपटते हों। जरूरत होने पर हर आदमी

हर किसी से हाथापाई तक करने के लिये तैयार है। और उसी वक्त मेरे नीचे का ब्लाडर टन-टन कर उठा। आस-पास कही कोई यूरिनल नहीं था, वार में जाने के लिये भी (हूँ, औरतो के पीछे पैड है, नही तो इतना उभार क्यो!) चलना पड़ता। वार से ही निपट कर आया होता, लेकिन तव याद ही न था। उस वक्त तो परोपकार (परोपकार! न कि रुवी दत्त का सान्निध्य, और उसके समक्ष खुद को यह प्रमाणित करना कि मैं दोस्तो के लिये कुछ करता हूँ, जो सच नहीं है। सव समय झूठ वोलते रहने का इतना अभ्यास हो गया है कि, लगता है, झूठ ही सच है।) करने की धुन सवार थी। दिमाग में टैक्सी थी। टैक्सी, टनटनाहट और कलकत्ता, सन्ध्या का कलकत्ता, कय से भी खराव। मन हो रहा था, वटन खोलकर खड़ा हो जाऊँ, मगर मुश्किल यह कि आस-पास कोई दीवार नहीं थी। हालाँकि धुएँ से सव कुछ धुँधला था, लेकिन एक-दूसरे से कंधे रगड़ती लोगो की भीड़ थी।

आखिर मैंने वार में जाने के लिये ही पाँव वढ़ाना चाहा, कि उसी वक्त एक टैक्सी सामने आकर खडी हो गई। आवारा वच्चे और कई मुसाफिर एक ही साथ टैक्सी पर झपट पड़े। ड्राईवर ने चिल्ला कर कहा था, 'अरे, खाली नही है।' टैक्सी के अन्दर से नीता ने मुझको पुकारा था, 'चले आओ।'

अहा! उस समय एक टैक्सी का कोटर (नीता के लिये नही, रुवी दत्त के पास जाने के लिये भी नही, भीड़ और प्रतीक्षारत जनता के वीच से अपने को अलग कर लेने के लिये।) कितने सुख और अगाध चैन का आश्रय था, कहा नही जा सकता। गाड़ी चलने लगी थी। सन्ध्याकालीन ह्रिस्की ने मेरे पेट के अन्दर से वता दिया था, नशे की खुमारी अव भी है। प्रायः भूल ही गया था कि एक ही घंटा पहले तीन वड़े पेग मेरे पेट के अन्दर घुस गये थे। मान लिया था, नीता कहीं अपनी जरूरत से जा रही है, वीच रास्ते में देखकर लिफ्ट (अगर उसके रास्ते में पड़ा।) देने की इच्छा हो गई। पूछा था, 'कहाँ जा रहे हो?'

मैंने कहा था, 'कोई यूरिनल या लैवेटरी न हो तो किसी अँधेरी गली में छोड़ दो तो भी चल जायगा।'

नीता हँस पड़ी थी। कौन जाने वह किसी अभिसार के लिए निकली हो और रास्ते में मुझको लिफ्ट दे रही हो, सोचकर ही दिमाग विगड़ा जा रहा था। प्रायः सट कर ही वैठे थे। केहुनी उसकी छाती से सट रही थी। लेकिन मुझ में कोई उत्तेजना नही हो रही, यह जताने के लिये केहुनी हटाने की ही कोशिश कर रहा था और घम-घूम कर वाहर देख रहा था कि ठीक किस

जगह पर उतरना मेरे हक में अच्छा होगा। सन्ध्या और रात्रि का अड्डा तो किसी-न-किसी बार मे ही जमता है और दोस्तों का कौन-सा दल किस बार में बैठता है, करीब-करीब यह तय है। गाडी रुकते ही जहाँ सीधे उतर कर जाया जा सके, ऐसी जगह पर उतरना मैंने तय किया था।
नीता ने फिर कहा था, 'आफिस की जीप कहाँ है?'
'देरी हो जायगी, इसीलिये उसे छोड दिया, पहले मि० चटर्जी को दमदम उतार आना होता है।'
'लेकिन यह अन्याय है, वे सेकेंड ग्रेड ऑफिसर हैं, और तुम थर्ड ग्रेड ऑफिसर हो, सिर्फ इसीलिये पहले उनको दमदम में उतार कर आना होगा और नजदीक होने पर भी तुमको पहले नहीं उतारा जायगा। इसका कोई मतलब नहीं होता।'
मतलब नहीं होता—नीता कह रही थी। यह अन्याय है—नीता कह रही थी। सच ही, बात सुन कर मर जाने का मन हो रहा है। (कसम से!) मैंने उस वक्त एक टैक्सी सहित नीता को जो देख लिया था और ठीक उसी समय मेरे नीचे जो टनटन कर रहा था और नीता की देह पर हाथ रखने की इच्छा के बावजूद, जैसे मैं दूसरी बात मे ही अधिक मशगूल हूँ, या सोच रहा हूँ, और जितना स्पर्श हो रहा है वह मात्र टैक्सी के हिलने से जितना सम्भव है उतना ही, इस दिखावे को मैं कायम रखना चाहता था। नीता कहाँ जा रही है, यह जानने के कौतूहल के बावजूद (और कहाँ जायेगी, किसी पुरुष के संसर्ग के लोभ मे ही) न पूछने का निस्पृह भाव दिखा रहा था। मि० चटर्जी (एक बुड्ढा साढ, कमसिन लड़की देखते ही जो भड़क जाता है, जब कि शरीर उसका बेकाम है।) मेरा अधिकारी है, सुपीरियर। दफ्तर के नियमानुसार, जब एक ही जीप मे दो आफिसरों को जाना होता है तो, वह अगर बजबज (कलकत्ता से तीस किलो मीटर दूर—अनु०) भी रहते हों तो मुझे पहले उनको ही छोड आना होगा। यह नियम सिर्फ आफिस से लौटते समय का है। आफिस जाने के समय मि० चटर्जी की इच्छानुसार (मेरे साले की इच्छानुसार, खच्चर।) ड्राइवर पहले मुझको ही लेने आता है, वहाँ से दमदम, उसके बाद आफिस। जिसका अर्थ है, वे घर पर रहने का समय अधिक पाते हैं। यह सब स्वेच्छा का नियम-कानून है। सेकेंड ग्रेड के एक और आफिसर प्राय चटर्जी के ही हम-उम्र के हैं, नुक्ताचीनी कर कहते हैं,'चाटुर्ज्ये छूरी सभालते-सभालते ही गया।' यह बात सब जानते हैं, चटर्जी ने बाईस वर्ष की उम्र में पहली शादी के बाद से ही प्रति दस वर्ष के हिसाब के एक-एक बहू को खाया है। एक को बत्तीस में खा गये और

बत्तीस में ही दूसरी शादी कर ली। उसके बाद बयालीस में एक और को खाया है। बयालीस में जिसको निगला है, उसकी उम्र अठारह, उन्नीस वर्ष की थी। अभी चटर्जी इक्कावन का है--और वह शायद सत्ताईस, अट्ठाइस की है। (तो खूब ही दृश्य होता होगा।) ऐसी हालत में बड़े लड़के की जिम्मेदारी हो गई है, संभालने की। वह कही एक मामूली नौकरी-चौकरी करता है। लेकिन बेटा, आफिस से दौड़ कर सीधा घर जाता है। सब आफिसर्स के चेम्बर में यही अफवाह है। क्लर्कों की टेबुलो पर भी। आफिस के जनरल यूरिनल की दीवार पर आंका चित्र और चटर्जी के बारे में लिखा रिमार्क देख कर ही समझा जा सकता है। अच्छा, आफिसरों के विरुद्ध विक्षोभ और इस तरह के अंट-संट लिखने का आपस में क्या सम्पर्क है, मैं समझ नही पाता। नीचे के लोगों का असहाय विक्षोभ, यही बात है क्या? ठीक, अगर मैं नीचे का होता तो चटर्जी के बारे में यह सब कीर्तियाँ खुद ही स्थापित करता। अब भी मन करता है, मगर यह थर्ड ग्रेड! मैं जरनल यूरिनल का आदमी नही हूँ, मगर मैं मौका पाकर वह सब देख कर मजा लूटता हूँ। यह ठीक है कि उन्होने मेरा भी नाम रखा है, जैसे 'लुच्चा', या नाम के बाद 'साला घंटा कुमार।' कुमार कह कर मेरे चेहरे, पोशाक आदि पर कटाक्ष और आज के सिनेमा के एक्टरों के साथ मेरी तुलना कर विद्रूप किया है या नही, मैं नहीं जानता। या एकमात्र गाली देने के लिये ही घंटा कुमार कहते हैं, यानी मुझको समलैंगिकता का शिकार बनाना चाहते हैं। यह बात जानकर मुझे हँसी आ गई है! जो लिखा है, वह एक आम गाली ही है, क्योंकि अब मेरी उम्र उससे आगे निकल गई है, जिस उम्र में सच ही मैं अपने कालेज के एक लेक्चरर दादा के हाथों शिकार हो गया था। इसके अलावा पुरुषों में भी इस तरह की चीजें होती तो हैं। सुना है, बहुतो की ऐसी हाबी रही है।

शायद यह स्वभाव नष्ट होना नही है। शायद यह चीज, स्वभाव ही है। इसके अलावा, किसे पता, यह भी सब लियोनार्डो दा-विंची की तरह प्रतिभाशाली बन जाने के लिये ऐसा करते हों।

जनरल यूनिरल की दीवार पर चूने का पोचारा दे ऐसी चीजों को मिटा दिया जाता है। यहाँ तक कि स्पाईंग कर पकड़ने की कोशिश भी हुई है, मगर पकड़ा नहीं जा सका है। मेरा खयाल है, चाहे जितना वलगर लगे, बातों में सचाई है। क्योंकि नीचे वालों का रैंक मेरे लिये अनजाना नहीं है। मैं भी उसी रैंक की चाय सिगरेट और सस्ते काफी हाउस से होकर अन्य रैंक में आया हूँ। बार, होटल, कैबरे के रैंक में, जिसे दारूखाना और नाचघर कहते हैं। मैं नीचे

के रैंक को पार कर आया हूँ, वे पार नहीं कर पाये है, क्योंकि इस विषय में मैं उन लोगों से अधिक घाघ हूँ। किस तरह से आया जाता है, वह सब रास्ता-घाट मेरे बाप ने ही मुझको पहचनवा दिया था। (पुत्र की उन्नति के लिये बाप को अगर थोड़ा अन्याय-टन्याय करना पड़े तो क्या किया जाय, उसे पाप नहीं समझा जा सकता। यह अपना ही तो पाला-पोसा है।) बाप के मार्फत से ही लोगों को पहचान गया और किसे कहाँ पकड़ना होगा, जान गया। वे पार नही पा सके हैं, उनके बाप भी पार नहीं पा सके हैं, और इसीलिये (आफिसरों के दूसरे-दूसरे आचरणों की बात छोड़िये) मेरे जूते के सख्त तले की ठक-ठक आवाज जब सुनते हैं, समझता हूँ, वे जो कहते होंगे, 'लुचा आ गया'। (सोच कर ही कैसा मिजाज हो जाता है।) फिर भी दीवारों पर लिखी बातों में सचाई है और चटर्जी के विषय में, और उनकी तीसरी बहू और लड़के के बारे में जो लिखा जाता है, उसमें भी सचाई है। वह आदमी अगर मुझको पहले भवानीपुर में छोड़ कर दमदम जाये तो उसका दम निकल जायगा। आफिस के कामों के बीच जिसका सारा समय दुश्चिन्ता में ही बीतता है और 'कल्पना के मानस-पट' पर अपने घर की जो तस्वीर वह देखता है, (स्त्री और आफिस से भागा लड़का) छुट्टी के बाद वह बाघ की भाँति दौड़ कर घर जायेगा, यही तो स्वाभाविक है। मैं जानता हूँ, उसका घर का चेहरा निश्चय ही दूसरी तरह का होगा। मैं इतनी बार चटर्जी के घर गया हूँ, क्योंकि अधिकारियों के नियमानुसार हम दोनों के जिम्मे एक ही जीप है, और इतनी बार सोचा है, उसकी तीसरी बहू को देखूँगा, लेकिन कभी भी देख नहीं पाया। मि० चटर्जी के मुँह से कभी उनकी स्त्री की बात नहीं सुनी। अतएव 'मतलब' सब कुछ का कहाँ है, और दुनिया के सब आदमी वह मतलब जानते भी हैं। लेकिन नीता जिस तरह कह रही थी, 'इसका कोइ मतलब नहीं होता' वह मेरी बहुत-सी अन्य बातों जैसा ही अविश्वसनीय है, जिसके साथ अन्तर का कोई ताल-मेल नहीं। नीता जिस तरह कह रही थी, जैसे कि वह मेरी गहरी दोस्त हो, उसका इसी तरह कहना उचित है। ऐसा उसने अभ्यास वश ही कहा था। वह जिस तरह के खुश-मिजाज स्वर में बोल रही थी, उससे स्पष्ट था कि अगर मेरे साथ अन्याय हो, तो इसके लिये उसे कोई सरदर्द नहीं।

यह सच है कि छुट्टी के बाद अधिकांश दिन ही मैं चटर्जी का साथी नहीं बनता। दमदम या भवानीपुर मेरा गन्तव्य नहीं रहता। आज तो और भी नहीं था। क्योंकि जीप में लौट कर रूबी दत्त के पास जाऊँगा, यह बिलकुल सुमकिन नहीं था। मैंने रूबी दत्त के पास जाने के लिये सोच रखा था, यह

भी नीता को नहीं बताया। उस समय तो टनटनाहट को दबाना और नीता के बारे में सोचना ही मेरे दिमाग में था। वह कहाँ जायगी, किसके नीचे, किसके पास, कहाँ से आई है, और रह-रह कर देह का छू जाना। लेकिन मैं अपने गन्तव्य को हमेशा याद रख रहा था। वितृष्णा से मन भरा जा रहा था, फिर भी नीता को यह आभास देना नहीं चाहता था कि, उसके विषय में ही सोच रहा हूँ। कोई उम्मीद न थी, फिर भी अगर खूब इच्छा हुई तो किसी दूसरी लड़की की खोज में जाऊँगा। नीता के लिये इतना कौन सहे!

लेकिन दुहाई! गाड़ी और अधिक हिचकोले न खाये, हिचकोलों पर टनटनाहट तेज हो रही थी। लगता था, एक गन्दा कांड हो जायगा। वैसे ही तो किडनी में कुछ ट्रबुल है, उस पर क्यूकेस का हमला बारहों महीना और यह हमला इतना तेज होता है कि थोड़ा भी हिलने-डुलने से···वैसे ही तो ब्लाडर टनटन करता ही रहता है, साफ होना नहीं चाहता। उस पर अगर अधिक देर तक रोक रखना पड़े तो और भी असहनीय।

एक बार के सामने मैंने कहा था, 'तुम्हारी लिफ्ट के लिये धन्यवाद, मुझे यहीं उतार दो।'

'क्यों, अब नही सकोगे?' नीता ने कहा था।

कह कर वह हँसी थी। ऐसी बात पर सब हँसते हैं, नीता भी हँसी थी। दूसरे की बात होती तो मैं भी हँसता। इस तरह की प्राकृतिक स्थिति में किसी को बेचैन देख कर कोई भी हँसी नहीं रोक सकता। यह वक्त कैसा होता है, इसका एकमात्र वही अनुभव कर सकता है जिसने इसे भोगा है। यह अविचार की हँसी, क्रोध से दाँत किटकिटाने पर भी किसी को कुछ नहीं कहा जा सकता। कहा था, 'नहीं, सच ही, इसके अलावा आखिर मुझे उतरना तो होगा ही।'

'यहाँ तो अड्डेबाजी के लिये ही जाओगे।'

'हाँ। मगर एक काम भी है, देखूँ, कर पाता हूँ या नहीं।'

नारी को बताना व्यर्थ है—मन-ही-मन कहा था। दरअस्ल नीता के समक्ष प्रमाणित करना चाहा था, (नीता मेरे और भी करीब सटकर बैठी थी। पतले सर्ज के कोट से शरीर ढँके रहने पर भी स्पर्श महसूस हो रहा था) कि मैं अपने आप में ही मशरूफ हूँ, जिस मशरूफियत में नीता-टीता कोई नहीं है। लेकिन सच कहूँ तो, उस वक्त सिर्फ नीता ही मेरी नजर में थी। यहाँ तक कि नीता मगज में इस तरह जमकर बैठी थी कि 'टनटनाहट' की तीव्र अनुभूति तक मैं भूले जा रहा था। शरीर का कारखाना (वृद्धि) बाँझ बना था। लगता था, किसी भी तरह एक रिलीज की जरूरत है और हर मुहूर्त नीता,

शरीर के प्रत्येक अंश में केवल नीता।
नीता ने कहा था, 'क्या काम है?'
नेकी। बात मैंने मन-ही-मन कही। क्योंकि उसकी आवाज में अविश्वास, सिर्फ अविश्वास नहीं, मजाक का स्वर था। गाड़ी खड़ी करने की वह बात ही नहीं कर रही थी। ड्राइवर जैसे मंजिल को जानता हो, कीड़े की तरह दौड़ा रहा है। कीड़े की तरह ही। क्योंकि शाम की भीड़ में कोई भी गाड़ी तेज नहीं चल *सकती। पद-पद पर बाधा। ऐसे समय में तुम्हारा रुपया पाने का या प्रेमिका से* मिलने का समय भी बीत जा सकता है। यह पुलिस का हाथ, यह लालबत्ती आदि बाधाएँ तुम्हें रोक रखेंगी ही। कुत्सित। मैंने नीता की ओर घूम कर देखा था, मुँह देखने के लिये कि, उसके मुँह पर क्या है, हँसी या व्यंग्य। वह मुझको इतना अधिक पहचानती है, जैसे मैं उसका पालतू कुत्ता होऊँ, जैसे प्रभु अपने कुत्ते की नजर, उसके कान और पूँछ का हिलना—सब कुछ का अर्थ समझता है। 'हाथ का पाँच' या 'आँचल में बंधा' कहने से जो अर्थ निकलता है, या वह कमर टेढ़ी कर पाँव दिखाकर कहे, 'वह मेरे यहाँ का आदमी है', तो शायद सच ही कहेगी। शायद इसीलिये क्रोध और घृणा से जी चाह रहा था कि उसके केश पकड़ कर खींच दूँ। मैं मन-ही-मन कह रहा था—'छिनाल-पना हो रहा है।' लेकिन प्रकट रूप में गम्भीर होकर कहा था, 'वह जानकर तुम्हें विशेष फायदा नहीं होगा। तुम कहाँ जा रही हो?'
मैंने यह दुबारा पूछा था और उसने प्राय साथ-ही-साथ जवाब दिया था, 'अपने घर।'
उसने प्राय थप्पड़ मारने जैसी बात कही थी, जिस कारण मैंने मन-ही-मन कहा—'हरामजादी।' लेकिन हरामजादी कहने के पीछे जितना क्रोध या घृणा *नहीं थी, उससे अधिक प्यार और प्रशंसा का भाव था,* जैसे अपने को ही प्यार से गाली दी जाय। उसकी बातों से यह और अधिक प्रमाणित हो गया था कि, वह मुझको, इस पुरुष को, सर से पाँव तक पहचानती है, अर्थात् सिर्फ मेरी जिज्ञासाएँ ही नहीं, बल्कि क्या सुनकर मेरा मुँह जूते जैसा होगा, वह जानती थी। क्योंकि वह निश्चय ही मेरे मन की बात समझ गई थी। उसके सम्बन्ध में मैं क्या सोच रहा हूँ, यानी किसी अभिसार के लिए जा रही है, मेरा यह भाव वह समझ गई थी। लेकिन इसके साथ ही मेरा मन फिर ईर्ष्या और क्रोध से फुफकार उठा, यह सोच कर कि इतनी जल्दी घर लौटने का अर्थ ही है, वहाँ कोई-न-कोई आयेगा, जमेगा, रंगरेलियाँ मनाई जायेंगी। अपने घर में जाकर वह अकेली रहने वाली नहीं है। इसीलिये मैंने घुमा कर

कहा, 'क्यों, कौन आ रहा है ?'
'कोई तो नहीं।'
'यह क्या, कोई नहीं और इतनी जल्दी ?'
'क्यों, मैं क्या अपने घर में शाम के समय अकेली नहीं रहती ?'
'हाँ, तुम्हारी गृहस्थी तो अकेली ही है। किन्तु शाम की वेला, घर के अन्दर, नीता राय··· ।'
'अकेली कहाँ, यही तो, तुमको पा गई।'
एक और थप्पड़ उसने मारा था—हरामजादी ! (प्रशंसा-सूचक प्यार से ही कह रहा हूँ।) उसके बाद मन-ही-मन कहा था—हूम्। और उसकी ओर घूम कर फिर देखा था। उसने भी मेरी ओर देखा था। हूम् ! होंठों पर जैसे कोई टेपी हो और यह हँसी जो समझ कर भी ठीक से न समझी जा सके, और चकमक करती आँखों की पुतलियाँ भी उसी तरह की हैं, जिन्हें देखने पर लगे, वे मेरे मुँह में खोज कर कुछ देख रही हैं। बात को मैं किस रूप में ग्रहण कर रहा हूँ ! अगर जरूरत समझे तो वह इच्छानुसार मुझको एक शब्द में रद्द कर सकती है और फिर पुकार भी सकती है। आम तौर से उसके साथ मेरा सम्बन्ध तो प्रेम का ही है, (पीरित की आरी प्राण को काटे चीर-चीर कर, मालिन, ऐसी आरी कहाँ पाई !) इसीलिये समय सुयोग पाकर वह मुझको फोन करती है या दूसरी तरह से खबर देती है, 'क्या हुआ रे, सच ही भूल गये-क्या ? कितने दिनों से दिखाई नहीं पड़े, कहो तो, आज लेकिन आना ही होगा।' इसका अर्थ है उसके मिजाज के मुताबिक वह दिन मेरा है। या उसकी स्वाधीन इच्छा का साथी मैं हूँ। उस वक्त मैं कहता हूँ, 'तुम तो जानती हो, भूला नहीं हूँ। क्या करूं, तुम्हारे तो जो-सो तरह-तरह के'··· (कसबिन ! मन-ही-मन कहता हूँ।) 'वह रहने दो, तुम आज चले आओ, बिलकुल अच्छा नहीं लगता।' (आह, आज प्राण मेरा सह्य नहीं कर पाता सखी !) 'लेकिन तुम तो जानती हो, मैं किस तरह का हिंसक हूँ, कोई हो तो मैं बरदाश्त नहीं कर पाऊँगा, तुमको तनहाई में न पाऊँ तो अच्छा नहीं लगता।' 'वही होगी, वही।' (ईयाहू !) इस तरह का जहाँ प्रेम-सम्बन्ध हो वहाँ अकेली घर लौट जाने के बदले 'मुझको पाजाना' की बात उसे कहनी पड़ी है, तो आज उम्मीद है, मुझको रद्द नहीं भी कर सकती है।
तब भी मुझको कहना पड़ा था, 'मुझको खींच कर मत ले जाओ, यहीं उतार दो।'
उसने कहा था, 'थोड़ा और, मेरा डेरा तो आ ही गया।'

'लेकिन मुझको तुम्हारे वे शोसल कन्टेक्ट के लोग अच्छे नहीं लगेंगे।'
'अगर लोग रहते, तो क्या मैं तुमको जाने के लिये कह सकती थी?'
भला एक लड़की अपने प्रेमी को दस आदमियों के सामने जाने के लिये कह सकती है। मैं जो उसका प्रेमी हूँ—प्रेमी प्रवर! रास्ते में जब मुझको पा ही गई है तो (इस वक्त लगता है, वही कल्पित यंत्र होता, जो मन की बातें बता देता, तो बुरा नहीं होता) घर जाकर टेलिफोन से अब ऐसे किसी को बुलाना नहीं पड़ेगा जिसके साथ शाम या शायद रात बिताने की योजना उसने बनाई थी। या बिना योजना के ही अचानक जो मन पर चढ़ जाता, कौन कब स्वतंत्र इच्छा के ऊपर धाक जमा बैठता, कौन बता सकता है। मैं भी हो सकता था, नामुमकिन कुछ नहीं। मेरे लिये भी यह अचरज की बात नहीं थी। रात दस के बाद अचानक मैं क्या फैसला कर बैठता, शाम को इसकी कोई खबर मुझको नहीं रहती। नीता के साथ मुलाकात न होती तो टेलिफोन पर किसी को पुकारता या किसके दरवाजे पर हाजिर होता, मुझको नहीं मालूम। हो सकता था, नीता को ही रिंग करता, 'हैलो, हो या नहीं? क्या कर रही हो? आऊँ तो काफी पिलाओगी?' (लेकिन क्या काफी ही पीना चाहता हूँ!) जवाब चाहे जो भी आता, ऐसे मौकों पर अधिकांश में—'तबियत खराब है' या 'सो गई हूँ, प्लीज बुरा न मानना,' जैसे जवाब की ही सम्भावना होती है, और उस पर 'इतनी रात गये बाहर मत रहो, घर लौट जाओ।' (जी करता है, धम से एक लात पीछे से मारूँ।) इस तरह के उच्छ्वसित प्रेम के सलाप सुन कर मुझे अचरज नहीं होगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि अगर अचानक पहुँच जाता तो देखता, 'एञ्जेल लक्जरी' के मैनेजर-कम-डाइरेक्टर नीरेश दास (मछुआ है, लेकिन कहता है अपने को कायस्थ, शूअर का बच्चा, क्योंकि मध्ययुगीन झूठ बोलना है।) अपने टूथपेस्ट के विज्ञापन में नीता की दाँत दिखाती हँसी वाले चित्र की प्रशंसा करते-करते कुछ दूसरी तरह की बातें भी करना है और जवान काले घोड़े जैसे (बहुत रुपयों का मालिक भी है) नीरेश की ओर देख नीता मीठी-मीठी हँस रही है। या काशी बनर्जी—गायक, दलजित—वह पंजाबी छोकरा, यहाँ तक कि, हीरेन—महत्व का खोजी कलाकार, कौन जाने किस-किस गुणवान को उस सुन्दरी, समझदार युवती के अपार्टमेंट में देख पाता।
आम तौर से हम कोई भी कुछ नहीं जानते कि कब क्या पकड़ेंगे या छोड़ देंगे। जिससे अपना काम बन जाये, उसे ही हम पकड़ेंगे। लेकिन पता नहीं क्यों, जिसे एक खराब बीमारी ही कह सकते हैं, (या सेक्स अटैचमेंट।) औरतों

के विषय में, नीता का दरवाजा खुला हो तो और किसी लड़की के पास जाने की मेरी इच्छा नहीं होती, लेकिन किसी भी दिन गया ही नहीं, यह नहीं कह सकता, जैसे कि जिस दिन वहुत रुपया रिश्वत मिलने वाला हो (हॉ, मेरी नौकरी में रिश्वत का वाजार है। न होता तो थर्ड ग्रेड आफिसर और इतनी फुटानी !) या किसी नई लड़की के हाथ से निकल जाने की संभावना हो, या आफिस का वड़ा अधिकारी (शार्क जैसा लोभी निर्दयी शैतान !) कोई काम दे दे, वीच-वीच में जो दे देता है, ऐसे ही वक्त पर वादे अधूरे रह गये हैं। अन्यथा नीता के खुले दरवाजे को मैं आम तौर से नहीं ठुकरा पाता। इसका ठीक कारण क्या है, समझ नही पाता। पता नही, प्रेम में पड़ने के प्रथम 'हृदयवेग' जैसी घटनाएँ उसके सम्पर्क से घटी थी, शायद इसलिये, और मोहभंग, विलकुल हमेशा के लिये मोहभंग जनित 'यन्त्रणा कातर हताश' दिन वीते थे, जव मैं हताश प्रेमी की तरह 'व्यथा में कहाँ जॉय, डूव जॉय' की दशा में भग्न हृदय, अकर्मण्य (एक तरह के निर्जीव वाघ कुत्ते की तरह) पड़ा था।

जो हो, टैक्सी जव नीता के अपार्टमेंट नें, अर्थात् इस वड़ी विल्डिंग, जिसमें नीता का कोटर (अपार्टमेंट) है, के लान में आकर रुकी तो फिर से मेरी टनटनाहट वढ़ गई। संभवतः इसी वजह से कि, अव मैं निश्चिन्त हो गया था कि मैं नीता के ही घर जा रहा हूँ। एक तल्ले पर जाकर (नीता को लैच की खोलने में जितना समय लगा हो) मैं दरवाजा ठेलकर घुस गया था और अंधकार में ही वाथरूम के पहचाने दरवाजे की ओर झपट गया था। वाथरूम का स्विच मैं जानता था, उसे ऑन कर दिया, मगर दरवाजा वंद करना मेरे खयाल से वाहर ही था। नीता ने सोने वाले कमरे की वत्ती जलाने के वाद वाथरूम के दरवाजे के निकट आकर कहा था, 'असभ्य, दरवाजा वंद नहीं कर सकते थे !' उस वक्त मेरे पूरे शरीर की क्या स्थिति थी, नीता को समझाना कठिन था। वहुत ही चैन की स्थिति थी, नही, विलकुल वैसी नही। उल्टे क्रॉनिक थ्रम्वसिस के प्रकोप से मुझको दरवाजा वंद कर विलकुल नंगा होना है या नही, शरीर के भीतर दरअस्ल यही लड़ाई चल रही थी। मैं चाह रहा था, मुझको यह करना न पड़े। उसके लिये दाँत पीस-पीस कर 'दुहाई माई-री !' आदि मन-ही-मन कह रहा था और प्रायः गूंगे स्वर में नीता से कहा था, 'रहने दो न, नुकसान क्या है ?'

'नहीं।'

नीता ने धमकी देते हुए जोर से दरवाजा वंद कर दिया था। जैसे यह असभ्यता

है, इसी तरह का भाव दिखाते हुए उसने दरवाजा बंद किया था। दरअस्ल उसे बदबू लगने के कारण घृणा हो रही होगी जब कि बाथरूम सहित पूरे अपार्टमेंट में खुशबू ही थी। फ्लैश खींच, दरवाजा खोल मैं बाहर आया था। उस वक्त नीता बगल के कमरे में (क्यों, मुझसे शर्म? मर जाऊँ या खुदा!) शायद कुछ ईजी होने के लिये बालों को या छाती के कसाव को कुछ ढीला-ढाला कर रही थी। मैंने भी कोट खोल कर शोफे पर फेंक दिया था। टाई की फाँस को खींच कर बड़ा किया था और सर के ऊपर से निकाल कर कोट पर डाल दिया था। बगल के घर में नीता के निकट गया था, जहाँ वह छोटे-से आईने के सामने खड़ी थी। मैंने झुक कर उसे स-आवाज चूम लिया था और उसने मेरी खुशी को भाँपते हुए भौंह मटका कर कहा था, 'तुम कह रहे थे, काम है। भला क्या काम है?'
'यही काम था,' कह, उसे खींच कर पकड़ लिया था और होंठ चूम लिया था और नीता ने 'हूम' कह कर एतराज किया था, आँचल से ओट कर होंठों को पोंछा था। क्योंकि वह तब भी लिपस्टिक का रंग बिल्कुल खत्म कर देना नहीं चाहती थी कि होंठों को जोर से पोंछ दे। मेरी ओर घूम कर कहा था, 'बेकार कहीं के, जाओ, कहीं बैठे-बैठे निगलो।'
इसका अर्थ है, उसने कहना चाहा था कि मुझे तो किसी बार में बैठकर इस वक्त दोस्तों के साथ शराब पीना चाहिए और टैक्सी में भी मैंने उसका हाथ-पाँव पकड़ कर क्यों नहीं कहा, 'तुम्हारे साथ चलूँगा', या इसी तरह का और कुछ, जिससे कि उसका नारी-मन (अन्य नारियों जैसा ही) खुश हो जाता, और वह सदय हो मुझको ले आती (वैसे भी वह मुझको लायी ही।) और मैं था कि इस वक्त उसे अनायास प्राप्त कर चूम रहा था और खुशी से फूला न समा रहा था, यही सब सोच कर वह नारी स्वभाव के अनुकूल मुझे ठेस मार रही थी, जिसका *अर्थ है, वह जो कुछ भी देगी, उस सबके बीच इस चीज को* कभी भी भूलने नहीं देगी, कि देखो, तुमको दे रही हूँ।'
लेकिन मैं उन सब बातों का जवाब देना बहुत जरूरी नहीं समझ रहा था। पूछा था, 'तुम्हीं निकाल दो न, तुम्हारे पास क्या है?'
उसने कहा था, 'कुछ है ही नहीं।'
मैंने कहा था, 'शरीर खराब हो तो थोड़ा बहुत चलता है।'
(थोड़ा-बहुत? मन हो तो पचास लिटर।)
'आज, शरीर खराब नहीं है।'
कह, वह होंठ दबा कर हँसी थी, जिसका अर्थ है, इच्छा होने पर ही 'शरीर

खराव' हो सकता है। हालाँकि मैं जानता हूँ कि यह सब बातें सच नहीं हैं। क्योंकि ड्रिंक करने में वह अनभ्यस्त नहीं है, फिर हाफ-गृहस्थ के चलन की बातें क्यों कहती है, समझ नहीं पाया। हाफ-गृहस्थ कहने से जो अर्थ निकलता है, यानी दुनियादारी में रहकर ठीक बँधे समय पर एक दिन वेश्यावृत्ति करने के लिये जो बाहर जाये और फिर लौट कर बाप, भाई, माँ, बहन या विवाहित हो तो स्वामी और बच्चों को साथ लेकर दुनियादारी का जीवन-यापन करे, अर्थात् गृहस्थ घर की लड़की या बहू, जो गृहस्थी के लिये ही देह बेचे, वही हाफ-गृहस्थ है। (अर्ध वेश्या, यही तो? इससे भी सहज और सुचिन्तित विश्लेषण और क्या हो सकता है!) नीता को ऐसा नहीं कह सकता, जिसे शराब पीने में कोई बाधा नहीं बल्कि पीना ही पसन्द करती है, लेकिन सीधे कबूल करने में आनाकानी करती है। ड्रिंक की बात उठते ही वह 'नहीं-नहीं रहने दो' कहती है, और पीना हो तो 'आज देह कैसी-कैसी कर रही है, थोड़ी पी जाय' कहेगी। शायद नारी होने मात्र से शराब पीने की बात सहज रूप से स्वीकार करने में कोई ऐसी स्वाभाविक बाधा है, जो इस समाज की नारी के मूल आकर्षण को ही नष्ट कर देती है। भय की बात सोचकर ही इस सहजात बाधा की बात कह रहा हूँ।

मैंने कहा था, 'थोड़ा खराब करो न, शरीर को।'

नीता उस वक्त सोने के कमरे में जा रही थी, मैं भी उसके साथ ही देह-से-देह सटा कर चल रहा था। उसने ड्रेसिंग टेबुल के पास खड़ी हो, मुँह देखते-देखते कहा था, 'वह सब न हो तो नहीं चलता, यही तो? तब बार में ही जा सकते थे।'

मैं जो जा नहीं सकता, कुत्ता जो जा नहीं सकता, इसीलिये मालिक की इतनी धमकी और शासन है। जानता था, वह कहते ही जायेगी, आसानी से मानेगी नहीं, इसीलिये बोला, 'न हो, तो भी चल जायगा, पेट में तो कुछ है ही, वैसे कुछ और जम जाता।'

'नहीं, जमाने-टमाने की जरूरत नहीं।'

कह कर उसने मेरी ओर देखा था (हजार हो, लेकिन प्रेमी तो है, उसे शराब पिलाना क्या नैतिक अन्याय नहीं?) और सोने के कमरे के बीच ही एक छोटे से पार्टिशन के रेफ्रिजरेटर से एक आधी भरी जिन की बोतल निकाल लाई। जिन! शराब पीना जब शुरू किया था, उसी वक्त पियक्कड़ों के मुँह से सुना था, 'शराब नहीं, घोड़े का मूत है, या लड़कियों का ड्रिंक। (एक पाइंट पीने के बाद जो कहना हो कहो, घोड़े का मूत चाहे लड़कियों का ड्रिंक।) इसीलिये जिन

पीने पर मजे का नशा होने के बावजूद मुँह बिचकाने का अभ्यास हो गया है। जानता था, नीता की कोई दोस्त या सहेली लायी होगी। अगर मैं जानता कि यहाँ आ रहा हूँ, तो रास्ते से निश्चय ही ह्विस्की की एक बोतल खरीद लेता। तब भी उससे कहा था, 'अपने लिये लाई थी, है न।'
'हाँ, मैं तो पीकर लोट-पोट हो रही हूँ।'
जानता था, वह यही जवाब देगी। इस बारे में कुछ और कह कर झूठी बातें सुनने के बजाय मैंने उसके हाथ से बोतल ले ली थी। वह फिर आईने के सामने जाकर खडी हो गई थी। मै लकडी के पार्टिशन के भीतर से खुद ही दो गिलास और लाइम की बोतल निकाल लाया था। वह आईने के भीतर से सब देख रही थी और बालों को खोलकर मोटी कघी से फैला रही थी। मैंने जिन और लाईम डालने के बाद उसके गिलास में पानी डाल दिया था। अपने गिलास मे पानी नही ढाला। इस शीतल सन्ध्या में ठडे पानी का स्वाद लेना मैं नहीं चाहता था। स्वाद को रोचक करने के लिये ही लाईम मिलाया था, वह भी अच्छा नही लगता। बीयर होता तो वही मिलाता। जिन नीट पीने में ही मुझको अच्छी लगती है। बचपन में होमियोपैथ की लिक्वीड दवा जो खायी थी, उसी का स्वाद याद आ जाता है।
दोनों गिलास लिये नीता के सामने जाकर खडा हो गया था। कघी चलाना रोक कर उसने घूम कर देखा था, कहा था, 'मेरे लिये क्यों डाली?'
'थोडी-सी, आज सन्ध्या अचानक मुलाकात हो जाने की खुशी में।'
मेरी आवाज गद्‌गद हो गई थी। मै उसकी ओर देख रहा था। नीता भी देख रही थी। जैसे (मेरी धारणा) यह समझने की कोशिश कर रही हो कि आज शाम अचानक उसके साथ मुलाकात न होने पर किसके साथ होती या मैं क्या करता, कहाँ रहता। उसके बाद वह जैसे मेरी ओर, मेरे चेहरे की ओर, देखकर मुग्ध हो गइ थी। मेरे साथ बीते दिन, क्षण उसे शायद याद आ रहे थे। और मुझको इस शाम पा जाने के बीच अगर किसी तरह का असन्तोष, अनिच्छा, द्विधा थी, तो वह समवत खत्म हो रही थी। और शायद इसीलिये उसने आवेग में कहा था, 'सच ही, तुमको इस तरह, ऐसी जगह देख पाऊँगी, सोच भी नही सकती थी। एक बार तो सोचा, पुकारूँ ही नहीं।'
'क्यों?'
'जानती हूँ, आकर यही सब पीना चाहोगे और फिर ।' बाकी का उसने उच्चारण नही किया, भौंहों को थोडा-सा मोडा था, होंठों का कोना दबाया था,

होठों और आँखों में एक स्पष्ट इशारे की हँसी उभर गई थी, सब कुछ साफ समझ में आ गया था, मैं और क्या चाहूँगा या करूँगा। उस वक्त मैं उसकी देह की ओर देख रहा था, और दोनों हाथों में अगर गिलास न होता तो निश्चय ही हाथ बढ़ाता। ऐसी हालत में निश्चय ही जो इच्छा न बतायी जाय, उसे लड़कियाँ अच्छी तरह जानती हैं, यह सभी को मालूम है, और सबकी टेकनीक भी एक है, उन्नीस या बीस। मैंने गिलास बढ़ा दिया था, 'लो पकड़ो।'
वह कंघी रख कर लकड़ी के पार्टिशन की ओट में चली गई थी। उसके चेहरे पर हँसी थी, जैसे समझ गई हो, हाथ खाली होते ही मैं किस तरफ बढ़ाऊँगा। दोनों गिलास रख मैं भी पार्टिशन के अन्दर चला गया था। देखा था, उसने हीटर जला दिया था, रेफ्रिजरेटर में रखा भुना मांस निकाल कर उस पर चढ़ा दिया था। मैंने पूछा था, 'क्या कर रही हो?'
उसने कोई जवाब न दे, एक प्लेट और चम्मच निकाला था। समझ गया था, कुछ खाने-पीने की व्यवस्था हो रही है, जिसे शराब की चाट कहते हैं। मैंने उसी हालत में पीछे से उसको गोद में ले लिया था। तब उसने कहा था, 'जानती हूँ, आफिस से निकल कर खाली पेट ही यह सब चला रहे हो।'
पता नहीं, इस तरह की बातें मेरी समझ में आती है या नहीं, यह सब स्त्रियों की सहजातीय बातें हैं या नहीं। हो सकता है, वह अपने दूसरे दोस्तों को भी इसी तरह कहती हो, मुझको भी कहती है, आज भी कही थी, तब भी इससे इनकार नहीं किया जा सकता कि इस तरह की बातें बेहद अच्छी लगती हैं। लगता है, यही सब प्रेम-व्रेम की बातें हैं, खाली पेट ड्रिंक करने से लीवर को (जिस वस्तु को अभी ही बहुत लड़ कर सुला आया हूँ।) नुकसान पहुँचेगा, इसकी चिन्ता उसे है। मेरे लीवर के लिये उसे चिन्ता है—यानी मेरे अच्छे के लिये। इस तरह की चिन्ता से यह धारणा बनती है कि वह मुझको प्यार करती है, या हो सकता है, उसने कुछ भी न सोच कर ही ऐसा कहा है, एक रिवाजी चलन में आकर ऐसा कहा है। शराब के साथ थोड़ा गोश्त-वोश्त खाने की जरूरत होती है, जैसे चाय के साथ लोग बिस्कुट देते है। या उसकी अपनी जरूरत हो सकती है, शायद उसीका पेट खाली हो, जिस रूप में भी हो, बात विशेषतः नीता के मुँह से सुनने के कारण ही, मेरे कान में दूसरी तरह से लगती है, जिस वजह से मेरा मन हठात गम्भीर हो जाना चाहता है, गम्भीर; माने सीरियस (क्यों? प्रेम! देखो बाबा, एकदम से ही पगला मत जाओ।) यानी जिसे कुछ-कुछ भावावेश कहा जाय।

मैंने उसे पकड़ कर थोड़ा-सा सीने में दबाते हुए कहा था, 'किन्तु तुम रात में क्या खाओगी, तुम्हारा खाना इस तरह से—।' (जैसे इस मुहल्ले में रात को अब खाना नहीं मिल सकता क्या दुश्चिन्ता है।)
बात पूरी किये बिना ही मै चुप हो गया था। नीता ने कहा था, 'वह हो जायेगा, अभी थोड़ा कुछ।'
मैंने कहा था, 'वह होगा तब, जब रात में दोनों ही कहो खाने जायँगे।'
'किन्तु चित्रा से तो कुछ नही कहा गया है, उसे लौटते वही रात दस, साढे दस हो जायगा।'
चित्रा, नौकरानी का नाम है, वही लड़की, जिसके नाम के बारे में मैंने कितना-कुछ सोच लिया था। अलका, अशोका, अनीता, जिस नाम को उसने निश्चय ही उधार लेकर रख लिया है, वह नाम चित्रा है, एव वह भी निश्चय ही उधार लिया गया है। कहा था, 'इतनी रात होगी?'
'हाँ, रोज ही इसी तरह आती है, शाम को चली जाती है, उसके भी तो कई हैं।'
'आकर न हुआ तो थोडी देर बाहर बैठी रहेगी।'
'इसमें कोई असुविधा नही है, रात ग्यारह के अन्दर तो लौट आऊँगी मै।'
जिसका अर्थ है, चित्रा प्राय ही इस तरह बाहर बैठी रहती है, और नीता बहुत रात गये लौटती है। तब मैंने एक बार घड़ी देखी थी, पौने सात। माल प्लेट मे डाल कर नीता ने पार्टिशन के बाहर टेबुल पर रख दिया था। मैंने खुद ही फिर गिलास उसकी ओर बढा दिया था, उसने हाथ में लेकर घूँट भरा था, मैंने भी भरा था, उसके बाद उसे पकड़ कर चूम लिया था, और प्रतिदान के लिये उसके होंठों के पास होंठ रख, उसकी आँखों की ओर देखा था, वह हँसी थी, मेरी आँखों की ओर थोड़ा देखा था, ओठ कर होंठ से थोडा छुआ दिया था। मैंने अधिक आशा की थी, छाती के पास खींच कर और चूमना चाहा था, और वह जरा दाँत मींच कर, आँखें तरेर, जैसे धमका रही हो, इसी तरह हट गई थी। हट कर रेडियो ग्राम का ढक्न खोला था, रेकार्ड चुनना शुरु किया था, यद्यपि तब भी वह गिलास साथ ले जाना नहीं भूली थी, घूट भरते-भरते रेकार्ड चुन रही थी, मै अपना गिलास एक ही घूट में शेष कर, नये सिरे से ढालते-ढालते गुनगुना उठा था, 'ए पीसफुल पोर्ट अनडैमेज्ड बाई दी स्टोर्म।' उसी गीत को क्यों गुनगुनाया था, नहीं जानता, 'तूफान में अक्षत एक शान्त बन्दरगाह,' नाविक बन जहाँ जाने की गायक की इच्छा थी, इस तरह का गीत। तूफान में अक्षत शान्त बन्दरगाह

कहने से क्या समझ में आता है, मैं अवश्य ही नहीं जानता, निश्चय ही वर्जित नहीं। यदि उसी तरह सोचकर कोई गीत लिखा जाता है, या इस तरह की कल्पना की गई हो, 'जिसे कोई भी आघात दबा नही सकता, किसी भी आघात से जो टूटता नही, पवित्रता खोता नही,' (बन्दरगाह की भी पवित्रता, वेश्या को भी आघात से टूट जाने का भय, जैसे कलकत्ता बन्दरगाह को हम पहचानते नहीं, जॉनि कीप ऐसाईड योर लीरिक, साले ने पहचाना है···!) क्योंकि, गीत का वक्त प्रायः उसी तरह का है, एक शान्त अक्षत बन्दर में उसने लंगर डालना चाहा है। महत्व-संधानी हीरेन ही इसका मर्म-उद्धार कर सकता है। मैं दरअस्ल लय के लिये, ताल के लिये ही, गुनगुना उठा था, जिसमें पाँव का ताल और कमर की लचक होती है।

उसके बाद रेकार्ड बज उठा था, पहला गीत, 'एन एण्डलेस किस।' नीता गिलास लिये खिसक आई थी और रेकार्ड के साथ स्वर मिला कर खुद भी गुनगुना उठी थी, गिलास गाल पर दबाकर उसने मेरी ओर देखा था और मन्थर ताल से थोड़ा-थोड़ा हिलने लगी थी। नये सिरे से भरे गिलास से मैंने घूँट भरा था, नीता के पास जाकर उसके गिलास से उसको टकराया था, उसने गिलास खाली कर दिया था। मैंने फिर ढाल दिया था और आगोश में भर कर वाल्ज के मन्थर ताल पर नाचना शुरू किया था। एक-पर-एक गीत बजता चला जा रहा था, 'हेन आई वाज ऑन दी वे टू माई गेल···' 'ए सॉफ्ट एण्ड लिक्वीड जॉय फ्लोड··', एक-पर-एक गीत बजता चला जा रहा था, हम नाच रहे थे, मैं अधीर हो बार-बार चूम रहा था, एक-एक रेकार्ड शेष हो रहा था, और अगला शुरू होने के कई सेकेण्ड के बीच हम दोनों ही घूँट भर लेते थे। एक पीठ के रेकार्ड जब खत्म हो गये थे, तब मैंने बाकी को उलट दिया था। नीता ने ठीक ही हिसाब से रेकार्ड चुने थे और चलाये थे। नयी लय और ताल बज उठी थी, नये गीत पर हमने ट्वीस्ट नाचना शुरू किया था। नीता की छाती और कमर का हिलना देख मेरा मिजाज खराब (खराब, अर्थात् जिसे हुलसना कहते हैं) होता जा रहा था, नीता दाँतो से होंठ काट रही थी, आँखें कुछ लाल हो गई थी, उन्ही लाल आँखों से जैसे मुझको कुछ इशारा किया था, ऐसा कुछ, जो वास्तव में ट्वीस्ट के आम तरीके के अन्दर ही आता है, और मेरे मस्-मस् शब्द के समय···'उ-या-ई-ल्या' शब्द (जो मुझे वर्षा की रात में अकेली कुतिया के काम-कोहरन जैसा लगता है) निकाल रही थी और खिलखिला कर हँसे जा रही थी। देखकर, नाच-टाच चूल्हे में जाय (शायद पुकार सुन गरमाया

कुत्ता साँकल तोड़कर दौड़ा था) उसे पकड़ने की इच्छा हो रही थी। पकड़ा भी था वैसे ही, जैसे ही गीत शेष हुआ था, नाच रुका था, हाथ से ताली बजा उसे सीने के पास खींच लिया था। उसकी साड़ी का आँचल खिसक गया था, मैं उसे खींच कर पलँग पर ले गया था, एवं आसन्न घटना का अनुमान कर के ही बत्ती बुझाने या आईने की बात उठी थी, मैंने बाधा देकर (दर्शन के लिए) उसकी देह उघाड़ दी थी। तभी जूता खोलने की बात उठी थी, स्वभावत ही उस समय मेरी दिलचस्पी उस सब में नहीं थी, वरन् उत्साहवश जो-जो कर रहा था या बोल रहा था, उससे नीता क्रमश मेरे सीने के नीचे (जैसे बिच्छू के काटने के जहर से) लहर की तरह हिलोर खाती, दुहरी-तिहरी हो रही थी, एवं सिर्फ बीच-बीच में 'नहीं' 'क्यों' (यहा, इसे ही क्या प्रेम कहते हैं, निखालिश प्रेम का तो यही सर्वोच्च शिखर है, बोलो बाबाजी, नीता राय प्रेम, निकपित हम, कामगन्ध नहीं उसे) या 'तुम्हारी तो स्त्री दत्त है', इत्यादि शब्द बाण छोड़ रही थी।
उसके बाद प्रेम जब शेष हुआ, तब, हाँ, तभी ही, टुकड़े-टुकड़े में और फटे-फटे भाव से बातें शुरू हुई थीं। नीता तब भी लगभग मेरी छाती के पास थी, फिर भी मेरा पूरा भार उस पर नहीं था, उसकी उघड़ी देह पर मेरा बायाँ हाथ लुढ़का पड़ा था। बायाँ पाँव उसकी कमर के ऊपर रख, मैं उसके मुँह की ओर देख रहा था। और मेरी वही घृणा जग उठी थी, क्रोध और घृणा, एक भीषण आसक्ति अथच वैसी ही अनासक्ति, जो बहुत-कुछ विरोधाभास जैसा ही लगता है, उसी कारण स मैं उसके मुँह की ओर देख रहा था, नीता भी अलसाई अधमुँदी आँखों से देख रही थी, पता नहीं, मेरी तरह उसे भी मुझसे घृणा हो रही थी या नहीं, क्रोध आ रहा था या नहीं। तब इस तरह बातचीत शुरू हुई थी
'यदि आज मुलाकात न होती—'
इसके बाद मैंने मन-ही-मन कहा था, किसके पास अभी इस तरह ने होती कौन जाने। उसके मुँह पर थूक फेंक देने की मेरी इच्छा हो रही थी।
'तो किसी दूसरी के पास दौड़ते, नहीं?'
'मैं न तुम?'
'क्यों, क्या समझते हो तुम मुझे?'
'मुझे तुम क्या समझती हो?'
'पुरुष जो होते हैं।'
'तुम्हें भी मैं एक औरत समझता हूँ। औरतें जो होती हैं, ठीक वही।'

'औरतें क्या होती हैं ?'
'हर चाहनेवाले के पास जो चली जाती हैं, और चाहती हैं कि सब उसी को चाहें।'
'और तुम सब ? चाहते हुए घूमते रहते हो।'
'हाँ।'
'और भालोबासा (प्रेम) ?'
'जिस बासा में (घर में) भालो (अच्छी) लैवेटरी है।'
मैं हँसा था, नीता ने कहा था, 'वह तो मैं तुमको शुरू से ही देख कर समझ गई थी।'
उस क्षण उसके मुँह पर थूक फेंक देने की इच्छा हो रही थी, फेंका नहीं, केवल उसके मुँह की ओर देखा था, और मुझे प्रथम प्रेम की बात याद आ रही थी, जिस पर, अब मुझे सन्देह होता है। तब मैं स्वभाववश निराश या हताश नहीं था, दाँत और नख को तेज कर रहा था सम्भवतः। कहा था, 'क्योंकि तुमने शुरू में मुझसे प्रेम किया था।'
'तुम्हारी आँखें बेहद लाल नजर आ रही हैं।'
'माल चढ़ाया है।'
'उफ्! सीने में लग रहा है, छोड़ो न।'
'ऐसे दबाने में अच्छा लग रहा है।'
'इसका अर्थ है, तुम भी वही हो, उसी तरह के बीस्ट, तुम लोग कभी भी प्यार नहीं कर सकते।'
'और तुम एंजिल हो, कर सकती हो।...
'जीवन में किसी लड़की से कभी सच नहीं कहा। इस समय तुमसे मुझे बेहद घृणा हो रही है।...
'और तुम सती हो, हमेशा सच बोलती हो, तुम्हारे मुँह पर थूक देने की इच्छा होती है।'
'मेरी भी होती है। छोड़ो, और गला पकड़ने की जरूरत नहीं।'
'नहीं, नहीं छोड़ूँगा।'
मैंने उसका गला दबाया नहीं था, मेरी केहुनी ही उसके गले पर थी, कंठ पर बैठती चली जा रही थी। मैं देख रहा था, उसकी आँखें फटी पड़ रही थीं। वह कहना चाह रही थी, 'तुम—।' मैं अपने शरीर की पूरी शक्ति के साथ दबा रहा था, शायद इसीलिये मेरे गले की आवाज दबी-दबी और भारी सुनाई पड़ रही थी; कहा था मैंने, 'कुछ बोलने की जरूरत नहीं।' उसकी गर्दन इतनी नरम है,

इसके पहले कभी नहीं जाना था, जैसे केहुनी किसी गढ्ढे में धसती जा रही थी। नीता के हाथ चूँकि उसके दोनों ओर पड़े थे, शायद इसी वजह से उसने दोनों हाथों से हठात् मेरा पेट पकड़ लिया था। मेरी केहुनी हटाने का उपाय उसके पास नहीं था, इसीलिये उसने इतने जोर से पकड़ा था, जैसे पेट फाड़ ही डालेगी। मैंने झटके से अपने शरीर के निचले हिस्से को ऊपर खींचा था, फड़-फड़ शब्द के साथ कमीज फटती चली गयी थी, और जोर मार कर उठने के कारण ही सम्भवत केहुनी का दबाव गर्दन पर बढ़ता जा रहा था, जिस कारण उसके दोनों पैर शून्य में उठ कर हिलने लगे थे। वह कमर (दूसरी बातें याद दिला देती है) भी ऊपर की ओर फेंक रही थी, और मेरी छाती जैसे फटी जा रही थी। उसके बाद आहिस्ता-आहिस्ता, जिसे शान्त हो जाना कहते हैं, उसी तरह हाथ-पाँव ढीले कर, स्थिर हो गई थी वह। इसे निश्चय ही हत्या कहते हैं। सच ही, क्रोध बिलकुल चाण्डाल होता है। हालाँकि मैंने उसका खून करना नहीं चाहा था, (कसम से) क्योंकि अगर उसका खून करना चाहा होता तो, मुझे खुद अपना भी खून करना चाहिये था। किन्तु ओ बाबा, असम्भव, वह तो मैं सोच भी नहीं सकता कि मेरी साँसें बन्द होती जा रही हैं, और मैं सच ही मरा जा रहा हूँ, हालाँकि उसी घृणा और क्रोध से नीता भी गला दबा कर मुझको मार सकती थी। उसकी बातों से, जैसा कि लग रहा था, ठीक मेरी ही तरह उसे भी आसक्ति या अनासक्ति, या पता नहीं, क्या पाने की प्रबल इच्छा हो रही थी अथवा घृणा और क्रोध से मुझे मार डालने की इच्छा हो रही थी। मैं जैसे झगड़ कर भी कभी इतना बावेला नहीं मचाता था, नीता भी आज-जैसे क्रोध में इतनी बातें कभी नहीं बोलती थी। आम तौर से हम हमेशा ही एक-दूसरे को समझ कर चलते रहे हैं।

कौन जाने, शायद इसीलिये मुझे वह कहानी याद आ रही थी, कि एक अचूक निशाने के शिकारी ने एक नरभक्षी बाघ को मारने के लिये, पेड़ के नीचे एक हृष्ट-पुष्ट बकरे को बाँध रखा था और बाघ अपने शिकार की गन्ध पाकर अंधेरे जंगल में खोजता-खोजता आया था। लेकिन घटना सम्पूर्णत वैसी ही नहीं है। इस तरह की बात बिलकुल हास्यास्पद है, क्योंकि वह शिकारी कौन है ? कैलकटा पुलिस कमिश्नर ? वे कैसे जानेंगे कि इस तरह का एक नरभक्षी बाघ कलकत्ता के लोगों के बीच, एक खूब ही सूटेड-बूटेड और दायित्वशील भद्र पुरुष के रूप में आसानी से विचर रहा है ? या मुझको खत्म करने के लिये किसी भयंकर आततायी ने (वह रहता कहाँ है ?) इस तरह का एक जाल बिछाया है ? दुर, यह बेकार की चिन्ता है, सभी तो शिकारी हैं, सभी जाल

बिछाते हैं।

जो हो, मैं पसीना-पसीना हो गया था और नीता की टूटी गर्दन वाला चेहरा देखने में अच्छा नहीं लग रहा था, इसीलिये मैंने उसे औंधा कर दिया था। उसके बाद—।

पूरी घटना अगर इस तरह है, तो इस वक्त मेरे लिये क्या करना उचित होगा, वही सोचने की जरूरत है। नीता जब कि मर ही गई है, इसे जब खून ही समझा जायेगा, तब मेरे लिये उचित है कि यहाँ से कट जाऊँ (कितना बजा है ? अरे बाबा, पौने दस ! लौंडिया नौकरानी का प्रेम करना शायद अब खत्म हो चुका हो, और वह किसी भी समय आ जायगी) किन्तु किताबों में जो लिखा है, अपराधी कोई-न-कोई चिन्ह छोड़ जाते है, उस तरह का कुछ मैं भी छोड़ तो नही जाऊँगा ? उसके बाद चट हथकड़ी, चलो श्रीघर (जेल)। खेल खत्म।

मैं उठ बैठा। आईने की ओर देख कर बटन खुले पैंट को जल्दी से पकड़ लिया। कमीज के फटे हिस्से पर निगाह पड़ी, खींच कर उसने फाड़ा है, प्रचण्ड शक्ति कहनी होगी, टेरेलीन की नई कमीज को फाड़ डाला है। गौर से देखा, नीता के नाखून का रंग भी थोड़ा-सा कमीज पर लग गया है। कमीज के फटे हिस्से को पैंट के नीचे कर पलँग से उतर कर बटन लगाये। पलँग की चादर को खींच-तान कर सीधा कर दिया और उसके ही ब्लाउज ब्रेसियर और साये से चादर झाड़ दिया। उसकी देह को भी पोंछ डाला। इसलिये कि लोग कहते हैं, निशान-टिशान रह जा सकता है, जिसे फिंगर प्रिन्ट कहते है। गिलास, डिस, चम्मच—सब कुछ पार्टिशन की ओट में लगे बेसिन में रख पानी ढाल दिया। उसके बाद आईने के सामने खड़े होकर टाई बाँधते-बाँधते देखा, ठीक है, कमीज का फटा हिस्सा दिखाई नहीं पड़ रहा है, लेकिन हाय रे, पाँव के निशान का क्या करूँगा ? घर को बुहार दूँ ? यह कौन-सी मुसीबत है बाबा, आखिरकार क्या घर में झाड़ू लगाना पड़ेगा ; इतनी मजूरी में यह सब नहीं पोसायगा। इतना झमेला लेकर, खूनी यह सब कैसे करते हैं, मैं तो यही नहीं समझ पा रहा हूँ। फिर भी पार्टिशन की ओट से झाड़ू ले आया। शोफा पर रखे कोट को पहन लिया, आईने की ओर देखा (खच्चर ! आँख मारता है !), अपने को देख कर हाथ से सर के बालों को ठीक कर लिया। उसके कुछ बाद नीता की ओर देखा। किन्तु आईने के बजाय नजदीक जाकर देखने की इच्छा हुई। नजदीक गया (मुझे गुस्सा दिला दिया था, इसीलिये तो मरी।) लगा, नीता को अब कभी नहीं पाया जा सकेगा, घृणा करके भी चूमा नहीं जा

सकेगा, और आज वह सच ही जिस तरह से नाची थी, लगता है, खूब खुश थी। बाहर खाने की बात थी, मैं तो यहाँ तक सोच गया था कि, किस होटल में खायेंगे। ऐसे होटल के बारे में सोच रखा था, जहाँ ड्रिंक करने के बाद हम नाचेंगे। यहाँ तक सोचा था कि पूरी रात उसके साथ बिता सकता हूँ या नहीं। बीच में ही, देखो तो, क्या हो गया! लेकिन मैं, सच कहने में क्या हर्ज है, शांति भी महसूस कर रहा हूँ। लेकिन यह किस तरह की शांति है, यह तो मां-भगवती ही जानें, तब भी कसी एक प्रशांति (प्रशांति ?) मुझको जकड़ती जा रही है।

मैंने उसकी देह पर हाथ रखे बिना ही झुककर उसे चूम लेना चाहा (नाटक लग रहा है, फिर भी इसी तरह की इच्छा हो रही है) जब कि बिना पकड़े उसे चूमना असभव है। क्योंकि उसका मुँह जिस तरह है, उससे उसके होंठ ऐसी जगह पड गये हैं, जहाँ तक पहुँचना ही मुश्किल है। जितनी दूर तक सभव था, झुका, और उसी समय दिखाई पड़ा, उसके होंठों पर खून है। आश्चर्य, इसके पहले नहीं देखा। जमे खून की मोटी पर्त को देखकर चूमा लेने की मेरी इच्छा काफूर हो गई। मन-ही-मन कहा, 'रहने दो, ठंड और मरे होंठों को चूमने की क्या जरूरत है, वह जिन्दा थी तो बहुत बार चूमा है', यही सोचकर रह गया, मन-ही-मन चुम्बन का एहसास किया। नीता भी तो आज बेहद खुशदिल थी। मेरे नीचे के होंठ पर तो अब भी महसूस हो रहा है। खाना खाने के समय और महसूस होगा। नहीं, अब और देरी नहीं, बस चल दिया जाय, नौकरानी आ जायगी।

सीधे होकर खड़ा हुआ कि ठीक उसी समय टेलिफोन बज उठा, जैसे छाती धक् से रह गई। क्योंकि लगा, जैसे कोई आदमी ही आ गया हो, आवाज उसी तरह तीर की भाँति आकर बिंध गई। मैं उसी तरह सन्न होकर खड़ा रहा, जिससे यह प्रमाणित हो जाय कि, 'नो रिप्लाई', जिसका अर्थ है नौ बजकर पचास मिनट पर इस घर में कोई नहीं था। लेकिन बगल के एपार्टमेंट के आदमी अगर सुन लें, बुद्धू रुकेगा कब, (या प्रोषित साड़ कहना ही अच्छा, क्योंकि रिंग इस तरह बज रही है, जैसे नीता को पुकार रही हो, 'नीता कहाँ हो? मैं रात को तुम्हारे एपार्टमेंट में आऊँगा, नी-ता, नी-ता!' लेकिन प्यारे! यही होता है, हैमिम)। मैं जो सख्त हो खड़े-खड़े सूखी मछली हो गया हूँ। सच ही, टेलिफोन करनेवाले आदमी की आज आने की बात थी,

सोचता होगा, नीता बाथरूम गई है, रिंग सुनकर···जाह्, रुका है, आह्; हरी बोल, हठात् सब जैसे शून्य लग रहा था। इतना, जिसे स्तब्ध कहते हैं, इसके पहले नहीं था। लेकिन नहीं, अब और देरी नहीं, नौकरानी आ जायगी।

जाकर झाड़ू ले आया, फर्श पर इधर-उधर घुमाया और दरवाजे की ओर चलता गया और झाड़ू फेंकने के पहले याद आया, झाड़ू के मुट्ठे पर हाथ का निशान रह सकता है, इसलिये जल्दी-जल्दी रुमाल निकालकर पोंछा और निशाना लगाकर पलँग के नीचे फेंक दिया। रुमाल ढके हाथ से दरवाजा बंद कर दिया। आटोमेटिक दरवाजे में अन्दर से चाबी पड़ गई। अब बाहर से कोई खोल नही सकता। एक धुंधली रोशनी में देखा, सीढ़ी के पास कोई नहीं है, जल्दी-जल्दी उतर गया। रास्ते मे लोग कम हैं, कम होंगे ही, ठंडक जो पड़ रही है, यद्यपि रात दस बज गया है, आधी रात के शराबखाने के सिवाय उपाय नहीं। उसी तरफ पाँव बढ़ाये।

नहीं, अधिक नशा होने का खतरा नहीं है, गिलास से घूँट भरते वक्त ही यह समझ में आ गया। मैं नशे में धुत् हो जाना नहीं चाहता था। बल्कि एक गुलाबी नशा मुझे चाहिये था, जिसे खुमारी कह सकते है। लेकिन इस वक्त उसका कोई चिह्न नहीं है। शाम की ह्विस्की या नीता की जिन, सब जैसे गायब हो गई हैं। ऐसी तो बात नहीं होनी चाहिये थी। प्राय छ-सात पेग पेट में गये, फिर भी शरीर पर कोई असर नहीं है। और यहाँ इस 'मिड-नाइट बार' की ह्विस्की में कोई स्वाद नहीं है, चोट्टे पानी मिलाकर बिल्कुल पतला बना देते है। क्योंकि जानते हैं, यहाँ जो आता है, बेदम होकर ही आता है। इस वक्त तक, दूसरे बार बद हो जाते है, और जब तक नशा न हो जाय, लोग पीते ही जाते है, अत पिलाओ कारपोरेशन का पानी। हाँ, कुछ लोग लडकियाँ खोजने भी यहाँ आते है, वे भी शायद बेबस होकर ही आते है, क्योंकि इतनी रात को लडकियाँ और कहाँ खोजी जाँय। यह और बात है कि राज्य की जितनी बूढी वेश्याएँ है, सर से पैर तक रग लगाकर, स्लीवलेस और आधी पेट की चोली पहन, सध्या वेला से ही एक बोतल बीयर या ऐसा ही कुछ लेकर (आखिर कानून से बचकर भी तो रहना है, इसलिये खद्दर के छद्मवेश में ही आकर बठना होगा, क्योंकि बार तो बार है, वेश्यावृत्ति का स्थान नहीं, और वेश्यावृत्ति इस देश में गैरकानूनी है। अहा, कृपा करो माँ, वेश्यावृत्ति गैरकानूनी है, इसीलिये सभी को खद्दर पहनकर बैठना होगा, जिससे कानून से बचा जा सके) यहाँ बठ जाती है। जिन्हें देशी लडकियाँ अच्छी नहीं लगतीं, साडी-वाडी पहननेवाली लडकियाँ जिन्हें अच्छी नहीं लगतीं, मेमसाहबी वेश ही जो पसन्द करते हैं, (फिर चाहे वह काली हो

या गोरी, किसी भी गाँव, किसी भी मुल्क, किसी भी धर्म की हो, बस अंग्रेजी में बात करनेवाली मेमसाहब उसे होना चाहिये, तभी तो मेमसाहब !) वे पहले यहाँ आते हैं। इस बार की ख्याति इसलिये है कि लड़कियाँ यहाँ भीड़ लगाये रहती है, और लड़कियाँ जहाँ भीड़ लगाये रहती हों, [ऐसी लड़कियाँ, जिनका लक्ष्य कलकत्ता के बाशिन्दे नही होते, होते हैं बन्दरगाह के विदेशी जहाजी सैयाँ, भूखी शार्क मछली की तरह जो झपटते हैं, टेंट की कौड़ी फूँक देने में जो सोचते नही, क्योंकि उनके पेट का भात जहाज में बँधा है जो लौटकर उन्हें खाने को मिल जायगा, जहाँ ऐसे लोगो की भीड़ हो।] वहाँ शराब में कारपोरेशन का पानी मिलेगा, यह तो जानी हुई बात है। लेकिन यहाँ सिर्फ बुड्ढियों की ही भीड़ है, यह नहीं कहा जा सकता। देखकर ही समझा जा सकता है कि छोकड़ियाँ किसी-न-किसी के बगलगीर हो गई हैं, या कोई-कोई पहले ही शिकार पकड़कर चल पड़ी है। पता नहीं, शिकार कौन है ! जिसकी जेब में रुपये हों, हमेशा उसे ही शिकार कहा जाता है, मैं यह नही मानता, क्योंकि जो रुपये देकर लड़कियाँ प्राप्त करते है, वे शिकारी क्यों नहीं हैं, समझ नही पाता; बुझ्ला-घाव सब कुछ हो सकता है वह बेटा, फिर भी बदनामी औरतो के ही माथे आती है। मुझे लगता है, यहाँ कम उम्र की, देखने मे अच्छी, जवान लड़की नहीं आती; ऐसी लड़की के टेबुल पर आकर बैठते ही झगड़ा,—किसी-किसी दिन तो मार-पीट भी होने लगती है, कुर्सियाँ तक चल जाती हैं, पुलिस बुलानी पड़ती है, उसके बाद बच्चू गुड ब्याय की तरह हाजत में चले जाते हैं। (ले हलुआ !) तब भी वेश्या ही शिकारी है, और खरीदार सब शिकार। (अहा बबुआ !) यही रस्मो-रिवाज बाजार में चलता है।

मेरे लिये कोई उपाय नही था, नीता के एपार्टमेंट से पैदल चलकर नजदीक में यही एक आधी रात का शराबखाना था, इसीलिये आया, और शायद, यहाँ के गोलमाल की वजह से हो, और भी खराब लग रहा है, नशा हो नही रहा है। म्यूजिक और गीत बराबर ही बज रहा है, जोड़े-के-जोड़े दल बाँधकर नाच रहे हैं, और वही एक गीत चल रहा है, 'दी सन इज ऑलरेडी ग्लीमिंग ऑन दी फेक्टस' (यह गीत शराबखाने में क्यों बजता है, या नीता को ही क्यो प्रिय है, नहीं जानता) या फिर 'माई लव, माई डीयरेस्ट लव !' इसके साथ हाथ-ताली और ट्विस्ट, यह सब मुझे इस समय अच्छा नही लग रहा है। उसी गवानी लड़की ने, जो मुझे यहाँ सबसे अच्छी लगती है, (काली है, लेकिन चेहरा लाजबाब है, एक शब्द में चुस्त माल है।) आज की रात तय व्यक्ति के साथ नाचते-नाचते मुझको कई बार इशारा किया है, हँसी है, जिसका अर्थ है, 'तुमको देख रही हूँ', और मैं

भी उसी भाव से हाथ उठाकर हँसा हूँ, 'ठीक है, चलाती जाओ,' तब भी नशा नहीं चढ रहा था, इसलिये उसे प्राप्त करने या बुलाकर एक साथ पीने की इच्छा नही हो रही थी। यहाँ आने का ही अर्थ है, थोडा हुल्लडबाजी करना और हुल्लडबाजी के लिये अगर इस लडकी को न प्राप्त कर सका तो मेरा मिजाज खराब हो जायेगा। इस बात को लडकी भी समझती है, शायद इसीलिये उसने मुझको सान्त्वना देनी चाही। लेकिन सच कहूँ तो, नशा चढ ही नही रहा है, बल्कि थकावट महसूस कर रहा हूँ, लुढकने की इच्छा हो रही है, जम्हाई आ रही है, आँखों में नींद की खुमारी-जैसी है। यह खुमारी नशे की वजह से निश्चय ही नहीं है। अभी मात्र साढे दस बजा है, इस समय तो बिस्तरा पकड लेने की हालत किसी दिन भी नही होती थी। नही, यहाँ से हट जाने की जरूरत है। तो घर जाकर सो जाऊँ। एक मोटे होठोंवाली दुबली-पतली लडकी छाती फुलाकर जिस तरह देख रही है, टेबुल पर आ गई तो बिना पूरा कुल्हड पिये उठेगी नही—उसके पहले ही चल देना चाहिये। अगर गोआनीज लडकी होती तो एक बात भी थी, नशा जमाने की कोशिश कर देखा जाता। लेकिन यह लडकी, जिसके मुँह की ओर देखने मात्र से ही लगता है, शरीर में जो थोडा बहुत ताप है, वह भी गल जायगा। इसे अपने पास न आने देना ही अच्छा होगा। हाथ के इशारे से बेयरे को बुलाकर बिल देने को कहा। बेयरे को दौडना नही पडा, उसकी वर्दी की जेब में ही बिल था। वैसे मुझे मालूम ही था, दो कुल्हड पी है, अर्थात दो पेग (उसमें पानी की मात्रा भी जोड लेना होगा, लेकिन कितना, मालूम नही।) अतएव पैसा देने से पहले एक बार मोटे होंठोवाली की ओर देखा और जो सोचा था, ठीक वही हुआ, आँख मिलते ही वह हँसी (हुश ! दाँत भी ऊँचे है, नकली हैं या नही, कौन जाने !), होठ हिलाये, जैसे मुझको 'गुडनाइट' कहा हो, जिसका अर्थ है, सम्भवत मन-ही मन कहा हो—'ओ सुअर का बच्चा, कट गया, एक पेग भी पी न सको।' मैंने भी ओठ हिलाने की नकल की। मन-ही-मन कहा, 'साली ने पहचान लिया है।'
दरवान ने दरवाजा खोला, सलाम बजाया, जिसका अर्थ है, 'अधेली मेरे हाथ पर भी रख जाओ।' जानता हूँ, मेरी जेब से कुछ नही निकलेगा, इसीलिये सलाम का जवाब तो दूर की बात है, न देखना ही सबसे अच्छा साहबी तरीका है। तब भी, पता नही क्यों, कधे का हुड थोडा-सा हिल जाता है। और मैं बिल्कुल साफ सुनता हूँ, दरवान मेरी तरफ देखकर, कुत्ते की हँसी हँसता हुआ थोडा सा झुककर मन ही-मन कह रहा है, 'साला फोकट का साहेब है, होटल में दारू पीने आया है।' मैंने मन-ही-मन सुना और मैंने भी मन-ही-मन कहा, 'हाँ रे घाघ

दलाल (दलाल माने पिम्प), यह सब मुझको मालूम है ।' और गर्दन को झटका दिया और रास्ते पर चला आया । नहो, यहाँ इस वक्त टैक्सी की कमी नहीं, बहुत-सी आ-जा रही है, या वैसे भी माथे पर मीटर की रोशनी जलाकर प्रतीक्षा कर रही हैं (बहुत-कुछ उसी मोटे होंठोवाली लड़की की तरह, वेकार वेश्या की प्रतीक्षा जिसे कहा जाय) क्योंकि (वे) जानती है कि यहाँ अच्छे खरीदार मिल सकते है, कुछ ऊपरी आमदनी भी हो सकती है, अगर वैसा नशेबाज मिल जाय तो पाकिट साफ कर कहीं सुला भी दिया जा सकता है ।

शीत, हूँ, कम नहीं है, लेकिन इतनी ठंडक तो नहीं लगनी चाहिये थी । शरीर को गर्म ही रहना चाहिये था, लेकिन कहाँ, मेरे शरीर में जैसे तेज नहीं, ताप नहीं, क्या हुआ, पता नहीं । एक टैक्सो का हैंडिल पकड़, दरवाजा खोल, भीतर बैठ गया । ड्राइवर ने पूछा, 'कहाँ जाना है ?' मैंने 'साउथ' कहा । वह खुश नहीं हुआ, क्योंकि मैं नशे मे नहीं था, साथ में लड़की भी नहीं थी, उसने निश्चय ही मन-ही-मन कहा होगा, 'साली किस्मत खराब है ।'

किन्तु वह कौन है, नीता तो नहीं ? एक लड़की को देखकर अचानक ऐसा ही लगा, लेकिन साथ-ही-साथ याद आया, नीता इस समय अपने घर में मृत पड़ी है, उसे इस वक्त यहाँ देख पाना असंभव है । कौन जाने, नौकरानी अब तक आई या नहीं, अगर आई भी हो तो निश्चय ही घर में घुस नहीं पाई होगी । चाबी-वाले छेद से झुककर देखने की कोशिश की होगी । मैंने कमरे की रोशनी को बुझाया नहीं था, इसलिये हो सकता है, चाबी के छेद से देख भी लिया हो । नीता नंगी-औंधी सोयी है । अच्छा, कमर का कपड़ा तो ठीक था न ? वह सब मुझे याद नहीं । कमर तक कपड़ा रहने पर भी नौकरानी जो सोच सकती है, उसने वही सोचा होगा, सोचा होगा कि दीदी ने शायद आज खूब खेला-खाया है, इसीलिये लुढ़की पड़ी है । और साथ-ही-साथ उसने सोचा होगा, कौन आया था ? यही सब सोचते-सोचते उसने निश्चय ही कॉलिंग बेल बजाया है, बाहर खड़ी रहकर आवाज सुनी है । लेकिन कोई सुराग नहीं मिला है । फिर उसने झुककर छेद से देखा है—दीदी जैसी-की-तैसी लेटी ही हैं, थोड़ी भी हिली-डुली नहीं हैं । उसके बाद, पता नहीं बाबा, बाज-वक्त मृत आदमी कुछ देर बाद जी भी उठता है, ऐसा भी तो सुना गया है । कुछ ही दिनों की बात है, एक आदमी मर गया था, श्मशान में जलाने के लिये ले जाने के बाद जी उठा । वह भी तो खून का ही मामला था । कहते हैं, एक 'हैरतअंगेज केस' हुआ था । उस तरह होने का चांस नहीं है, तो भी इस तरह अगर जी उठो तो झमेला होगा, सचमुच के खून के केस में फँस जाऊँगा । इसलिये इस वक्त हाँ या नहीं, क्या कहूँ, इस वक्त तो प्राय: भूल

हो गया हूँ कि नीता को अपने हाथ से ही मार डाला है, जब कि, यह मेरी धारणा है, पेशेवर खनी की तरह बहुतों को मन ही-मन मारा है, जिसका हिसाब लगाना भी मुश्किल है, जिसके अन्दर मेरे पापा तक आते हैं, तब भी सच, नीता को ।

मुझे अब बिल्कुल साफ याद आ रहा है, (नहीं, ठंडी हवा आ रही है, शीशा लगा दूँ ।) दो सप्ताह पहले मैंने एक अद्भुत् सपना देखा था, जिसका ओर-छोर कुछ समझ में नहीं आया था। जो घटना स्वप्न में देखी थी, वह दरअसल मेरे विषय में नहीं थी। मैंने देखा था, जालीदार रेलिंग से घिरा एक तालाब है, पिच की सड़क के किनारे ही वह तालाब है, उसके चतुर्दिक, जहाँ तक याद आ रहा है, काई लगी दीवार थी। पुराने मकान की दीवार, पुराने किस्म के घरो-जैसी उसमें खिड़कियाँ भी थी। जो हो, रेलिंग से घिरा होने पर भी रास्ते के फुटपाथ से ही सीढ़ी नीचे उतर गई है, और हो सकता है, कभी लोहे का गेट भी रहा हो, जो उस समय (मेरे स्वप्न के समय) नहो था। उस समय दिन ही था, जैसे कुछ समय पहले बारिश हो गई हो, रास्ता भीगा हुआ था, आकाश काला था, रास्ते पर अधिक लोग नही थे, जबकि वह एक शहर था, कौन शहर, मैं समझ नही पाया, अब भी नही समझ पा रहा हू। मैं कहाँ से आया था, और क्यो उसी समय, उस तालाब के किनारे गया था, यह भी मुझे नही मालूम, इसलिये स्वप्न को मैं एक उत्कृष्ट गाँजा समझता हूँ। मैंने तालाब के किनारे सीढ़ी पर एक नगे भिखारी जैसे आदमी को देखा था, वह लाठी से पानी को हिलोर रहा था। क्या है, देखने के लिये मैं भी झुक गया। पानी बेहद साफ था, काँच से भी अधिक साफ तालाब की तली दिखाई पड़ रही थी, इसीलिये मैंने देखा था, एक गोरी लड़की पानी के नीचे डूबी है। लड़की के शरीर पर कुछ भी न था। वह औंधी पड़ी थी। स्वप्न के अलावा क्या और कहीं यह संभव है कि एक मृत शरीर पानी के अन्दर डूबा रहेगा, और वह (इसे ही शायद 'स्फटिक स्वच्छ' जल कहते हैं) दिखाई भी पड़ेगा। बलिहारी है स्वप्न की, बाबा, पता नहीं उस दिन पेट में कितना 'द्रव्य संभार' था। जहाँ तक याद आ रहा है, उस आदमी ने लाठी से खोजकर पानी में डूबी लाश को निकालना चाहा था और मैं उसके पास बैठ गया था, उसके हाथ की लाठी लेकर मैंने भी लाश को निकालना चाहा था। वह भिखारी जैसा आदमी या मरी लड़की कोई भी मेरा परिचित नही था। जब मैं इस तरह देख रहा था, तभी अचानक मैंने एक पुलिस-वान दूर से आती देखी थी और देखते ही लाठी फेंककर पिच की सड़क पार कर कच्चा रास्ता पकड़कर सीधे दौड़ गया था। दो-एक बार पीछे फिरकर देखा भी था। देखा था, वान तालाब के किनारे ही खड़ी हो गई थी, पुलिस उतर

आई थी, उसके साथ एक कुत्ता था। उन्होंने भिखारी जैसे उस आदमी से पता नहीं, क्या पूछा था। उस आदमी ने उँगली से मेरी ओर बता दिया था और पुलिस साथ-ही-साथ मेरी ओर दौड़ पड़ी थी। पुलिस से भी तेज कुत्ता मेरी ओर दौड़ा था, मुझको अब पकड़ा तब पकड़ा कि, 'स्वप्न पारावार की नाव' खप् से किनारे लग गई थी, नींद टूट गई थी और यह समझते मुझे कई सेकेण्ड लग गये थे कि यह स्वप्न है। सच, मेरी छाती धक्-धक् कर रही थी। एक बार फिर घर में चारों ओर देखा था, बिस्तरे को हाथ से छूकर देखा था, और फिर धम् से लेट गया था, 'बापरे, जान बची, यह सब सच नहीं है।'

वह सब एक ही बात है, आजकल तो सब साइन्टिफिक है, कौन जाने उस स्वप्न में भी कुछ है या नहीं, लेकिन नोटावाली घटना से इस स्वप्न का कोई तालमेल नहीं, यहाँ तक कि प्रथम जाड़े की कलकत्ता की यह रात, आज का यह सब, जिसे प्रायः दिशाहारा हो जाना कहते हैं, इस दिन के साथ इनका कोई तालमेल नहीं है।

'ठहरना होगा।'

टैक्सी रोककर भाड़ा दे मैं उतर गया।

बड़े रास्ते पर से मेरे मकान के बाग की बाड़ के पास से भीतर आना पड़ता है। बाड़ से बरामदे तक का पतला रास्ता मात्र पन्द्रह हाथ लम्बा होगा, बरामदे के 'सनसेट' तले की बत्ती अगर कुछ तेज होती तो ज्यादा अच्छा रहता, लेकिन जीरो पावर का बल्ब ही हमेशा जलता रहता है। मुझे बहुत बुरा लगता है, जैसे मैं नरक के आस-पास पहुँच गया हूँ। टिमटिमाती, अंधकार-भरी रोशनी, और बाग तो ऐसा, जैसे दुनिया का आश्चर्य हो, हैंगिंग गार्डेन, गुच्छोंवाला कलावती फूल का पेड़, जिसके लम्बे-लम्बे पत्ते टिमटिम लाल रोशनी में कुरूप छाया की तरह हिलते हैं। मुझे देखते ही खराब लगता है। भय नहीं लगता, फिर भी मेरा मिजाज खराब हो जाता है। किन्तु घर में जो मालिक है, अर्थात् मेरे 'पितृदेव', उनकी राय है कि बाहर की इस रोशनी में इससे अधिक पावर भरना अर्थहीन है। क्योंकि बरामदे के लिये यही रोशनी काफी है, सिर्फ यही नहीं, बल्कि यहाँ अधिक पावर का बल्ब देने पर कभी-कभी चोरी भी हो सकता है, इस तरह मिसयूज करने के लिये पैसा नहीं है। इसके अलावा, शाम से ही जलेगा, इस तरह अधिक पैसा तो नहीं खर्च किया जा सकता, यह है भले आदमी की राय। इस तरह के हिसाबियों के लिये ही शायद यह कहावत है कि सामने से सूई नहीं देंगे, मगर पीछे से मोहर दे देंगे।

हुम्, जो सोचा था, वही हुआ। बरामदे से सीधे दो तल्ले पर जानेवाली सीढ़ी का दरवाजा बंद है और बाँयीं ओर के बाहरवाले कमरे में रोशनी जल रही है और यथापूर्व उसका दरवाजा भी बंद है। और घर में इस समय कौन-कौन हैं, यह भी मुझे मालूम है, और जाते समय इस कंक्रीट के रास्ते पर पाँव की आवाज भी

वहाँ तक पहुँच गई है, इसमें भी कोई सन्देह नहीं, और आवाज सुनकर ही जो हाथ-पर-हाथ रखे या देह-पर-देह रखे, किसे पता, पाँव-से-पाँव सटाये बैठे थे, नहीं तो होठों-मे-होठ डालकर—क्या कहा जायगा उसे, 'ओठामृत' या 'मुखामृत' पान कर रहे थे (क्यो, थूक, अमृत या दाँत की गंदगी या पायरियामृत ही क्यो न हो, समझ में नही आता, चूसते समय क्या वह सब याद रहता है? अगर याद रहता तो बहुतो के लिए मुँह-में-मुँह डालना सम्भव न होता, अन्न-प्राशन का भात उबकाई में आ जाता, ओफ्! किसी-किसी मुँह से कैसी बदबू आती है, माँ कसम, लेकिन अचरज है उन समय जरा भी ख्याल नही रहता। जबकि कुछ घिन लगती है, तब भी, लोहा चबाकर खाने जैसा ही, जैसे बेहद गंदे होटल में भी बैठकर खाया जा सकता है, कुछ-कुछ वैसा ही, पहले तो कलेजा ठंडा हो, उसके बाद वह सब सोचा जायगा, उसके बाद भी देह घिनाये तो कै की जायगी। मेरे साथ ऐसा कई बार हुआ है, यहाँ तक कि, कभी-कभी नीता के मुँह से भी बदबू निकली है। यह आश्चर्य ही है, क्योंकि वह उन विषयो में खूब ही सतर्क रहती थी। तब भी गले में फेनिनजाइटिस, क्या कहते है, ठंडा लगने से गले में दर्द होता है या पाक-स्थली साफ न रहने से बदबू सच ही आती है, मेरे अन्दर से भी निकलती है, लीवर-टीवर खराब होने पर की तो बात ही छोड़ दीजिये, जिस कारण दुर्गन्ध का भय मुझे ही अधिक है, लेकिन पेट में थोड़ी बहुत ह्विस्की-ट्विस्की रहने से उससे ही मर जाती है। इसके अलावा मैं तो उसके दाँतों की फाँक में अटके खाने की चीजों को भी चाटकर खा गया हूँ। नीता ने भी निश्चय ही खा लिया है। जैसे आज भी उसके मुँह के मांस का टुकड़ा मेरे मुँह में या मेरे मुँह का उसके मुँह में चला गया था। और मुश्किल यह कि उस समय मुँह खोलकर वह सब थूका नही जा सकता, निगलना ही पड़ता है। बाद में सोचने पर कैसा-कैसा तो लगता है। फिर भी नीता के साथ मुझको ऐसा नहीं लगता। अब भी वैसा नहीं लग रहा है, पता नही, उसको ऐसा लगता है या नही, किसी दिन बताया नहीं।) जो हो, हाँ, बाहर के कमरे में, दरवाजा बंद कर कमरे में ही बैठकर, जो सुबोध बालक-बालिका की तरह प्रेम कर रहे थे, वे निश्चय ही अपने को सबों से अलग कर, जिसे कहते है, सभ्य-भव्य होकर, जिसे कहा जाय, शालीन होकर बैठे हैं। सीढ़ी की ओर जानेवाला दरवाजा भी बंद था, उसे भी झट् से खोल दिया है, जिससे मेरे सामने साबित किया जा सके कि, 'देखो, कोरे सफेद कागज की तरह दो जगह बैठे हैं, बिल्कुल बच्चा-बच्ची है।' अगर कहो, इतनी रात को बाहर के कमरे मे दोनों बैठकर कौन-सी जरूरी बात कर रहे थे, तो यह कैसा-कैसा अभद्र, सन्देहभरा नही लगता है क्या? हजार होने पर भी भद्र लोगों

के बच्चे-बच्चियाँ हैं, माँ-बाप के मन की बातें भी जानते हैं, हाँ, वही और क्या, एक 'एंगेजमेंट,' फिर भी जिसे कहा जाता है एरेंजमेंट करके ही तो, जिसे कहते हैं सम्बन्ध देखकर ही तो ब्याह किया जाता है, पहले जैसा ऊपर से लाद देने से तो अब नहीं चलता। लिखना-पढ़ना सीखा है, बड़े हो गये हैं और घर में बैठकर ही तो बातें कर रहे हैं, बाहर जाकर आवारागर्दी तो नहीं करते (जैसे कोई देखने गया है, शाम की बेला कौन कहाँ बिताकर आया है!), अतएव यह तो होगा ही, तुमको यह स्वतन्त्रता मान लेनी होगी। यह स्वतन्त्रता! कितनी स्वतन्त्रता पाताल में गई, कौन खबर रखता है!

तब भी, जूते की आवाज से आहट मिल जाने पर भी, वे ऐसा आभास देना नहीं चाहते, इस तरह तो सावधान होने का प्रमाण मिल जाता है, अतएव मुझको कॉलिंग बेल का बटन दबाना ही होगा और मुझको भी यह मान लेना होगा कि बाहरवाले कमरे में कोई नहीं है। इसलिये मैं जान-बूझकर ही अधिक समय तक बटन दबाये रखता हूं ताकि ऊपर के लोग सुनें। साथ-ही-साथ दरवाजा खुल जाता है। दरवाजा खुलते ही सामने विदिशा खड़ी होती है (इस तरह का नाम क्यों रखा गया है, मेरी समझ में नहीं आता। जहाँ तक पता है, यह एक जगह का नाम है, यानी विदिशा उसी जगह की तरह है, उसके माँ बाप ने क्या यही सोचा था, नहीं तो क्या इसलिये कि सुनने में अच्छा लगा था, पता नहीं, तब दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता ने ही क्या अपराध किया था!) मेरी 'सहोदरा,' जिसे 'बहन' कहा जाता है, का मुँह देखकर ही समझ में आ जाता है जो वह कहना चाहती है, 'खोलती हूँ, क्यों इतना दबाये जा रहे हो।' फिर भी वह यह न कहकर मुँह के भाव से बताना चाहती है और मुझे यह जानना नहीं चाहिये, क्योंकि मुझे तो पता नहीं है कि नीचे बाहर के कमरे में भी कोई है, अतएव तुम जो हो, मैं भी वहीं हूं। मैं एक ही क्षण बाद मुँह का भाव बनाता हूँ, 'ओह, तुम नीचे ही हो, पता नहीं चला।' जानता हूँ, मेरे मुँह की ओर विदिशा देखेगी ही (उसे घर में खुकू (बच्ची) कहा जाता है, अहा, मेरी बहन खुकू मोनी को पार किया है—कितनों ने, धत्तेरे की, कविता ही कर डाली, मान गये, खचड़ में प्रतिभा है!), नाक से गंध लेने की कोशिश कर रही है, मेरी आँखों की ओर देखकर समझना चाहती है, दादा कितना चढ़ाकर आये हैं, जबकि घर के अन्दर नशेबाज बनने का पात्र मैं नहीं हूँ, कभी किया भी नहीं, तब भी मन-ही-मन मुझमें एक प्रकार का भय या घृणा उसको है, और वह सिर्फ शराब पीने की वजह से नहीं, घर के साथ मेरा सम्बन्ध ही

ऐसा है कि जैसे नौकरी करके मैंने उनको खरीद लिया है; मैं बड़ा हूँ, इसलिये मेरा रेस्पेक्ट करना ही होगा। हम अच्छी तरह ही जानते है, आम तौर से किसका क्या मकसद है! वह अधिकांश मे मकसद यही है, कोई किसी का कर्ज नहीं खाता, सब काइयाँ है, जो जिसका है, ठीक ले लेने की ताक में है, 'चलाते जाओ भाई,' 'नाश हो,' 'वह गया है', 'किसका काठ, कौन बाँस काटे,' यह सब कहने से साफ समझ मे आता है, तब भी स्थिति यह है कि मैं 'ज्येष्ठ-भ्राता' हूँ और वह 'कनिष्ठा भगिनी', इस तरह का ऊपर का खोल सब बना हुआ है। 'तुम किसका, कौन तुम्हारा', यह सब भगवत्-काव्य समझा जा चुका है बाबा, 'दुनियादारी-फक्कड़पन' सब समझ गया हूँ। फिर भी, कोई खुलकर नही दिखाता, जबकि मन-ही-मन सब जानते है। इस पर अगर मेरे जैसा 'बड़ा समझदार' या 'अतीव उत्तरदायित्वपूर्ण' कोई हो (घर मे नही, बाहर, नही तो कण्ट को छिपाकर रखा नही जा सकता है।) तो भाव-भंगिमाएँ बरकरार रखी जाती हैं। क्योकि 'मुँहफट' साबित होते हो तो घर भर के लोग तुम्हें खराब समझेंगे, तुमसे भय पावेंगे, और अधिक घृणा करेंगे, क्योंकि इनमें पर्दा खुल जाता है। अवश्य ही इसमें सुविधा यह होती है कि कोई विशेष रूप से छूने का साहस नहीं करता। अपनी हस्ती बनी रहती है और कई तरह की अनावश्यक सुविधाएँ ली जा सकती हैं। क्योकि, सच कहने मे क्या है, किसी के लिये मुझे वैसा 'दुःख-सुख' नही होता, जैसा कि बहुत बार देखा और सुना जाता है; मेरे लिये भी किसी को होता होगा, मैं विश्वास नहीं करता; सारे मैं सबको पहचानता हूँ। मोटे तौरपर बात यह है कि घर-बार को झंझट मुझको अच्छी नहीं लगती, जिसे परिवार कहते हैं, क्योकि यह सब क्या है, मुझे नहीं मालूम।

घर में प्रवेश करते ही सबसे पहले देखने की जो चीज है, वह है, पालतू कुत्ते की तरह की हँसी (कुत्ता भी हँसता है, इसमें कोई संदेह नही।) और दुम हिलाते-हिलाते प्रायः मेरी ही उम्र का एक आदमी उठ खड़ा हुआ। वह आदमी—अर्थात् बिडिया का वर्तमान प्रेमी, कौन-सा नम्बर, मैं ठीक-ठीक नहीं बता पा रहा हूँ, क्योंकि बिडिया के साथ अधिक रात तक गप्प करने का अधिकार मात्र इसको नहीं मिला है, और भी कई आदमियों को मिला है (यह मैं निश्चय ही घर का हिसाब बता रहा हूँ, जिसे कहा जाता है, माता-पिता की अनुमति के अनुसार—क्योंकि आज शाम को ही किसके साथ, कहाँ चक्कर काट आई है, कौन जानता है! हो सकता है, इस आदमी को भी बदले में रखा हो, जिसे अनुमति के अनुसार इतनी रात को मिलने का सुयोग मिला है, क्योकि यह निश्चय ही, समाज में जिसे कहा जाता है, पितृदेव के किसी निकटतम मित्र बड़े आदमी का लड़का है, नौकरी

भी अच्छी ही करता है, अतएव—) उसने कहा, 'अरे, भैया लौट आये ?'
यह 'भैया' उच्चारण रास्ते के लोगों को 'भैया' कहने जैसा नहीं है, बहुत कुछ विदिशा के साथ अपनी निकटता प्रमाणित करने के लिये, रेस्पेक्ट के लहजे में कहा गया है, अर्थात विदिशा का भैया, उसका भी भैया (उसके बाप का भैया !), अगर ब्याह हो तो वह यही तो कहेगा मुझको, सो वह अभी से ही आदत डाल लेना चाहता है। हो सकता है, कल रात को इसी समय किसी दूसरे कमरे में, किसी दूसरी विदिशा के पास गया था, या कौन जानता है, यार-दोस्तों के साथ किसी वेश्या के ही घर में जाकर बैठा हो, सबको पहचानता हूँ, लेकिन इससे मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। जो पायगा, झाड़कर ले जायगा, इससे मुझको क्या, विदिशा का शरीर तो मेरा नहीं है। और विदिशा के माँ-बाप ने ही जब मौका दिया है, जिनका दावा है कि वे हैं लड़की के नैतिक पहरेदार—तो भाई ही मौका क्यों नहीं देगा।
हँसकर (दिल की हँसी) कहा, 'हाँ!' जानता हूँ, न लौटना तो सुविधा ही होती। क्योंकि अभिभावक की ओर से शायद बिना कहे ही अनुमति दी गई है। आम तौर से जब मैं लौटता हूँ, तब तक नीचे बैठकर बातें की जा सकती है। और इस समय घर आने का अर्थ ही होता है—लौटना, निकलना नहीं, लेकिन इस तरह की फालतू बातें सब किया करते हैं, इसलिए कि कुछ बातें हो सकें, विशेषतया जहाँ, जो आदमी सबसे ज्यादा अनावश्यक है, जिससे बात करना तो दूर, दिन भर में एक बार भी जिसका चेहरा याद न आये, जिस आदमी को याद रखने की कोई बात भी न हो, (किसी कारण अगर संदेह हो जाय, कि घर लौट रहा हूँ, तब आज की तरह का स्वाङ्ग करना ही होगा) फिर भी बातें करने के सिवा कोई उपाय नहीं, क्योंकि ऐसा न करना बड़ा बुरा लगता है। मेरे घर लौटने का अवश्य ही एक बँधा हुआ समय है, यदि कोई विशेष बात न हो जाय तो। जसे आज अगर नीना के साथ किसी होटल में जाता या सारी रात उसके साथ रहने का मौका मिलता, तो निश्चय ही देर होती। और तब 'मातृदेवी' का निश्चय ही माथा ठनकता और सीढ़ी के ऊपर ही खड़ी होकर कहती, (क्या पता, नीचे आने पर लड़की को किस हालत में देखना पड़े ! यद्यपि खुलकर खेलने का साहस उन्हें नहीं होगा, फिर भी हाथ-देह पकड़ना या चुम्मा-चाटी से भी तो महाभारत अशुद्ध हो जायेगा।) 'तुम नीचे ही हो।'
जिसका अर्थ है, 'जानती हूँ, नीचे ही हो, मगर देर हो रही है, तुम्हारा भाई तो अब तक आया नहीं, अब चली आओ।'—दरअसल यही बात कहनी है। भद्र लोगों की भाषा तो कड़वे कैपसूल पर मीठी कोटिंग लगाकर ही होती है, क्योंकि

यही शालीनता है, जबकि मेरी धारणा है, छूकू कहाँ तक आगे बढ सकती है, यह उसकी माँ अच्छी तरह जानती है, क्योंकि औरतें तो औरतों को अच्छी तरह जानती ही हैं, चाहे वे माँ और बेटी हो या और कोई हों। ये एक-दो बातों के बीच ही एक-दूसरे को समझ-समझा लेती है। खोलकर कुछ न कहने पर भी इनका काम चल जाता है। और इतनी जान-पहचान होने के कारण ही आखिर तक विश्वास न करने से भी काम नहीं चलता। क्योंकि वे इनकी कदम-कदम पीछे हटने की रीति को जानती हैं। मगर कब एकबारगी सारे कदमों को फाँदकर आगे बढ़ जायेगी, यह भी ठीक नहीं। एक बार मन-ही-मन राजी हो जाने पर, फिर रक्षा नहीं, और पुरुष तो पहले से ही आगे बढ़े हुए है।

तब भी एक बार मैंने विदिशा के मुँह की ओर देखा, और उसने ठीक अनुमान किया—मैं क्या देख रहा हूँ। इसी वजह से उसने मुँह पर एक अति सरल भाव (वही निष्पाप पवित्रता का भाव!) लाकर, दूसरी ओर देखकर निश्चय ही मन-ही-मन मुझको 'शैतान' या 'पाजी' जैसा ही कुछ कहा होगा; कौन जाने, इससे भी कुछ खराब उसने कहा हो, या मेरे मुँह पर थूक ही दिया हो। तभी उस आदमी ने (नाम याद रहकर भी याद नहीं आ रहा है, जो हो!) फिर कहा, 'अभी-अभी आपकी ही बात हो रही थी, आपके आने में काफी देर हो गई न।'

सच! कसम से! ऊपर से पुकार रहे थे क्या? मैंने हाथ उठाकर घड़ी देखी, ग्यारह बजने में पाँच मिनट देर थी। प्रायः इसी समय तो लौटता हूँ, हो सकता है, बीस-पच्चीस मिनट देर हुई हो। कहा, 'अधिक देर तो नहीं हुई। बैठिये!'

कहते-कहते मैं सीढ़ीवाले दरवाजे की ओर बढ़ा। 'बैठिये' कहना भद्रता का परिचायक है और उसके साथ हँसमुख भाव। यद्यपि, यदि वह दौड़कर रास्ते पर जा रही गाड़ी से कुचल भी जाय, तो मेरा कुछ आता-जाता नहीं है। उसके अस्तित्व की प्रायः मुझे कोई अनुभूति नहीं है, फिर भी इस तरह की झूठ बात तो हमेशा ही बोलता हूँ। इसके अलावा, तुम अभी नहीं जाओगे, या एक और आदमी तुमको नहीं जाने देगा, यह भी मैं जानता हूँ। 'अहा! क्या गहरा प्रेम है! बाप रे, 'प्राण' 'श्मसान्' हो गया।'

मेरे 'बैठिये,' कहने के साथ ही जैसे वह खदेड़ा जाने लगा हो, बोला, 'नहीं, अब नहीं बैठूँगा। बहुत रात हो गई।'

'तब जहन्नुम में जाओ साले।' मन-ही-मन कहने के बावजूद, एक बार गर्दन घुमाकर देखने का भाव बनाते हुए मैं सीढ़ी से ऊपर जाने लगा। मेरे और विदिशा के अलावा इस घर में और जो तीन लड़के-लड़कियाँ हैं, वे अब तक निश्चय ही सो गये होंगे, क्योंकि इस समय तक वे सो ही जाते है। सभी भविष्य में 'मैं'

और 'विदिशा' हो जायेंगे, यद्यपि बचपन में तो बहुत कुछ मन में रहता है। जैसे, *गाँधी या रवीन्द्रनाथ*, विद्यासागर *या* विवेकानन्द, सभी उनकी तरह कुछ बन जायें, क्योंकि बचपन में हम सबको उन्हीं तरह कुछ बनने के लिए तालीम दी जाती थी, अब भी दी जाती है। अच्छा, यदि सभी वैसे बन जाते, पूरे देश के करोड़ों लड़के प्रतिभावान बन जाते और सब लड़कियाँ सरोजिनी नायडू या श्री श्री माँ शारदा, तो क्या अवस्था होती? शायद यही अवस्था होती, लड़कों को जीविका के लिये नहीं सोचना पड़ता, लड़कियों को वर के लिये नहीं सोचना पड़ता, जिसके लिये बचपन से ही इतने उपदेश दिये जाते है। उस वक्त तो सब अपने हाथ में आ जाता। *आहा, एक बार पूरे भारतवर्ष का चित्र सोचो, अभी जो बात-बात में कहा जाता* है—'रवीन्द्रनाथ का भारतवर्ष', 'विवेकानन्द का भारतवर्ष', 'गाँधी का भारतवर्ष'— अर्थात् बहुत कुछ आक्षेप के स्वर में ही कहा जाता है, नया भारतवर्ष जिनके हाथों निर्मित हो रहा है, उसी भारतवर्ष की यह दुदशा। (दुर्दशा कहाँ, ठीक तो चल रहा है बाबा। एफीशियेंट मंत्री-मंडल का भारतवर्ष, फिल्मी स्टारों का भारतवर्ष, डेमोक्रेटिक जनता का भारतवर्ष। ज्यादा इधर-उधर करोगे, तो ऐसा मूवमेंट करूँगा, पार्लियामेंट कँपा दूँगा, असेम्बली हिला दूँगा, हमें सब अधिकार है।) तब तो इस भारतवर्ष के बाहर-भीतर, रास्ता-घाट, होटल-रेस्त्राँ, पान-सिगरेट की दूकानों पर, हर जगह प्रतिभावान मनीषी और विदुषी किलबिल कर रहे होते। अच्छा, तब दलबदी और मार-पीट नहीं होती? जो रवीन्द्रनाथ है, उन्होंने कहा— रवीन्द्रनाथ का भारतवर्ष, जो गाँधी हैं, उन्होने कहा—गाँधी का भारतवर्ष! *हुम्! इतनी देर से पेट में जो द्रव्य है, उसने सिर उठाया क्या, पता नहीं, नहीं तो* यह सब दिमाग में आ क्यों रहा है! अच्छा तो है भारतवर्ष, ठीक से ही तो हूँ मैं भी। बाप रे, अभी शायद भारतवर्ष हमारा ही है। मोटी बात यह है कि मेरे भाई-बहन भी ठीक ही है, ड्रेनपाइप पैंट, कच्चे होंठों में सिगरेट, कच्ची देह में चुस्त-छोटा फ्राक, ट्विस्ट और भविष्य का दरियादिल ख्वाब, बिल्कुल ठीक है। घूस की माल-कौडी लेकर आओ, स्त्री दत्त के आँचल में चाबी का गुच्छा बँधा रहे जिससे पीछे का दरवाजा खोला जा सके, सच, कमाल हो जायेगा। इसके अलावा मैं भाई-बहनों को पहचानता ही कितना हूँ, उन्हें कितनी देर तक देख पाता हूँ या उनके साथ मेरा कितना परिचय है, वे ही मुझे कितना पहचानते है! उनके साथ मेरा सम्पर्क ही कितना है, क्योंकि आँख बद करने पर उनसे पहले तो ऑफिस के बॉस, घूस देनेवाली पार्टी, बार का बेयरा और लड़कियों का चेहरा मुझे याद आता है। *वे सपने में हैं और मैं अपने में। कोई किसी को नहीं पहचानता, क्योंकि वे भी* आँख बद करने पर दूसरा ही कुछ देखते है, मैं वहाँ कहीं भी नहीं हूँ, होता तो,

इसमें कोई संदेह नहीं कि हजार झंझटें होती।
सीढ़ी से चढ़ने पर पहला कमरा मेरा ही है, मेरे अकेले रहने का कमरा। पहला मेरे लिये ही क्यों है, इसका कोई कारण नही, सिवाय इसके कि घर के मालिक और मालकिन ने जितना हो सका है, मुझे बाहर रखना ही वाजिब समझा है, क्योंकि मैं कब लौटूँगा, नहीं लौटूँगा, प्रायः यह अनिश्चित ही रहता है। परिवार के नाना प्रसंगो को (वे क्या प्रसंग है, मैं नही जानता) वे मेरी निगाह में नहीं आने देना चाहते। मेरे लिये भी यही वाजिब है; गुड़ की भेली मे मक्खी जैसा (पारिवारिक जीवन !) अपने सब तरफ लपेट लेने से मुझे घृणा है। रसोईघर और भोजनालय को छोड़कर कुल चार कमरे हैं। संभवतः मेरा हिसाब गलत नहीं है, फिर भी मैं जोर देकर नहीं कह पा रहा हूँ। क्योंकि आज अठारह वर्ष हुए; जब से मैं इस घर मे आया, तब से मैं अपने-आप में ही इतना व्यस्त रहा हूँ कि एक-दो कमरे अगर मेरी निगाहों से छूट भी गये हो तो अचरज की बात नहीं। जो सबसे अच्छा कमरा है, जिसमें हवा और रोशनी ज्यादा आती है, जो सबसे बड़ा भी है, वह घर के मालिक के लिये है। मालिक के लिये है, इसलिये मालकिन के लिये भी है। बाकी कमरों में उनकी 'सन्तान-सन्तति' रहती है, जिनके लिये वे अधिक रुपया पैदा करने, ख्याति प्राप्त करने और जबर्दस्त वर पकड़ लाने के लिये ईश्वर से प्रार्थना कर रहे है।
मैं घर में घुसते ही दरवाजा बंद कर आईने के सामने खड़ा हो गया। हुम्, आँखें सच ही लाल हो गई हैं और छोटी नजर आ रही हैं; और चेहरा, नहीं, उतना खराब नहीं है, बहुत कुछ, पता नहीं क्या नाम है उस स्टार का, शायद हॉलीवुड का ही है, नाम याद नहीं आ रहा है, उसी जैसा लग रहा है। आँख दाबकर एक बार अपने को ही इशारा किया। कोट खोलकर हैंगर में डाल दिया। उसके बाद (नीचे दरवाजा बंद करने की आवाज हुई, ओह विरह दे गया···) शर्ट खींचकर निकालते ही नीचे का फटा हिस्सा निकल आया और साथ-ही-साथ नीता की बात याद आ गई। मैंने फटे हिस्से को उठाकर देखा, हाँ, सच ही, नीता के नाखून का रंग लग गया है, और मुझे याद आ गया, पेट के पास नीता ने नाखून गड़ाकर पकड़ लिया था, याद आते ही दो बटन खोल नीचे झुककर देखा, सिर्फ पकड़ा ही नहीं था, दो नाखूनों का अस्पष्ट दाग हो गया है और कुछ दर्द भी हो रहा है। हाथ से छूकर महसूस किया, ऊपर का चमड़ा कुछ सूज भी गया है—नाखून गड़ा देने से जैसा होता है; और यह भी हो सकता है कि नाखून गड़ाने से टेरिलीन के सूत का एक-आध रेशा उसके नाखून में भी लगा रह गया हो, क्योंकि उसके नाखून छोटे नही थे, सुन्दर बनाने के लिये खूब बड़े-बड़े हो

रखती थी, (जितना सुन्दर, उतना ही धारवाला, कँटीला, जिससे माँस तक भी नोचा जा सके, पता नहीं, सौंदय का यही तत्व है या नहीं।) इसीलिए अगर वह पुलिस की निगाह में पड जाय, पडेगी ही, अगर यह हो तब तो पुलिस पकड ही लेगी कि जिसने मारा है उसकी देह पर टेरिलीन की कमीज या साडी थी। बल्कि टेरिलीन की साडी की जगह कमीज की बात ही पहले सोची जायेगी, और अगर कमीज मेरे पास ही रहती है तो असभव नहीं, वह मेरा घर भी सर्च करने के लिये आ धमके। तब तो रँगे हाथ पकडे जाना होगा। मैंने कमीज खोलकर गुडी-मुडी करके फेंक दी और बिस्तरे के नीचे डाल दी ताकि बाद में, अर्थात् आज ही रात को, इसे बिल्कुल नष्ट कर दूँ। सौभाग्य है, ये सब बातें याद आती जा रही है, इसीलिए बच सकता हूँ। दुर—खून करने में इतना झमेला है, फिर कैसे खूनी सोच-विचार कर ही खून करते हैं, वे इतनी उलझन को किस तरह काटते है? लेकिन मैंने तो यह सब सोचकर किया नहीं है। फिर भी मुझे याद आ रहा है, दौडकर भीड-भरी बस में चढ़ते समय अनिच्छा से ही किसी को लात मार देने जैसा ही है यह, फिर भी जैसे मैंने अपराध किया हो और उससे बचने के लिये अपने को शीघ्र ही सतर्क बना लेना होगा और अपराध को (पता नहीं यह अपराध भी है या नहीं, भीड हो तो लात लगेगी ही, मुझको भी लग सकती थी।) छिपाकर तथा खूब बारीकी से लम्बी क्षमा माँग कर मामला खत्म करना होगा। अवश्य ही इस मामले में उस तरह से क्षमा नहीं माँगनी होगी, बल्कि दूसरी तरह से सब छिपा देना होगा।

पैंट-शर्ट सब फेंककर, पूरे शरीर को घुमा-फिराकर देखने के लिये, एक बार अपने को आईने में देखा, और देखते ही मेरा शरीर चक्कर खा गया, हालाँकि चक्कर खाने का कोई कारण तो नहीं है क्योंकि नशा पूरी तरह नहीं हुआ है। अभी शराब पीकर उल्टी करने की मेरी हालत नहीं हुई थी। फिर भी न सिर्फ शरीर चक्कर खा गया, बल्कि मस्तिष्क भन्ना कर के नाच गया। प्राय तो ऐसा ही होता है, पता नहीं, प्रेशर से या किड से, लेकिन अभी ऐसा क्यों हो रहा है? ऐसी बात तो है नहीं कि बिल्कुल खाली पेट हूँ। नीता के यहाँ का रात्रि का भोजन, माँस का कुछ हिस्सा तो मेरे पेट में ही है। फिर भी, हाँ, मुँह में पानी आ रहा है। मैं गले में एक हाथ डालकर और पेट पर दूसरा हाथ रखकर स्थिर खडा हो गया। आश्चर्य, मुझे ठड भी नहीं लग रही। थोडा सभल जाने के लिये ही चुप-चाप स्थिर हो खडा रहा और घूट घोट-घोंटकर मुँह के पानी को सभालने लगा और धीरे-धीरे महसूस हुआ, ठीक हो रहा हूँ। पता नहीं, कीडो ने मेरे पेट में मौसमी पट्टा लिखा लिया है, या शायद ठीक समय पर ही सर उठाते हैं। तब भी

आईने के सामने मुझे अपना-आप बुरा नहीं लगा। आहिस्ता-आहिस्ता खिसका-कर, जैसे गिर जाऊँगा, वैसे ही, खूब सावधानी से पाँव में पाजामा डालकर पहन लिया। एक कमीज भी पहन ली। दरअसल, शरीर अधिक हिलना-डुलना पसंद नहीं कर रहा है। शायद चुप-चाप रहना चाहता है। लेकिन मुझको एक बार बाथरूम में जाना ही पड़ेगा, क्योंकि देह और माथे पर थोड़ा पानी डाले बिना काम नहीं चलेगा और गले में उँगली डालकर पेट खाली करना ही पड़ेगा। कौन जाने, बार के माल में कुछ मिलावट थी, या हो सकता है, कारपोरेशन के पानी में ही कुछ हो!

अब मैं संभल गया हूँ, इसलिए जल्दी-जल्दी नहीं, आहिस्ता-आहिस्ता आगे बढ़कर मैंने दरवाजा खोला और खोलते ही देखा, श्रीमती अनसूया देवी खड़ी हैं जिनका एकमात्र दावा है कि उन्होंने मुझको गर्भ में धारण किया था। भगवान जाने, यह किस की माँग थी? मैं तुलसी और गंगाजल लेकर हल्फ उठा सकता हूँ कि मैं कुछ भी नहीं जानता। देखने मात्र से ही समझा जा सकता है, अनसूया देवी क्लान्त हैं, बड़ी-बड़ी आँखों में व्यथा की छाया है, या कुछ उदासी है, और पता नहीं, कुछ बेचैनी भी है या नहीं। पहली दृष्टि में जो शान्त 'मातृ-मूर्ति' दिखाई पड़ रही है, जानता हूँ, उसके अन्दर बहुत-सा अभियोग-अनुयोग दबा पड़ा है। उसे व्यक्त करने की इच्छा होने पर भी, जानती हैं, समय या मौका नहीं है, या समय या मौका रहने पर भी यह आदमी उसे स्वीकारने की स्थिति में नहीं है।

अनसूया देवी ने आगे बढ़कर मेरे कुछ बोलने से पहले ही पूछ लिया, 'डा० बागची को फोन किया था? क्या कहा उन्होंने?'

सच कहने में क्या है, उनकी बात सुनकर मुझे अब याद आया कि आज डा० बागची को अनसूया देवी के स्वामी के बारे में एक खबर देनी थी और दवा बदली जायगी या नहीं, इसका भी पता लगाना था। लेकिन दिन भर में मुझे एक बार भी इसकी याद नहीं आई, और ऐसी बातें मैं अक्सर भूल जाता हूँ यह जानकर भी बार-बार क्यों जिम्मेदारी दी जाती है, मैं समझ नहीं पाता। जैसे, 'तुम भूल ही जाओ या जो करो, तुम्हें याद रहे या न रहे, तुमको हम इस बारे में हर समय कहते रहेंगे, क्योंकि यह तुम्हारा कर्तव्य है और कर्तव्य से तुम विचलित न होगे, यह भी हमें देखना चाहिये।' अतएव, जो मेरे मुँह में आया वही कह दिया, 'हाँ, खबर देने की तो बात थी, लेकिन आफिस में जाते ही देखा कि इमिजियेटली एक काम से बाहर जाने का आर्डर है; कुर्सी पर भी नहीं बैठने पाया, इतनी जल्दी का काम था। उसके बाद याद नहीं आया।'

हालाँकि इस समय मैंने झूठ कहा था, फिर भी यह सच है कि मुझे बीच-बीच में जरूरी कामो से जाना पडता है, क्योकि मेरी नौकरी ही ऐसी है कि पूरे पश्चिम बगाल में किसी भी जिले में मुझे जाना पड सकता है। अगर दूर जाना हो, तो कुछ समय का नोटिस मिलता है, लेकिन कलकत्ते में या २४ परगना अथवा हुगली तक, बीस-पचीस मील के अन्दर जाना हो तो कहने के साथ ही चल पडना होता है। इसीलिये झूठ कहने पर भी सत्य से उसका कुछ सम्बन्ध है, अत मेरी माँ के लिये इसका खडन करना सभव नही। खडन करना ही कहा जायगा, क्योकि इस तरह का झूठ मैं कितनी बार बोला हूँ, वह सब झूठ ही है, यह समझना मेरी माँ के लिये कठिन नही है, फिर भी, समझकर भी खडन करने का उपाय नही है, यह सचाई उभय पक्ष ही जानते हैं, इसीसे चलते हालत सगीन नही होती। अतएव माँ मन-ही-मन सोचती है, 'हरामजादे, तब भी तुमसे नही छोडूँगी, तुमसे ही वह सब काम कराऊँगी। क्योकि बडे लडके होने के नाते तुम देखभाल करने को विवश हो', और लडका सोचता है, 'तुम्हारे स्वामी शहशाह की तरह घर में बैठे-बठे दस तरह की बीमारियाँ पालेंगे और मुझको रोज-रोज डाक्टर के पास ज्येष्ठ पुत्र का कर्तव्य पूरा करने के लिये जाना होगा, मेरा ठेंगा!' माँ और बेटे को देखकर कुछ भी समझना कठिन है। दोनों के बीच 'जन्म-ग्रहण या जन्म-दान' का सूत्र पकडकर जो कर्तव्य और फर्ज पैदा होता है, वैसा कुछ भी नहीं है, क्योंकि उसके लिये कोई कारण नही। (मेरा यही विश्वास है।) और 'माता और पुत्र' ऐसे कितने ही निष्प्राण सचल चित्रों (माने, क्या बाइस्कोप की तस्वीर?) की तरह ही हम चल रहे है, इसलिये सच कहने में हर्ज ही क्या है। इसके बावजूद जो सम्बन्ध नही टूटता, उसका कारण दोनो पक्षों के बीच कुछ लेन-देन का व्यापार है। इसके अलावा और सब मिथ्या और शून्य है, यही मेरी धारणा है। हो सकता है, मेरी धारणा गलत हो, किन्तु बुनियादी बात यही है कि माँ के लिये कुछ सत्य-वत्य है या नही, पता नही, मेरे लिये सब मिथ्या है, मैं कुछ भी अनुभव नहीं करता।

इसके बाद मैं जानता ही हूँ की माँ बावूजी की बात कहेगी और मेरे आचरण की त्रुटियो की बात ऐसे अहिंसक वेदना-मथित स्वर में कहेगी, जो मुझे बिलकुल बनावटी लगेगी, क्योंकि उस तरह से अगर लडके का 'हृदय-परिवर्तन' हो सकता, (हृदय पहले से पत्थर हो गया है माँ, अब उसे नहीं गलाया जा सकता।) जिसका अर्थ है, अपनी आवश्यकता में लगाया जा सकता, तो उस 'उपकार' करने को 'हृदय-परिवर्तन' समझा जा सकता है क्या? और माँ ने कहा भी वही, 'वे आज कई दिनो से तो घर से ही नहीं निकल पा रहे हैं, और तुम सबेरे निकल

जाते हो तो रात को लौटते हो, जल्दी लौटकर भी तो वापस जा सकते हो। कुछ भी हो, हैं तो तुम्हारे बाप ही।'

इसमें कोई संदेह नहीं, माँ जब कह रही है, हजार होने पर भी वे बाप हैं। लेकिन मैं यह कभी नहीं समझ पाता कि वे जन्मदाता हैं, इसीलिये मुझसे यह सब माँग क्यों करते हैं ? अभी नीचे विदिशा के साथ उस आदमी का कुछ हो जाय, अच्छे शब्दों में 'दैहिक-मिलन' कहना होगा शायद, फिर तो दो-तीन मिनट में ही प्रेम की पराकाष्ठा देखी जा सकती है; और उसके परिणामस्वरूप अगर कोई दस महीने दस दिन बाद पृथ्वी पर आ जाता है, जिसके बारे में उस समय कोई चिन्ता, मूर्ति, तस्वीर, आचार-आचरण का कोई चिह्न तो दूर की बात है, सिर्फ सुख के उन्माद में डूबना है, तो उसके बाद भविष्य में 'जन्मदाता' बनकर मूँछें ऐंठने और दावा करने का क्या अर्थ है ? जो आया, आने में उसकी इच्छा-अनिच्छा का महत्त्व नहीं है, और जिस मुहूर्त में वह आया, उसी मुहूर्त में उसकी देह में चिकोटी काट-कर देखो, उसे ही दर्द होगा, वही रोयेगा, तुम्हारी देह में दर्द कहीं नहीं होगा। (ले हलुआ !) क्या यह अन्याय जैसा नहीं लग रहा है ? तुम्हारी जो खुशी, करो बाबा, लेकिन मैं क्यों आया, यह मुझे कोई नहीं बतायेगा; कुत्ते के बच्चे को भी कोई नहीं बताता, वह चाहता भी नहीं, क्योंकि उसे इच्छा-अनिच्छा की चिन्ता नहीं। वह कुछ पूछ नहीं सकता, जबकि मेरे साथ वह सब लागू होता है, अतएव ये सब चिन्ताएँ मेरे सिर पर आयेंगी ही, उस समय नितान्त असहाय रूप में अपने को इच्छा-अनिच्छा की भावना से युक्त एक पिल्ला समझने को जी करता है। एक, क्या कहूँ, दुःसह ही कहना होगा, एक दुःसह घृणा उबलती है, उबलती है, इसलिये कि मेरी इच्छाएँ मेरी मर्जी से पूरी होने को नहीं। कितने नियम-कानूनों में मुझको चलना पड़ता है, जबकि नियम-कानूनों का मेरी इच्छाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। चूँकि अपनी इच्छाओं को बिलकुल त्यागकर चलना संभव नहीं है, मैं मिथ्यावादी बन गया हूँ और नियम-कानून को अंगूठा दिखा रहा हूँ, जैसाकि सब दिखा रहे हैं, और इच्छाएँ भीरु पिल्ले की तरह भीतर ही कें-कें कर मर रही हैं। क्योंकि इच्छा का अर्थ ही स्वाधीनता है, और उस स्वाधीनता को मानकर उसी के अनुसार आचरण करने का मुझमें साहस नहीं है, क्योंकि स्वतंत्रता से सबकी तरह मुझे भी बेहद डर लगता है। मैं अपनी मांद में बिलकुल ठीक बैठा हूँ। सब अपनी मांद में बैठे हैं। मेरा बाप भी अपनी मांद में आनन्द से ही है। मृत्यु से भयभीत, आत्म-सुख के लिए चिर-जीवन संग्रामकर, जहाँ कि पाप-पुण्य का कोई सवाल ही नहीं उठ सकता, अर्थात् वही चालू 'नियम-कानून' कहिये या 'नियंत्रण' कहिये, सब को अंगूठा दिखाकर, हालाँकि अपनी देह में कहीं दाग भी नहीं लगे,

(शहंशाह आदमी !) चतुर आदमियों को लगता भी नहीं है, इस तरह मुझको उसने नौकरी की अधी-सन्धी अली-गली ही नहीं दिखायी है, बल्कि चलना-फिरना, आँख-कान थोड़ा बन्द कर के आना-जाना आदि के सम्बंध में सावधान करना भी वे नहीं भूले, ताकि नौकरी के बीच घूस, बदमाशी, फरेब के तरह-तरह के रास्तों पर मैं घूम फिरकर की तरह चल सकूँ और मूँछ की कोर पर भी रक्त की बूँद न लगने पाये। हजार होने पर भी बाप बेटे का उपकार करना नहीं भूल सकता। भद्रपुरुषों की माद में भान वही एक दोष है कि नियम-कानून की दोहाई देकर बाप होने के दावे को पेश करना वे नहीं भूल सकते। वे मुझसे कृतज्ञता की माँग करते है। वही एक कारण, जैसा कि उनका दावा है, कि वे मुझको इस पृथ्वी पर लाये हैं, जिस पृथ्वी पर मैं चल रहा हूँ। (अ-हो, क्या अपूर्व जगत है, मेरा सम्पूर्ण जीवन ही इस समय तक इसका प्रमाण है।) और यदि मैं अभी पूछूँ, 'हाँ, अच्छा किया है। लेकिन क्यों ?' तब बुरा मानकर बातचीत बंद कर देंगे या चिल्ला उठेंगे, 'यू डेविल, यू डेयर टू आस्क' या इससे भी कुछ खराब 'सूअर का बच्चा, मेरे सामने से हट जा', लेकिन मैं जा नहीं पाता, क्योंकि एक बार आ गया हूँ। और इन दावों के पीछे जो नैतिक युक्तियाँ हैं, वे यह कि आपने मुझको खिला-पिलाकर पाल-पोसा और आदमी बनाया है, अर्थात् बचपन में जिंदा रखा है। आपने अपनी इच्छा के अनुसार जो भी कपड़ा, भोजन, शिक्षा मुझे दी है, वह अपनी इच्छा और मकसद को पूरा करने के लिये ही। यह सब सिर्फ तब तक, जब तक कि मेरी इच्छाओं-अनिच्छाओं का जन्म नहीं हुआ था। हाँ, कहा जा सकता है कि मुझे मारकर फेंक क्यों नहीं दिया ? हो सकता है, मार भी देते, लेकिन जिंदा रख सके हैं, इसीलिये रखा है। उस समय अगर जानते, मैं आपकी इच्छा-अनिच्छा का दास नहीं बनूँगा, क्या ठीक, खून कर डालने का साहस आप में आ जाता। लेकिन आप तो सब की तरह अपनी इच्छा चरितार्थ करने में लगे थे, क्योंकि जानवर भी आप ही की तरह करते हैं। सच कहने में क्या दोष है, जो भी किया है, प्राकृतिक माँग के अनुसार, सब अपनी माँग पर ही किया है। जैसे कार्य-कारण का ज्ञान न होने पर भी रास्ते का कुत्ता अपने बच्चों को चाटता है, और मुँह से पकड़कर आश्रय में ले जाता है, क्योंकि यही प्रवृत्ति है, भोजन मिलने पर खाने जैसी ही। अगर आप ऐसा नहीं कर पाते, तो इस देश के हजारों बच्चों की तरह, कुत्ते के पिल्ले जैसा, मैं भी रास्ते पर भीख माँगता चरता, या असमय में टें बोल जाता, या यतीमखानों में जगह मिलती, या अभाव की मार से या आपकी बदमिजाजी के एक थप्पड़ से मुझे 'इह-लीला' समाप्त कर लेनी पड़ती। मोटी बात यह है कि इन दावों की कोई बुनियाद नहीं। जब जब कि मैं अपनी अनिच्छा से इस

पृथ्वी पर आ गया हूँ; तब मेरी इच्छा ही मुझको चलायेगी, यद्यपि अपनी इच्छा की स्वतंत्रता को व्यक्त करने में मुझे भय होता है; इसीलिये एक मांद में मैंने आश्रय लिया है और झूठ बोलकर ही सबके साथ अच्छी तरह निभा रहा हूँ। क्योंकि हम खूब जानते है, हम में से कोई भी सच्ची बात नही कहता, सत्य आचरण नहीं करता। इसीलिये प्रत्येक ने एक मांद ढूँढ़ ली है और पराधीनता के सुख में 'प्रसन्न' है।
तब भी सच कहने में क्या लगा है, मांद-सुख, जिसे पराधीनता कहते हैं, को बीच-बीच में 'स्वाधीनता' इस तरह खदेड़ने लगती है, जिससे मांद का सुख गया-गया, हाय-हाय करने लगता है; जैसे कि एक पाकिटमार को पकड़कर सब मार-मारकर खून निकाल देते हैं; और मैं उसका प्रतिवाद करता हूँ, क्योंकि मारने से पाकिटमारी खत्म नही होगी; इसके अलावा मारना गैर-कानूनी भी है, यह अक्षम क्रोध की, कहूँ, 'जिघांसा' मात्र है, क्योंकि तब तो मुझे भी मार-मारकर खत्म कर देंगे सब, क्योंकि मैंने स्वतन्त्र रूप से सच कह डाला है, कानून के हाथ मे छोड़ देने को कहा है। यदि मैं भी इस स्वतन्त्रता के बदले, सबके साथ मिलकर उस आदमी को पीटता, या चुप हो देखता, सुरक्षित मांद में, सुख की निर्विरोध मांद में बैठा मजा लेता, तो उसे ही मैं पराधीनता कहता। अर्थात् जो अन्याय, अविचार, भूल या मिथ्या है, जो हमारे जीवन के चारो ओर शिकंजा डाले बैठा है, जो नजर दौड़ाते ही हर तरफ दिखाई पड़ता है, उसको स्वीकार लेना ही मांद के सुख में रहना है। जिसे पराधीनता कहते है, स्वाधीनता मुझे उसी के विरुद्ध खड़ा कर देना चाहती है, जिसे मैं कहता हूँ, दौड़ा रही है। और यह दौड़ना ही वाजवक्त मैं खुद नहीं समझ पाता, जिस वजह से कहना पड़ता है, शायद मैं खुद को ही पहचान नहीं पाता। उदाहरण के लिए, मेरी पराधीनता और मांद के सुख के बीच प्रायः—क्या कहूँ—प्रायः 'मध्य-मणि' की तरह ही तो नीता थी, जिसे मांद के सुख की 'मध्यमणि' कह सकते है। स्वाधीनता ने ही तो हठात् उसे मार डाला। हम दोनो, ठाठ से झूठ बोलकर, झूठ को जीकर दिन काट ले रहे थे, जिसे शायद सुलह कहते हैं, या कौन जाने इसे ही एडजस्टमेंट कहते हैं, यही सब करते जिन्दगी काटते जा रहे थे; जो तुम हो, वही मैं भी हूँ, इसी तरह सोचकर, चलाते जा रहे थे; किन्तु समझौताहीन स्वाधीनता जिसे कहें, अचानक कुहनी में आ बैठी और नीता की गर्दन दबा बैठी, जिसका अर्थ है, मैं अपनी मांद से बाहर आ निकला। वह मेरी नीता थी; इसीके साथ इतनी छलना, इतना झूठ, दोनों पक्ष बर्दास्त नहीं कर पा रहे थे; इसीलिये पराधीनता का समझौता नहीं हो सका। जीवन में और कभी भी

इस तरह मॉंद से बाहर नहीं आया था। इसलिये अब शीघ्रता से वापस भीतर छिप जाने की ताक में हूँ, चुप, चुप (साला), भाग, भाग, जल्दी—स्वयं से कह रहा हूँ और खून के तमाम चिह्नों को निश्चिह्न करने की बातें सोचनी पड़ रही है। पता नहीं, एक बार निकल जाने के बाद वापस भीतर जाया जा सकता है या नहीं। किन्तु सच, स्वाधीनता एक तरह से भयानक और कुत्सित है, फिर भी नीना के मरने के बाद, क्या कहते हैं उसे, एक 'प्रशान्ति' या शायद अगाध 'शांति' महसूस कर रहा हूँ।

खैर जो हो, अभी तो मैं मॉंद में हूँ और मॉंद के भीतर से हो, अनसूया देवी से मॉंद की भाषा में ही कहा, 'आज रात अब मुलाकात नहीं करूँगा, कल ऑफिस जाने के पहले एक बार हो आऊँगा।'

जानता हूँ, नहीं जाऊँगा, क्योंकि मैं जाने की सोचूँगा, उसके पहले ही जीप का हान सुनाई देगा, मुझको दौड़कर निकल जाना पड़ेगा, और अभी, मैंने कुछ इस तरह मुँह बनाया है जैसे पी-खाकर आया हूँ, इसलिए ऐसी हालत में मुझको पितृदेव के पास जाने को मत कहो। देखा, अनसूया देवी के सामने वह कारगर हुआ, क्योंकि दरअसल जाना तो बड़ी बात है नहीं, जाने की इच्छा है, यही बड़ी बात है, अर्थात् 'लड़का अभी हाथ में है' इसी तरह की एक सान्त्वना, और उसमें अभी नहीं जाने की 'सुमति' भी है—यही बड़ी बात है। साले ने पहचान लिया है •।

माँ चली गई, मैं सीधे बाथरूम की ओर गया और बाथरूम में जाते ही एक भयानक दुर्गन्ध से मेरा चक्कर खाता शरीर और भी चकरा गया। इसका कारण भी मुझको मालूम है, यानी जगदीन्द्रनाथ (पितृदेव) बाथरूम में आये थे, इस दुर्गन्ध की विशिष्टता उन्हीं में है, उन्होंने पानी नहीं डाला है, डाल सकते थे या नहीं, पता नहीं, सकने पर भी वे नहीं डालते, क्योंकि वे मालिक है, 'क्यों, क्या तुम सब डाल नहीं सकते', इसी तरह का उनका रुख रहता है, कम-से-कम फारिग होने पर किसी को कह देने में उनका क्या लगता है, या नहीं आते तो ही क्या नुकसान हो जाता? यही सब सोचते-सोचते मैं जोर से चिल्ला उठा, 'बाथरूम में कौन आया था?'

इतने जोर से चिल्लाया था कि विदिशा, जो नीचे से ऊपर आ रही थी, दौड़कर आई, और नौकर, जो पता नहीं कहाँ था, वह और भी पहले ही दौड़कर आ गया और बोला, 'पिताजी आये थे।'

क्रोध और घृणा से, एक ही क्षण में कुछ अस्वस्थता महसूस कर, मैं पहले जैसा ही चिल्ला उठा, 'आये थे तो पानी डालने में क्या कष्ट था? बदबू के मारे घर छोड़कर भाग जाने की हालत पैदा हो गई है। आखिर वेडपॅन किसलिये है?'

इसी बीच नौकर ने बाल्टी से पानी ढालना शुरू कर दिया और विदिशा (अनिम

चुम्बन का आवेग, लगता है, मिट्टी में मिल गया। मन-ही-मन 'छोटा आदमी' 'फालतू' आदि कहकर मुझको गाली दे रही है।) ने मेरी ओर एक वार देखकर जैसे चुप होने को कहा, और मेरे व्यवहार से वह अवाक् हो गयी है, झुँझला गई है, ऐसा भाव दिखाकर धीरे-धीरे लौट गई। पूरा घर सुतहा-घर जैसा चुप है; जैसे साँस रुकी हुई है, कहीं सजगता की कोई ध्वनि नहीं है। नौकर के निकलते ही मैंने धड़ाम् से दरवाजा बंद कर लिया, बंद कर वहीं खड़ा रहा और मैंने पितृदेव के मुखमंडल को साफ देखा—बिस्तरे पर सोया गंभीर थरथराता चेहरा, (दरअसल इस समय वे मन-ही-मन खूनी से भी अधिक भयानक हो उठे हैं, इस समय यदि कोई मेरा कटा सिर ले जाये तो उसे पुरस्कार दे सकते हैं, 'अलाउद्दीन के सामने शिवाजी का कटा सिर!') जानता हूँ, मन-ही-मन जो कह रहे हैं; आँख से अगर क्रोध के मारे पानी निकल आये तो भी अचरज नहीं, और माँ की अवस्था भी प्रायः वैसी ही है, फिर भी पिताजी जितनी भयानक नहीं; वैसे वश चले तो मेरे सामने आकर धमकी-धमकी जरूर दे जाती। नौकर पर ही माँ का गुस्सा उतरेगा। यदि मालूम होता कि स्वामी बाथरूम में गये थे तो वह खुद ही इन्तजाम कर देतीं। लेकिन मेरा बारह बज गया था, कारण मैं इसलिये खड़ा रहा कि चिल्लाने के बाद ही, इलेक्ट्रिक-तार से करेंट लगने पर कुछ देर तक जिस तरह की झनझनाहट होती है, उसी तरह की एक अनुभूति तथा आवाज-सी मेरी देह के पूरे दाहिने भाग में हो रही थी। यद्यपि वह आवाज बाहर नहीं आ रही थी, फिर भी अन्दर अविराम झनझनाहट हो रही थी, जिससे मुझे दर्द न सही, मगर बेचैनी-सी लग रही थी, क्योंकि आवाज जैसे सिर तक पहुँच रही थी। यह कैसी बात है, समझ नहीं पाया। ऐसा कभी नहीं हुआ था। लगा जैसे मैं अचानक गिर पड़ूँगा, इसीलिये दरवाजा पकड़कर खड़ा रहा और मुँह में उसी तरह पानी आना शुरू हो गया, जिसका अर्थ था, कै जरूर होगी। हालाँकि उतनी शराब तो नहीं पी है, नशे में तो बिलकुल नहीं हूँ, बल्कि इससे अधिक तो अक्सर पीता ही रहता हूँ। फिर भी इससे कम पीकर भी किसी-किसी दिन अचानक तबियत खराब हो जाती है, अगर पेट अच्छा न हो, और आज नहीं है, यह नीता के बाथरूम में उसी समय समझ में आ गया था, जब कै करते समय वेग को दाँत-पर-दाँत रखकर रोकना पड़ा था।

प्रायः दो मिनट तक खड़े रहने के बाद, बेसिन के पास न जाकर धीरे-धीरे नाली के पास गया और सर नीचा करते ही खट्टे पानी के साथ मिला शराब-जैसा तरल पदार्थ बाहर निकल आया। उसका स्वाद बासी ताड़ी जैसा था। ताड़ी का स्वाद मैंने अनेक बार लिया है। एक बार तो बीरभूम के एक स्थान पर,

आफिस से एक इन्वेस्टिगेशन में (मेरी नौकरी भी खुफिया-विभाग जैसी है, बहुत-कुछ पुलिस की तरह ही, फिर भी पुलिस नहीं, लेकिन आदमी को सजा देने की व्यवस्था उसमें भी है, और वह आखिर में पुलिस के ही हाथ में दे दिया जाता है, या दूसरी तरह से भी निपटारा किया जा सकता है।) जाने पर तीन दिनों तक सिर्फ ताड़ी ही पीनी पड़ी थी। यह जरूर था कि जाँच के आखिर में रिश्वत के मामला रफा कर देने पर कई बोतल शराब भी हाथ लग गई थी। जो हो, कैसे साथ नीता का गोश्त भी निकल आया। मैं अपने को हल्का और स्वस्थ महसूस करने लगा। फिर भी कान के पास जलन हो रही है। पानी से हाथ-मुँह धोने के बाद कई क्षण तक चुप खड़ा रहा, क्योंकि नीता के बायरूम का वह वेग मुझको अब भी पूरी तरह छोड़कर नहीं गया है। बेचैनी कुछ बढ़ने लगी और आखिर मुझे पाजामा खोलना ही पड़ा। पैन पर बैठते-न-बैठते प्यास महसूस होने लगी, लेकिन इस समय पानी मिलना मुमकिन नहीं, क्योंकि ऐसा गोलमाल तो इधर कभी हुआ नहीं था। सच कहने में क्या हर्ज है, नीता से मुलाकात होने के कुछ पहले से ही शरीर में बेचैनी शुरू हो गई थी, जो नीता के घर से निकलने पर बढ़ गई थी। लगता है, नीता को यदि न मारता, और दोनों आवेश में (रमण का आवेश जिसे कह सकते है) देह-से-देह सटाकर होटल में कुछ खा-पी कर और नाच-बाच कर लौटते तो शायद यह सब नहीं होता। कई बार ऐसा भी हुआ है कि पेट में गोलमाल है, शरीर कुछ-कुछ खराब है, लगा है, घर लौटते ही बिस्तर पकड़ना होगा, लेकिन अचानक किसी लड़की के साथ खेल-खेल शुरू कर दिया या गाड़ी लेकर कहीं दूर-दराज दौड़ना पड़ा, या शराब पीना शुरू कर दिया, तो ये बीमारियाँ ऐसे भाग गयी है, जैसे ओझा के धक्के से भूत। अगर कोई डाक्टर यह सब सुने तो शराबी या बदमाश की गप कहकर उड़ा देगा। किन्तु (ओह, पेट ऐंठ रहा है) इस तरह की हालत मेरी कई बार हुई है, और आज भी मैं अच्छे मन-मिजाज मे ही बिस्तरे पर आ जाता, सो जाता, और सवेरे देखता कि बिल्कुल ठीक हूँ, अगर नीता न मरी होती।
नीता के साथ खाना खाने की बात थी, मुझे फिर याद आया, लेकिन वह आखिर खा नही सकी। अच्छा, नौकरानी का क्या नाम है, चित्रा—चित्रा क्या अब भी, नीता की नींद किसी भी तरह नहीं खुल रही है सोचकर, दरवाजे की चौखट पर चुपचाप बैठी है ? लगता है, ऐसा नहीं होगा, क्योंकि चित्रा भी तो प्रेम करके लौटी है, उसका शरीर अलसाया-सा है, वह भी अब पेट की भूख मिटाकर (दूसरी भूख तो मिट ही चुकी थी) सोना चाहती है, इसीलिये जल्दी-जल्दी बेल बजाने के बाद जब वह चाबी के छिद्र से देखती है—नीता एक ही करवट पड़ी हुई है, तब उसे

थोड़ा अचरज हुआ होगा, डर भी लगा होगा या नही, कौन जाने। लेकिन घटना उसे कुछ अद्‌भुत-सी लगी होगी। तभी वह बेल बजाने के साथ ही चिल्लाकर पुकार उठी है, और शायद उसे सुनकर बगल के अपार्टमेंट की वही इन्डोनेशियन रखैल (इसके अलावा और क्या कहा जाय! किसी एक चक्रवर्ती की बीवी बनकर यहाँ कलकत्ता में बैठी है और वह चक्रवर्ती किसी भी दिन नजर नहीं आता, वह बम्बई मे कही रहता है, और इन्डोनेशियन छोकड़ी, सन्ध्या से ही संसार भर के पुरुष-मित्रों का स्वागत करती रहती है, शायद सभी उसके स्वामी-विरह को मिटाने आते हैं; उसका रेट क्या है, नहीं जानता, क्योंकि नीता के पास का ही घर है न!) निकल आई है, पूछा है, 'क्या बात है,' उसके बाद उसने खुद बेल बजायी है, चाबी के छिद्र से देखा है, कौन आया था, नही आया था, पूछ रही है; (ओह, पेट शान्त हुआ) कुछ पता न चलने पर उसने सही घटना का ही अंदाज लगाया है, अर्थात् नीता जिंदा है या नही, इसका संदेह होते ही मकान-मालिक को खबर देने की राय दी है, जो ऊपर के तल्ले में रहता है। चित्रा ने शायद खबर दी है। दूसरे कमरों के लोग भी शायद दरवाजा खोलकर झाँक रहे हैं। मकान-मालिक के पास डुप्लिकेट चाबी हो भी तो, खोलना उचित होगा या नहीं, सोच-कर उसने लाल बाजार (पुलिस को) फोन कर दिया है।

नहीं, अब नहीं बैठा रहा जाता, शायद बिस्तर पर जाकर सो जाने से धीरे-धीरे पेट की यन्त्रणा शान्त हो जाए। दोनों पाँव जैसे बोझ बनकर अकड़ रहे हैं, इसलिए आँख, मुँह, पाँव पर एक चुल्लू पानी छिड़ककर बाहर निकल आया। देखा, भोजन वाले घर में रोशनी जल रही है, और पाजामा और शर्ट पहने उड़िया रसोइया (निश्चय ही बेयरा मुझको मन-ही-मन गाली दे रहा है, 'साले नशेबाज के आने का कोई समय नहीं है,' क्योंकि वह मुझको नशेबाज ही समझता है) मुझको खाना देने के लिये खड़ा है। खाने की इच्छा मेरी बिलकुल नहीं है, फिर भी उसको वह बात कहने के लिए जाने का मन नहीं कर रहा है। मैं अपने कमरे की ओर ही बढ़ा, तभी बिदिशा अपने कमरे से निकल आई, पूछा, 'खाओगे नहीं?'

'नहीं, नहीं खाऊँगा।'

मैं आगे बढ़ गया और उसी क्षण बिदिशा ने मन-ही-मन कहा, 'चलो, जान बची,' मैंने यह बिलकुल साफ सुना।

आम तौर से जब मैं खाने बैठता हूँ, तब माँ वहाँ उपस्थित रहती है; यदि माँ नही आ पातीं तो बच्चों को कह देती है कि वह खड़ी हो जाय; क्योंकि ऐसा न होना अच्छे गृहस्थ के घर में ठीक नहीं समझा जाता; घर के लड़के के भोजन करते वक्त, किसी का पास खड़ा होना जरूरी है। (अहा निमाई, मेरे निमाई

रे।) मेरे छोटे भाई के भोजन करते वक्त इस नियम का पालन न होने पर भी काम चल सकता है, मेरे या पितृदेव के समय नहीं चल सकता। आज बाथरूम की घटना के लिए माँ को गुस्सा आ गया है, इसीलिये बची को कहा हुआ है कि मैं खाने बैठूँ तो वह सामने खड़ी हो जाय, बाद में नहीं खड़ा होना होगा। लगता है, वह सुनकर बची मन-ही-मन खुश है। इसके अलावा, वह जानती है, मुझसे अधिक माँ-बाप को खुश रखना ही उसके हक में है। मैं उसके लिये कुछ नहीं हूँ। उसकी माद में माँ-बाप की सहायता की ही अधिक जरूरत है। पता नहीं, मेरी चिल्लाहट से दूसरे भाई-बहन भी जग गये हैं या नहीं। अगर जग गये होंगे तो निश्चय ही मुझको गाली दे रहे होंगे। 'साला-वाला' कहा है या नहीं, पता नहीं, लेकिन मनीषा, चौदह-वर्षीय बहन जो विदिशा के पास सोती है, ने निश्चय ही कहा है, 'भैया भी कमाल के आदमी हैं।' शायद मेरे मरजाने की बात भी सोच डाली है, ऐसी हालत में शायद सभी यही सोचते हैं—मेरा कटा सिर देखने की पितृदेव की इच्छा की तरह ही।

मेरे कमरे में प्रवेश करते-न-करते नौकर मग में पानी दे गया। मैंने दरवाजा बंदकर पंखा खोल दिया। कुछ गरमी लग रही है, हवा चलने पर अच्छा लगेगा, हालाँकि ठंडक आमदिन से कम नहीं है। मग उठाकर बहुत-सा पानी पी लिया। बाहर दो दरवाजे बंद हुए—एक विदिशा का और दूसरा माँ का। इस बार रसोइया-बेटा खायेगा और खाने के कमरे में ही वह और नौकर सोयेंगे। बीच-बीच में दोनों का स्नेह और झगड़ा देखकर लगता है—प्रेम करते हैं। लेकिन कमीज को ठिकाने लगाये बिना चैन नहीं आयेगी। अब कोहनी ऊपर उठाकर देखी, यह कोहनी ही सुनी है, शरीर के चमड़े से कुछ ज्यादा काली है, और चमड़ा सिकुड़ा हुआ है, इसी कोहनी ने नीना को मार डाला है। क्योंकि इसी हड्डी ने तो उसके गले को बींध दिया था। लेकिन कोहनी देखकर कुछ भी समझना मुश्किल है, जिसे एक्सप्रेशन कहते है, बिल्कुल नहीं है। फिर भी कोहनी को देखने की जरूरत मैंने पूरे जीवन में कभी भी महसूस नहीं की थी, किन्तु आज जैसे इसी कोहनी में कुछ विशेष देखना चाह रहा हूँ। कोशिश करके देखा कि कोहनी मेरे गले तक आती है या नहीं, नहीं आती है, अगर आती तो थोड़ा दबाकर देखता, क्या हालत होती है। लेकिन नहीं, अब खड़ा नहीं रहा जा रहा है, सो जाने की जरूरत है। किन्तु कमीज को ठिकाने लगाये बिना सोऊँ तो कैसे? कहीं आज रात या सुबह ही पुलिस आ जाय तो? पुलिस का आ जाना एकदम स्वाभाविक है, नीना के परिचितों को ही पहले खोजेगी, बुलायेगी, पूछेगी। हो सकता है, सर्च भी करना चाहे, और यदि कमीज पा

जाय, तब तो मैं गया। तब मैं निश्चय ही प्रमाणित नहीं कर पाऊँगा कि मैंने (सौगंध से सर !) खून करना नहीं चाहा था, किन्तु मेरी मांद में, मेरी सुख की पराधीनता मे, अति कुत्सित, गंदी स्वाधीनता नामक एक वस्तु है, जो हठात् मेरी कोहनी में पैठ गई थी, सुन लीजिये सर, (और सुनने की जरूरत नही, डेलिबरेट मर्डर, चलो श्रीघर ! जेल !) आपसे शायद मैं ठीक व्याख्या नहीं कर पाया, यानी, आसक्ति और अनासक्ति, नीता को लेकर, इन दोनो के बीच (हाँ, जानता हूँ, यह सब उल्लूपने की बातें है, किन्तु विश्वास करें सर, सच कह रहा हूँ) एक अद्भुत, क्या कहूँ, एक जानलेवा 'द्वन्द्व' हो रहा था; और भी स्पष्ट कहूँ तो उसे प्यार करता था, साथ ही घृणा भी करता था (इसे रंगबाजी कह रहे है आप, मैं भी समझता हूँ, लेकिन क्या करूँ, घटना ही ऐसी है) और जिसे मैं प्यार करता था, उसे ही घृणा और क्रोध से मैंने (मैंने नही, कोहनी ही तो दबा बैठी थी) मार डाला। नीता ही यदि मुझे मार डालती, मुझे लगता है, उसके मन की भी यही अवस्था थी, तब वह भी ऐसी ही बातें कहती और मैं इसे झूठ नही समझता। अवश्य ही यह बात मैं इसलिये कह रहा हूँ कि नीता को मैंने क्रोध से उबलते हुए देखा था, यह घृणा और क्रोध ही सबसे अधिक संदेहजनक घटना है नारी और पुरुष के बीच, (मेरी तो यही धारणा है।) क्योंकि इससे निखालिस माँद के सुख का प्रेम ठीक प्रमाणित नहीं होता, इसी कारण तो सब मजे में हैं। जानता हूँ, यह सब बहाना समझा जायगा, क्योंकि हत्या आखिर हत्या है, नीता करती तो भी वही होती। अतएव प्रमाणित अब भी हत्या ही होगी, इसलिये कमीज को जल्दी रफा-दफा करो, क्योंकि स्वाधीनता (कितनी भयंकर चीज है !) के साहस ने जिस तरह एक बार में ही एक आदमी को खत्म कर दिया है, उसी तरह एक आदमी ने 'द्वन्द्व' के बीच जिन्दा रहने की आखिरी कोशिश भी की है, जिसका सबूत बनकर यह कमीज रह गई है। यह बात याद आते ही मैंने और कुछ न सोच कोट की जेब से माचिस निकाली और बिस्तरे के नीचे से कमीज खींचकर फर्श पर उसमें माचिस की तीली जलाकर लगा दी। सिगरेट की एक छोटी चिनगारी से ही तो टेरिलीन की कमीज जल उठती है; इस समय माचिस की एक पूरी तीली की आग पाकर इस तरह आनन्द से जल उठी है जैसे प्योर नशेबाज के सूखे गले में एक बड़े पेग का माल पड़ जाये, और देखते-ही-देखते उसकी आँखें जल उठें, चेहरा चमकने लगे, भीतर की बात फूटकर निकल आये। मैंने नाक फैलाकर सूँघने की कोशिश की, बंद दरवाजे की खिड़की की ओर देखा, लेकिन मुझे लगा नहीं कि वैसा कुछ हो रहा है, कोई गंध भी नहीं मिल रही, कोई भी दुर्गन्ध या सुगंध नहीं जिसे जलने की गंध समझकर कोई

आ जाय। सिर्फ कमरे में रोशनी हुई और थोड़ी देर में ही कमीज राख हो गई। आग की रोशनी खत्म होने के साथ ही कमरा पहले की तुलना में ज्यादा अंधकारमय लगा, और धुआँ नजर आया। इस बार जो गंध नाक के अंदर घुसी, वह अच्छी नहीं थी। मैंने जल्दी में खिड़की खोल दी, झुककर काले रंग की राख को देखा, काला रंग, लेकिन सूती कपड़ा जलने पर राख का रंग राख जैसा ही होता है, यह काला है और फर्श पर दाग बन गया है। पलँग के नीचे से एक रद्दी कागज निकालकर उसमें राख को समेट लिया, लेकिन फर्श पर जैसे काला-काला रस और लसदार दाग लगा रह गया। उसे कागज से घिसकर मिटा देने की कोशिश मैंने उसी वक्त की, लेकिन अच्छी तरह मिटा नहीं सका। मग से थोड़ा पानी डालकर धो दिया, इससे दाग बहुत-कुछ खत्म हो गया, उस पर पाँव से रगड़ दिया। लेकिन धुआँ घर में ही जमा रहना चाहता है, बाहर निकलना ही नहीं चाहता। इसीलिये पंखे का रेगुलेटर घुमाकर उसे और तेज कर दिया और फिर जली कमीज, (कमीज बनवाने में सत्तावन रुपये लगे थे, हालाँकि दो महीने पहनी, जबकि टेरिलीन की एक कमीज बहुत दिनों तक टिकी रहती है, बरस भर तो जरूर ही। एक और बनवानी होगी, कमीज मुझे बहुत प्रिय थी।) सब राख, रस, चिह्न, जो था, सब कागज में लेकर दरवाजे के सामने जा खड़ा हुआ, एक बार कमरे के अन्दर देखा, धुआँ बहुत हद तक साफ हो गया है, फर्श भी बेदाग दिखाई पड़ रहा है, बिल्कुल हल्की-सी एक छाप है, कल सवेरे कमरा साफ करते समय निश्चय ही वह भी नहीं रहेगी। फिर भी दरवाजा खोलने से पहले मैंने कान लगाकर आहट लेनी चाही। समझ में आ गया, कोई नहीं जगा है, किसी की भी नाक में कोई गंध नहीं पहुँची है। सम्भवतः रसोइये और नौकर दोनों ने घर का और रसोई-घर का दरवाजा बंद कर लिया है। लेकिन हो सकता है, शैया-ग्रहण शायद अब भी नहीं हुआ है। वे अब भी मेरे विषय में ही बात कर रहे हैं, जिनके अधिकांश रिमार्क, 'नशेबाज आदमी', 'शैतान', 'देवता के घर में (मेरे बाप देवता है, देवाधिदेव।) असुर' या कौन जाने, और भी खराब बातें वे कह रहे हों और दोपहर को छुट्टी के समय आस-पास के घरों में रसोइयों और नौकरों के माफत इस घर की घटनाएँ चालान हो जायेंगी। सब की देह में गंध है, लेकिन एक-दूसरे की देह की गंध न मिलने से चैन नहीं मिलता, इससे एक विशेष आनन्द जो प्राप्त होता है।

दरवाजा धीरे-धीरे खोला। बरामदे में रोशनी जल रही है, यह सारी रात जलती है, और जो सोचा था, वही, यानी रसोई-घर का दरवाजा बंद हो गया है। सब

कमरों के दरवाजे बंद हो गये हैं। मैं बाथरूम की ओर बढ़ गया। अन्दर जाकर दरवाजा बंद कर लिया। राख और कागज के टुकड़े-टुकड़े कर पैखाने के पैन में डालने लगा और साथ-साथ मग से पानी डालने लगा। सब डाल देने के बाद बहुत-सा पानी उँड़ेल दिया, जिससे निश्चिन्त हुआ जा सके, और निश्चिन्त हो गया तो साबुन से हाथ धो लिया। लौटते हुए फिर ठमक गया। शायद कमीज को नेस्तनाबूद करने में इतना उलझा था कि पेट के दर्द की बात बिलकुल याद नहीं रही। अब लौटते हुए याद आया, वह कष्ट, किसी भी तरह दूर होना नहीं चाहता। उसके बाद कमरे में जाकर फैन ऑफ कर एक सिगरेट जलाया, आगे बढ़कर आईने के सामने खड़ा हुआ। अच्छा, क्या मैं सचमुच किसी खूनी जैसा लग रहा हूँ? मैंने खूनियों के अनेक रूपों के बारे में सोचना चाहा। और आश्चर्य, जो दो-एक चेहरे याद आये उनमें सब का चेहरा मुझसे अच्छा ही था। सब प्रायः फिल्मी-हीरो जैसे नजर आते थे। मैं भी वैसा ही नजर आता हूँ, इसीलिये शायद जोर देकर नहीं कहा जा सकता कि खूनी का कोई विशेष चेहरा है।

किन्तु यह सब बेकार की बातें हैं; दरअसल मुझे बेचैनी हो रही है, और यह बेचैनी कैसी है, मैं समझ नहीं पाता। शारीरिक बेचैनी तो खैर नहीं ही है, मगर लगता है, कुछ करना बाकी है, जिसे मैं कर नहीं पा रहा हूँ; बल्कि क्या करना है, यह भी याद नहीं आ रहा है। मेरा सब जैसे गडमड हो गया है, (आईने की छाया में स्वयं को ही कमर हिलाने की भंगिमा में देखा, जिसे क्या कहते हैं, शायद खूब ही 'अश्लील' कहते हैं।) मुझे क्या करना है, यह भी याद नहीं कर पा रहा हूँ, जिसका अर्थ है, मुझे कुछ भी नहीं करना है। लेकिन मेरे अन्दर कुछ हो रहा है, जिसे मैं समझ नहीं पाता; ऐसा कुछ जिसे मैं पकड़ नहीं पाता। मेरा दिमाग इस समय बहुत-कुछ चिन्तनशून्य हो गया है। कुछ भी सोच नहीं पा रहा हूँ। शायद कुछ सोचने से अच्छा होता। यह कैसी बात है! क्या आदमी के साथ ऐसा भी होता है कि वह कुछ सोचना चाहता है, लेकिन क्या सोचना चाहता है, यह तक वह नहीं जानता। अतएव इससे तो सो जाना अच्छा है। यही सोच, सिगरेट एश्ट्रे में डाल, रोशनी बुझाकर सो गया और मैंने महसूस किया कि चिन्तनहीन मस्तिष्क पर एक भार पड़ रहा है, आँखें बंद होती जा रही हैं। ओह, अचानक याद आया, माँ मुझसे प्रायः विवाह की बात कहा करती है, अर्थात् मुझसे विवाह कर लेने को कहती रहती है, लेकिन अचानक इसी वक्त यह बात याद क्यों आई, मैं समझ नहीं पाया। बिस्तरे पर अकेले सोना पड़ता है, इसीलिये यह बात याद आई हो, ऐसा तो

नहीं लगता। क्योंकि नींद के समय कोई मेरी बगल में सोया रहे, ऐसा मैंने कभी नहीं चाहा, उल्टे कोई हो तो नींद ही नहीं आती। ऐसी घटना घटी ही न हो, ऐसी बात नहीं, पूरी रात ही किसी के अगल-बगल सोया हूँ, (इस उम्र में मान लेना होगा कि निश्चय ही किसी पुरुष के साथ नहीं, किसी नारी के साथ ही, वह जो कोई भी हो, नीता हो सही।) लेकिन कभी भी नींद नहीं आई है। तब भी इस समय यह बात क्यों याद आई, पता नहीं, निश्चय ही ऐसा तो नहीं ही है कि मैंने अचानक एक अच्छे बालक की तरह सोचना शुरू कर दिया है। सबों की तरह एक विवाह कर (जिसे मैं वेश्यावृत्ति से भी खराब समझता हूँ क्योंकि वेश्यावृत्ति का तब यथा बिल्कुल खुल्लमखुल्ला है। सीधे-सीधे रुपये देन और मक्खन लगाने से ही पौ बारह, जब कि विवाह का अर्थ है, आजीवन रुपया खर्च करना तो पड़ता ही है, साथ-ही-साथ मक्खन भी लगाना पड़ता है। उनके साथ जितने दिन रहना होगा, उतने दिनों तक कदम-कदम पर धोखा, झूठ, तुम सच हो या मैं, जबकि दोनों ही जानते हैं कि वे एक अनिवार्य मजबूरी में फँस गये हैं। मन की बात किसी भी दिन खोलकर नहीं कही जायगी। जब कि वैसे ही दैनन्दिन जिन्दगी में अनेक धोखा गढ़ना पड़ता है, तो फिर मन्तर पढ़कर या कानून की गुत्थी बाँधकर फिर से वही सब करना नहीं चाहता) चोरी के अपराध में पकड़ा जाऊँ। विवाह शब्द ही बहुत पुराना है, अवास्तविक और अर्थहीन-सा नहीं लगता क्या? लोग विवाह क्यों करते हैं? क्योंकि इतनी झूठी बातें उनके पक्ष में कही जाती हैं कि उन्हें बार-बार सुनकर लगने लगता है कि वे सब बातें कीमती हैं, 'पाडित्यपूर्ण' और 'गंभीर' (नितान्त मूर्खतापूर्ण!), 'पुत्रार्थे क्रियते भार्या' (हाँ, उत्पादन का मन्त्र!) जिसे सोचकर ही लोग सिहर उठते हैं। इस श्लोक (श्लोगन) को याद करके ही घृणा आती है, ऐसी मेरी धारणा है। इसलिये इस वीभत्स उत्पादन को कैसे बंद किया जाय, पंडित लोग चक्कर रहे हैं। और दरअसल वास्तविक भय भी तो यही है कि यहाँ का श्लोक ही 'जन्म-नियन्त्रण' है, जिसका अर्थ है, सब चलेगा, सब होगा, लेकिन उत्पादन नहीं होगा। मैं समझ नहीं पाता कि इसके लिये विवाह करने की क्या जरूरत है, क्योंकि नियन्त्रण के तरीकों को सब ही जानते हैं, और इस युग के सब लड़के-लड़कियाँ उनसे काम भी ले रहे हैं। तब फिर शादी-वादी का खेल क्यों, समझ नहीं पाता। उत्पादन जब नहीं चाहिये, तब 'यौन-जीवन' के लिये विवाह का बन्धन क्यों, जब कि विवाह न करके ही सब लोग सब कुछ किये जा रहे हैं। इसके बाद 'एकनिष्ठ यौन-जीवन' की बात भी माननी होगी, जो मुझे सोने की पत्थर-बाल्टी जैसी ही लगती है। 'एकनिष्ठ यौन-जीवन'—अहा, सुनने में कितना बढ़िया लगता है, प्राय प्रेम जैसा ही महत्। तुम

मेरे, मैं तुम्हारा, और कोई नहीं। लेकिन मुझे अचानक विवाह की बात क्यों याद आ गई, मैं समझ नहीं पाया। जो हो, लगता है, नींद जकड़ती आ रही है, शायद इसीलिये यह सब याद आ रहा है। अच्छा, क्या घटना इस तरह नहीं है कि नीता मर गई है, और माँ ने जितनी बार विवाह की बात कही है, उतनी बार मुझे नीता की ही याद आई है, अतः विवाह की बात अचानक यह सोचकर याद आ गई कि विवाह की मेरी भावना ही अब चुक गई है। लेकिन मेरी यह भावना तो बहुत दिन पहले ही चुक गई थी। फिर भी माँ एक तीसरे दर्जे के ऑफिसर के बाजार-भाव को जाँचकर ही मेरे विवाह की बात कहती रही है और नीता की बात मुझे याद आ जाती रही है, विशेषतः चूँकि नीता की ही बात याद आ जाती रही है, इसीलिये मेरी वह भावना चुक गई थी। तब आज (नींद आ रही है।) इसी क्षण चुक जाने की बात ही फिर क्यों याद आ गई ? नीता न मरी होती, तब भी (नींद घेर रही है) वह सब······दु—र···साला पहचान गया है,···नीता अभी पुलिस···डाक्टर···...।

गया, गया, गिर गया, किसी भी तरह रेलवे-ब्रिज के काठ का स्लीपर पकड़कर लटके रहना कठिन हो रहा है; दाँत भींचकर पूरे शरीर को सख्तकर, किसी भी तरह शून्य में लटका नहीं रहा जा रहा है। बहुत ऊँचा पुल है और बहुत नीचे नदी; किन्तु गिरने पर, ओ बाबा, गिरते ही साँस बन्द हो मौत हो जायगी, पानी तक पहुँचने का भी समय नहीं मिलेगा। इंजन का तेल लग-लगकर स्लीपर इतना फिसलनभरा हो गया है कि हाथ की पकड़ छूटती जा रही है, उँगलियों की शक्ति कम होती जा रही है, और गाड़ी है कि क्रमशः आगे बढ़ती आ रही है। बगल में खड़े होने की जगह नहीं थी, इसलिए सिंगल लाइन की पटरी पर स्लीपर पकड़ लटक गया था कि गाड़ी के चले जाने पर फिर ऊपर आ जाऊँगा। लेकिन अब ठहर नहीं पा रहा हूँ; मेरी देह काँपने लगी है; अब साँस बंद होती जा रही है और ब्रिज पर पहुँची गाड़ी की गड़गड़ाहट मेरे हाथों को और भी जोर से खिसका दे रही है। मैंने एक बार ऊपर देखने की कोशिश की—ओह, कितना भयावह है ऊपर नीला आकाश, आँखें चौंधिया गयीं, किन्तु गिर रहा हूँ,—नहीं, नहीं, नहीं···, उ-ई-ई, हाथ छूट गया; गिरता जा रहा हूँ, गिर रहा हूँ···जल, निश्चय ही जल···।

अचानक धम् से एक जगह शरीर गिर गया। आँख मलकर देखा, अंधकार है, किन्तु हाथ-पाँव हिलाते भय लग रहा है। शांत पड़ा हूँ, छाती धक-धक कर रही है; गला सूखकर काठ हो गया है। कई क्षण तक उसी तरह रहने के बाद

अचकचाकर एक निःश्वास मेरे मुँह से निकल गया, 'ओ स्वाला, स्वप्न है।' उसके बाद देखा, बिस्तरे की चादर को मैंने दोनों हाथों से मुट्ठी में पकड़ रखा है, और गर्दन पर पसीना आ गया है। उल्लू!—स्वप्न को कहा या अपने को, ठीक से समझ नहीं पाया, लेकिन मुझे चैन की साँस मिली, और करवट बदलकर सो गया। पुल से गिरने का स्वप्न एक बार फिर मेरी आँखों के सामने नाच गया, 'ओरे फादर,' मन-ही-मन कहा, 'हैपीस होना जा रहा था।' उसके बाद सिकुड़-सिमटकर सोते-सोते सोचा, शराब की खुमारी ही इससे अच्छी है। शैतान के पास काई और स्वप्न नहीं था क्या? वैसे मैं नहीं जानता कि शैतान ही सपना लाता है। जो हो, अब तक नींद का घर शायद नहीं, आँखें बंद हो रही है, फिर नींद आ रही है।

अरे, आश्चर्य, यह सब स्थान पानी में कब डूब गया, या कैसे डूब गया, मैं सोच नहीं पा रहा हूँ, हालाँकि मैं इन सब जगहों को पहचानता हूँ। सब स्थान पानी के अंदर डूब गये है और मैं मछली की तरह पानी के अन्दर-ही-अन्दर चल रहा हूँ। मैं भयभीत होकर चल रहा हूँ, ऐसी बात नहीं, बल्कि घिन से देह सिहर रही है, सड़े-पीले पानी के नीचे से तैराक की तरह कभी एक करवट हो, कभी मुँह के बल, देह बचाकर चल रहा हूँ, क्योंकि कलकत्ता के इन रास्तों पर पीले रंग के सूखे पत्ते और पेड़ की डालियाँ पड़ी हुई हैं तथा यहाँ-वहाँ केंचुए और बिष-हीन साँप लिपटे पड़े है। बीच-बीच में सफेद कीड़े भी किलबिल कर रहे हैं। गोया यह सब इस रास्ते के किनारे की नालियों में छोटे-छोटे बच्चों के पेट से ही निकलकर आये है। नालियों को मैं साफ देख रहा हूँ। और उस बड़े वृक्ष के तने को देख रहा हूँ, जिससे सटी हुई मन्दिर की दीवार है, जिसका पलस्तर जगह-जगह से उखड़ गया है और लाल ईंटें नजर आ रही है। पीला, गंदा पानी, और उसकी सड़ी-सड़ी गंध, मेरी डुबकी से पानी हिल रहा है, पीले-सड़े पत्ते नीचे तल से उठे आ रहे है, मेरी देह से चिपक जाना चाह रहे हैं। लेकिन मैं उनसे बचने के लिये जल्दी-जल्दी पार होता जा रहा हूँ। इस तरह पार होते हुए कहीं केंचुए-कीड़े-साँप अचानक पकड़ न लें, इस भय से खूब ही होशियारी से चलना पड़ रहा है। वैसे वे अपने में ही मग्न है। मेरी देह के निकट आने की कोई कोशिश वे नहीं कर रहे हैं। पानी में बहाव नहीं है, इसीलिये वे बह नहीं रहे हैं, सब जैसे स्थिर है, सब कुछ साफ दिखाई पड़ रहा है। सब कुछ चुप-चुप है—निःशब्द। झींगुर भी नहीं बोल रहे हैं। कुल मिलाकर यह कैसी स्थिति है, मैं समझ नहीं पाता। बस इतना जानता हूँ कि मैं छिपकर कहीं

जा रहा हूँ। शायद मेरे छिपकर जाने के लिये ही यह रास्ता-घाट पानी में डूब गया है और पानी में डूबी गलियों के घरों का कोई दरवाजा भी मुझे नजर नहीं आ रहा है।···चला जा रहा हूँ, चला जा रहा हूँ...उसके बाद सब कुछ अंधकार में खो गया, मुझे कुछ भी याद नहीं रहा, और मैं जैसे कहीं डूब गया।

उसके बाद, मैं अचानक रासबिहारी एवेन्यू पर ट्राम लाइन के किनारे खड़ा हो गया। बहुत-से लोग एक आदमी को हो-हो कर खदेड़ रहे हैं। मैं उस आदमी को देख रहा हूँ, जिसे सब लोग खदेड़ रहे हैं। वह आदमी लम्बा है, युवक है, दबैल चेहरा है, मैला पाजामा और कमीज पहने है; उसके बाल रूखे-सूखे हैं। मुझे लगा, 'आजानुलम्बित' उस आदमी को अगर अर्जुन का पार्ट दिया जाय, तो खूब फबेगा; वैसे, मुझे ऐसा क्यों लगा, मैं नहीं जानता; क्योंकि उस तरह से भीम-अर्जुन बनाकर थियेटर करना या देखना मेरा चलन नहीं है। या ऐसा भी हो सकता है, किसी कलाकार का बनाया एक चित्र मैंने देखा था जिसमें खिले फूल के घास-वन मे अर्जुन मुँह के बल या तिरछे लेटा था और उसके सामने ही, क्या कहते हैं उसे, हाँ, 'स्खलित वसना' चित्रांगदा आलस्य की खुमारी में पड़ी थी। खदेड़े जानेवाले आदमी को देखकर उसी चित्र का अर्जुन मेरे खयाल में कौंध गया। वह आदमी लारी-ड्राइवर है, उसने किसी आदमी को कुचल दिया है। अब क्रोधित भीड़ से एक-आध हाथ खाने के बाद अपने को बचाने के लिये भाग रहा है। मैं सुबह की धूप में बिलकुल साफ देख रहा हूँ कि उस आदमी के कान के निकट से खून बह रहा है और मैं भी खूब जोर से उस आदमी के साथ दौड़ रहा हूँ, जब कि दरअस्ल में एक जगह ही स्थिर हो खड़ा हूँ। मेरी छाती धक्-धक् करने लगी है और मैं उस आदमी के साथ दौड़ रहा हूँ, और एक घर में घुस गया हूँ। अब मैं उस आदमी को नहीं देख पा रहा हूँ। इसके बावजूद, बिलकुल साफ देख रहा हूँ कि वह एक घर की सीढ़ी पर दौड़ा जा रहा है। दो तल्ला, तीन तल्ला पार होकर आगे कोई रास्ता न पा वह हठात् बाथरूम में घुस गया है और उसने किवाड़ अन्दर से बंद कर लिया है। लेकिन लो, मरा, अन्दर से बंद करने की कोई सिटकिनी नहीं है। उधर रास्ते की क्रोधित भीड़ और मकान के लोग चिल्लाते हुए चढ़े आ रहे है। 'वह साला, उस तरफ गया है···सूअर का बच्चा पकड़ा गया···मार्डरी···हीः हीः हीः'—जैसे क्रोध, घृणा और आनन्द से लोग उबल रहे हैं, दरवाजे पर टूट रहे हैं और वह आदमी पूरी शक्ति से किवाड़ को बंद कर पकड़े हुए है। मैं भी उस आदमी के साथ किवाड़ को पकड़कर दाबने

लगा हूँ, जोर से, और जोर से, और   बस, डोर से कटे पतग की तरह मैं कही टूट गया हूँ, अधकार में खो गया हूँ, मैं कुछ भी नहीं देख पाता हूँ, मैंने खुद-ही-खुद को खो दिया है   ।

उसके बाद, किसी अपरिचिता लडकी की देह पर हाथ रखे मैं खडा हूँ। मेरा एक हाथ उसकी कमर में है, और दूसरा कधे पर, कधेवाले हाथ की कोहनी उसकी छाती से सटी हुई है और लडकी शर्मिन्दगी की हँसी हँस रही है, निगाहें नीची हैं। जगह कहाँ है या लडकी कौन है, यह मैं कुछ नही जानता, सिफ इतना देख रहा हूँ कि लडकी की उम्र बाईस-तेईस वष की है, चेहरा अच्छा ही है, शरीर-बरीर, जिसे कहते है, खूब 'ऊँचे माग' पर रखने जैसा ही मुझे लगा। मैंने उसे चूम लिया। उसने मेरी ओर देखा, होंठ उठाकर 'प्रतिदान' दिया, मैं उसे पहचान न सका, जब कि हमारा परिचय है, इसमें कोई सदेह नहीं, और हम जो एक मकसद से इस तरह मिले है, वह भी साफ समझ में आ रहा है। मैंने उसको गोद में उठा लिया, उसने मेरी गदन बाहो से पकड ली, सच कहूँ तो मेरी देह में उतनी शक्ति नही है, लडकी वजनदार है, लगा बिस्तरे तक ले जाते नसें फट जायेंगी, लेकिन एक बार जब उठा लिया है तो फेंक नही सकता। लडकी के चेहरे पर हँसी है, मेरे कष्ट के सम्बध में उसे कोई चिन्ता नही है। मुझे लगा, मैंने शराब नही पी है। लडकी को लेकर जब मैं बिस्तरे पर प्रेम में लिप्त हुआ तो देखा कि वह लडकी नीता ही है। लेकिन मैं चौंका नहीं, जैसे मुझे पता हो कि मैं शुरू से ही नीता के साथ हूँ, और नीता जैसे लहरों की तरह लहरा रही है, पागल की तरह मेरी पूरी देह को होंठो से सहला रही है, और आश्चर्य, ऐसा लगा कि मैं रो पड़ूँगा   उसके बाद ही मैं जैसे नहीं, किसी अधकार में डूब गया, किसी सुख के स्रोत में बह गया, या जिसे कहते हैं, 'उन्मत्त' की भाँति 'मिलन' के सुख में डूबकर, कहीं अतल में खो गया !

मैं किसी दीवार के पास छिपा हूँ, और बिना हैरानी के देख रहा हूँ कि मुझको पीट-पीटकर मार डाला गया है, लथेडा हुआ मेरा शरीर पडा है। बहुत-से लोग जमा है, बहुत-से मर्द और औरतें, वे सब तरह-तरह की बातें कर रहे हैं। मैं कुछ भी नही समझ पा रहा हूँ, फिर भी मैं हँस रहा हूँ। जैसे यह एक तरह का खेल हो, सबके साथ इसी तरह होता हो, और जसे यह एक स्वाभाविक घटना हो, *जैसे मैं सामान्य आँख-मिचौनी खेलने जैसा ही खेल रहा हूँ।* जैसे सभी अपनी मौत देखते है, अपना शव देखते है, और मेरी ही तरह छिपकर देखते

हैं; एकमात्र 'विशिष्टता' यही है कि कौन किस तरह मरता है, इसीलिये लोग भीड़ लगाकर मेरी लाश को देख रहे हैं। सबों के चेहरे और आँखों में घृणा और भय है। ऐसा क्यों है? मेरे विकृत शव को देखकर या मुझको पीटकर मार डालने की बात सोचकर, यह मैं नहीं जानता; मुझको क्यों पीटकर मार डाला गया है, यह भी मैं नहीं जानता; खूब अस्पष्ट रूप में मुझे मात्र इतना याद आ रहा है कि मैं अपनी माँद में था; वहाँ से मैं ज्यों ही निकला, मेरे माथे पर डंडा पड़ा; कौन तो लोग मुझको पीटने लगे, मैंने किसी तरह का प्रतिवाद नहीं किया। हालाँकि मैं जिंदा ही हूँ, जैसे कि सब रहते हैं, जैसे कि सब ही एक-न-एक बार, किसी-न-किसी रूप में मरते हैं। मुझे यह सब विचित्र नहीं लगा।... उसके बाद ही हठात् पीठ पर चिकोटी महसूस कर घूमकर देखता हूँ—नीता होंठ फुलाकर, आँखें तरेर मेरी ओर देख रही है; बोली, 'फालतू देखने में खूब मजा मिल रहा है न?' मैं हँस पड़ा, और उसके बाद ही फिर अंधकार में खो गया, कोई चेतना ही नहीं रही।

दरवाजे पर ठक्-ठक् की आवाज सुनकर मेरी नींद खुल गई। आँख खुलते ही सर्वप्रथम याद आया कि मैं कहाँ-कहाँ घूम रहा था, किसके साथ क्या-क्या कर रहा था। एकमात्र नीता को छाती से लगाकर सोये रहने के सिवा मुझे कुछ भी याद नहीं आ रहा; शायद मैं तरह-तरह के स्वप्न देख रहा था, लेकिन स्वप्न का एक वही चिह्न मेरी स्मृति में शेष रह गया है। अथवा पूरी रात जो अनेक घटनाओं के बीच कटी है, वह खूब ही अच्छी तरह मुझे याद आ रहा है। नींद टूटने की प्रथम चौंकने की स्थिति के खत्म होने के बाद ही मैंने कमरे में चारों ओर देखा और साथ ही मेरी नजर कमरे के फर्श पर गई जहाँ कमीज को जलाया था; देखा, वहाँ कोई दाग नहीं था। खुली खिड़की से बाहर देखकर समय जानने की कोशिश की। ठीक समझ में न आने पर भी धूप देखकर अन्दाज लगाया कि उठने में कुछ देर हुई है, और देर होने पर बाज-वक्त रसोइया या विदिशा या माँ दरवाजे पर धक्का देती है। मैंने सोये-सोये ही पूछा, 'कौन?'

'मैं खुकू हूँ, आठ बजा है।'

मैंने कोई जवाब नहीं दिया; विदिशा भी, निश्चय ही चली गयी होगी; वह केवल जगाने के लिये आई थी। अन्य दिन कुण्डी खटखटाने से मैं इतना चौंकता नहीं था; सिर्फ यही नहीं, नींद से उठने पर नींद की खुमारी रहती थी। मगर आज मेरी हालत वैसी नहीं है, जैसे मैं अभी ही सोया था और अभी ही जग गया हूँ।

लेकिन इससे ऐसा नहीं लगता कि मैं शारीरिक रूप से अस्वस्थ हूँ। बस इतना ही कि, खुमारी रहने से जो नींद से उठना महसूस होता है, वही नहीं है। लेकिन कल रात की अपेक्षा मुझे जाड़ा अधिक लग रहा है। इसीलिये गर्दन सिकोड़े हुए उठा और टेबुल के पास जाकर घड़ी देखी, पौने आठ बजा है। सच ही, बहुत देर हो गयी है। पौने नौ से नौ बजे के अन्दर सूअर की चीख-जैसा जीप का हॉर्न सुनाई देगा। वैसे एक बार ही बजेगा, ऐसा नहीं कि किराये के मुसाफिर को बुलाने के लिये बार-बार बजे। तब भी अभी से मि० चटर्जी का चेहरा मुझे याद आ रहा है। किसी भी दिन ऐसा नहीं हुआ है कि जीप के पहुँचने पर उसे दो-चार मिनट की भी देर हुई हो, बल्कि किसी-किसी दिन ऐसा भी हुआ है कि मकान के फाटक के सामने वह लम्बा आदमी, सफेद आँखें (इतनी सफेद कि, लगता है, उनमें एक बूँद भी खून नहीं, कीड़ों ने सब चाट लिया है।) सफाचट दाढ़ी-मूँछ और तेलाक्त गम्भीर चेहरा (निश्चय ही सरसों तेल लगाकर) लिये खड़ा है। अच्छी तरह समझ में आ जाता है कि आदमी दुःखी है, और उसके साथ ही दुःख के बारे में मन-ही-मन सोच भी रहा है और उसे रात में नींद नहीं आई है। चाहे जितना भी गम्भीर रहे और दाढ़ी बनवाले, वह आँखों के काले गड्ढों से पकड़ में आ ही जाता है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है— 'एक विक्षुब्ध प्रौढ़'। वे किससे प्रतिशोध लेना चाहते हैं, यह समझ नहीं पाते, शायद इसीलिये गोया उम्र के बोझ तले शान्त रहने की कोशिश कर रहे हैं। फिर भी वे शान्त एकदम नहीं हैं, यह उनके जबड़े के लगातार हिलने और अंगूठे के पोर के रगड़ने की क्रिया को देखकर साफ़ समझा जा सकता है।
मि० चटर्जी का चेहरा याद आते ही मैंने ड्राजर से टूथ-ब्रश और पेस्ट निकाल लिया। (बाथरूम की भीड़ में रखने से घृणा होती है, इसीलिए ड्राजर में रखता हूँ।) क्योंकि अब बिल्कुल समय नहीं है। उसी वक्त दरवाजे पर फिर धक्का लगा। खोलकर देखा, रसोइया चाय का प्याला लेकर खड़ा है। चाय का प्याला लेते समय मैंने उसके चेहरे की ओर गौर से देखा और मेरे देखते ही उसने गाँव की लड़कियों की तरह अपनी नजरें नीची कर लीं, और नीची किये ही जल्दी-जल्दी मेरे सामने से चला गया। उसकी भाव भंगिमाएँ लड़कियों जैसी हैं और चेहरा भी प्राय वैसा ही है। मेरी धारणा है, मेरे इस मनोभाव को वह जान गया है, इसीलिये निगाह उठाकर देख नहीं सकता। इसके अलावा, मुझे नशेबाज जानकर उसे मुझसे भय भी लगता है, हालाँकि उसने किसी भी दिन मुझको नशे में नहीं देखा है, सिर्फ मुँह की गंध और आँखों की ललाई देखी है। उसका यह भय, संकोच, लज्जा, मुझे बेहद अच्छी लगती है, जिसे वह सकते हैं, इस्तेमाल करता हूँ।

जिस तरह एक दुर्बल असहाय को देखकर उस पर करुणा करने की इच्छा होती है, करुणा करना अच्छा लगता है, बहुत-कुछ वैसा ही; या बहुत-कुछ पालतू पशु-पक्षियों से खेल करने जैसा ही आनन्द आता है।

बासी मुँह जल्दी से चाय निगलकर मैंने पेस्ट लगे ब्रश को मुँह में डाल लिया। तौलिया लेकर बाथरूम में दौड़ा। जब निकला, तब साढ़े आठ बजा था। फिर दरवाजा बंदकर कपड़े पहने, यानी, टाई-टू-टो पहनकर पूरा-पूरा साहब हो गया। हाँ, चेहरे में स्नो-पाउडर भी लगाया। सब करते-न-करते सूअर की चीख सुनाई पड़ी। भोजन-कक्ष में जाते हुए नौकर से कहा, 'ड्राइवर से कहो, इन्तजार करे; कहो, खाकर आ रहा हूँ।'

खाने का अर्थ है जलपान, ब्रेक-फास्ट जिसे कहते हैं। विदिशा खाने के कमरे में थी, केवल मेरे लिए ही नहीं, दूसरों की भी व्यवस्था करने के लिये। और सम्भवतः माँ यहाँ नहीं आयेगी, क्योंकि वह बुरा माने बैठी है, यह मुझको जता देने की जरूरत है। अन्यथा अन्य दिन माँ ही रहती है, विदिशा अपनी लय-ताल में रहती है; लय-ताल माने एक बेकार लड़की की सभी को (यानी अपने प्रेमियों को) संभालने की जो-जो चिन्ता-फिक्र रहती है, किस-किस को फोन करेगी, किसको कौन-सा समय देगी, किसको क्या कहेगी, हालाँकि पूरे समय उसके हाथ में अखबार रहेगा, लेकिन खबरों से अधिक उसका ध्यान प्रसाधन, पोशाक, सिनेमा के विज्ञापनों पर ही रहेगा। इसी तरह वह सुबह गुजारती है, जब तक कि घर के दूसरे लड़के-बच्चे स्कूल-कॉलेज नहीं चले जाते हैं। दो वर्ष पहले उसकी शिक्षा खतम हो गयी है, सी इज ए ग्रेजुएट। अखबार घर के सब लोग पढ़ते हैं। जहाँ तक याद है, दो-एक वर्ष पहले तक मैं भी पढ़ता था, और खबरों से भीषण रूप से चिन्तित, उत्तेजित हो उठता था। बाबा, विदिशा सबों से बहस तक करता था, जो सोचकर अब हँसी आती है। अब तो प्रायः भूल ही गया हूँ कि अखबार नाम की भी कोई चीज है, जिसमें दुनिया की खबरें रहती हैं, जिन्हें जानने के लिये एक समय बहुत आग्रह था, अब मेरे मन में जिसका कोई चिह्न भी नहीं है। ऐसी बात नहीं कि कभी-कभी अखबार आँखों के सामने कर नहीं लेता, लेकिन कभी अभ्यासवश, तो कभी अत्यन्त व्यस्तता या व्यस्तता और अन्यमनस्कता जाहिर करने के लिये, अथवा किसी अपरिचित विरक्तिदायक परिवेश से मुँह छिपाने के लिये ही ऐसा करता हूँ। किन्तु खबर या विज्ञापन (एकमात्र किसी अच्छी लड़की की तस्वीर के अलावा) कुछ भी निगाहों में नहीं ठहरता। बहुत कुछ, क्या कहूँ, हाँफ जाने जैसा ही लगता है, थक जाना जिसे कहते हैं; जब कि एकमात्र अखबार ही प्रतिदिन की नीरसता दूर करने के लिये,

एकरसता को खत्म करने के लिये युद्ध नयी घटनाओं को हाजिर कर सकता है। वह भी मुझको नया नहीं लगता, और नया हो भी क्या सकता है युद्ध? शांति? शांति को कोई पसन्द नहीं करता, यह तो अखबार देखने से ही पता चल जाता है, शांति की बात नही कहने से काम नहीं चलेगा, ऐसी बात नही, बल्कि चूँकि युद्ध करने की किसी की मुराद नहीं है, इसीलिये शांति की बात कही जाती है, हालाँकि युद्ध की प्रस्तुति सब कर रहे हैं। अखबार में मैंने आज तक एक भी ऐसे देश का नाम नहीं पढ़ा, जो युद्ध की तैयारी न कर रहा हो। और यह भी सही है कि चोर खदेड़ने के लिये कोई देश सामरिक तैयारी नहीं कर रहा है, दरअसल सब तैयार रहना चाहते हैं, (गरम फुलके लूची खा तो रहा हूँ, कहीं फिर पेट न दर्द करने लगे) कोई किसी का विश्वास नहीं करता, सभी अपनी-अपनी ताल मिलाने में लीन है। सच ही युद्ध करने का किसी का भी मकसद नहीं है, क्योंकि सब जानते हैं कि जान है तो जहान है, और युद्ध करने से ही मरना होगा, ब्रह्मास्त्र से बचने का उपाय नहीं है। फिर भी सब-के-सब ताल ठोक रहे हैं और कह रहे हैं 'सुशान्ति, सुशान्ति, सुशान्ति।' यही एक ही बात हर देश में होगी, उसके बाद पार्लियामेंट, असेम्बली, मंत्रीमंडल, विरोधी-दल, चावल, दाल, कपड़ा, सरसों तेल, एक कहेगा—हम सच्चे, दूसरा कहेगा—हम सच्चे, जब कि, जो होना है, सो तो होता ही जा रहा है। गर्भ के बच्चे की तरह कोई भी इसे रोक नहीं पा रहा है, इसीलिये इन खबरों के आस-पास ही बाजार के भाव, दूकानों में चावल का अभाव, तेंतीस लाख सायकिलों की बिक्री, मूँछ बनवाने फिल्म-स्टार विलायत गया, विलायत से एक दल नाचने के लिये आया है, आदि की चर्चा है तो उसके बाद ही एक मर्डर, (नीता की बात भी मुझे याद है, वह खबर भी अखबार में जायेगी, हिसाब लगाकर देख रहा हूँ, खबर आज नहीं छप सकती, क्योंकि पुलिस आयेगी, देखेगी, समझेगी, अखबार को खबर दे या नहीं, सोचेगी। और अगर देगी तो इतनी देर हो जायगी कि पिछली रात की भोर में खबर छपना संभव न होगा। वैसे अगामी कल अखबार में निकलने की संभावना है, और जो खबर छपेगी, वह मुझे मालूम ही है, अतएव) कुछ चोरी, जुआचोरी, मार-पीट, आबहवा, व्यापार उफ् टायड! कभी नींद से उठकर अगर अखबार नहीं मिलता था तो कुरुक्षेत्र मच जाता था। प्राकृतिक कर्म-वर्म अर्थात् पायखाना जाना आदि भी दिमाग से गायब हो जाता था। जो हालत अभी पितृदेव की है, (निश्चय ही इस समय भी वे अखबार लिये घर में बैठे हैं।) भाई-बहनों की भी यही स्थिति है। वे भी अखबार पर टूट पड़ते हैं, स्पोर्टस और फिल्म तो वे सबसे पहले देखते ही हैं, कौन कह सकता है कि वार या कॅबरे की ओर भी उनकी नजर

नहीं जाती है, (मेरी तो जाती थी।) यहाँ तक कि मातृदेवी भी आँखों पर ऐनक चढ़ाकर अखबार का एक पन्ना ले बैठ जाती हैं, (वे ही कैसे पीछे रह सकती हैं!) क्या पढ़ती हैं, या क्यों पढ़ती है, यह मैं आज तक नहीं समझ पाया; और जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैं (इस बारे में क्या कहना उचित होगा, शायद 'भूसे का एक बण्डल') तो प्रायः भूल ही गया हूँ कि अखबार नाम की भी एक चीज है, जो रोज खाने-पहनने जैसी ही आवश्यक है, उसमें मेरी कोई दिलचस्पी नहीं रही है।

विदिशा ने पूछा, 'तुमको और फुलके देने को कहूँ?'

आखिरी कौर मेरे मुँह में था, माथा हिलाकर जताया, नहीं चाहिये, और घड़ी देखी, सेकेण्ड की सुई अरबी घोड़े की तरह दौड़ रही है और वही सफेद आँखें, तेल से चपचप चेहरा लिये मि: चटर्जी (साला) खड़े हैं। किसी तरह पानी पीया, (दोहाई, फिर बाथरूम न जाना पड़े!) उसके बाद चाय, जो पानी से अधिक गरम नहीं थी, किसी तरह गले में डालकर दौड़ पड़ा अपने कमरे की ओर, ड्रायर से गागल्स निकालकर पहने, आईने में स्वयं को देखा। देखते-देखते एक सिगरेट होठों से लगा लिया, वेंट्स फाइन, हूँ! हूँ, पेट ठीक है, चेहरा भी ठीक है, एक बार कमर हिलाई, आँख मारी, और उसके बाद 'कम देयर इज दी लोनूली बीच' मेरे अन्दर से गुनगुनाहट उठी। फिर भी किसी निर्जन समुद्र-तट पर जाने की बात क्यों याद आई, कह नहीं सकता, क्योंकि चला तो हूँ जनारण्य में जिसकी याद आते ही देह काँपती है, अधिक आदमियों को देखते ही मिजाज खराब होना शुरू हो जाता है, जैसे नरक में पहुँच गया होऊँ। इसके अलावा, साथ जाने के लिये मैं पुकार किसको रहा हूँ, मुझको तो इस क्षण कोई भी याद नहीं आ रहा है, केवल नीना की ही बात इसी क्षण, किन्तु (ओर-रे साला!) देरी हो रही है, चलना चाहिये। याद ही नहीं कर पा रहा हूँ कि क्या काम करना है। शायद है तो जरूर कुछ, किन्तु आफिस पहुँचे बिना कुछ भी याद आना नहीं चाह रहा है। क्योंकि काम को तो काम समझा ही नहीं जाता, बल्कि रुपये, ठाट-बाट, घूम, दल-बल, जिनके बल पर जीवन चलता है, और क्या, इसी को तो जीविका कहते हैं, इसलिए नहीं जाने से नहीं चलेगा। रुपये का अर्थ ही है जीविका, जिसके न होने पर एक क्षण भी नहीं चलता, यहाँ तक कि अभी जिस घर में हूँ, रुपये नहीं लाने से उसका भी दरवाजा बंद हो जायेगा, यहाँ तक कि, बापरे, सब खेल ही खत्म, माल चढ़ाना और प्रेम करना, (जितना अधिक रुपया, उतना अधिक प्रेम) और जितनी खातिर-तवाजा है, सब हवा हो जायेगी। नौकरी को, जैसे भी हो, बचाना चाहता हूँ। लेकिन

सच कहूँ तो नौकरी भी बहुत-कुछ छिनाल-जैसी है। जिस नौकरी ने पहली मुलाकात में मुझे वफादार प्रेमिका की तरह पुकारा था, पुकारा नहीं बल्कि जिसे कहते हैं, मेरा आह्वान किया था, 'विराट पवित्र' दायित्व-पालन, उन्नति और सुख और देश की सेवा, जीवन का भूत-भविष्य, जैसे निवाल्दिा प्रेम में अर्थात् 'पिकित पेरेम' में बहुत-कुछ रहना है, जीवन को महत पवित्रता से मंडित करना इत्यादि, उसके बाद देखा जाता है कि सब मडा माल है, सब समान है, सब एक ही है। सही कहना हो तो कहना पड़ेगा, नीता जसी ही 'निष्पाप और पवित्र'। शुरू-शुरू में मुझे भी ऐसा ही लगा था, (लेकिन अब और देरी नहीं, उल्लू, निकल चल।) एक विराट काय, कहा जाय एक दायित्वपूर्ण कार्य, सम्मान-जनक पद, (सीढ़ी से उतरने से पहले पितृदेव के कमरे की ओर निगाह गई, लेकिन ऊपर जाने का तो सवाल ही नहीं उठता, रात में ही वायरम्म की घटना ने दबा दिया था।) तब मुझको भी जीवन के इस 'परम पवित्र सुयोग' को कृतज्ञ चित्त से ग्रहण कर आगे बढ़ जाना होगा, बढ़ भी गया था उसी तरह, (कसम से) जिस तरह अनेक व्यक्ति 'जीवन के नये घर' में प्रवेश करते हैं [नया घर, क्या होता है उनमें, नहा जानते, जादू ?] उसी तरह मैंने भी अपने भावी 'सुख, पवित्रता और समाज के मंगल के दरवाजे से' प्रवेश किया था और फाईल के प्रथम पृष्ठ को खोलने का अर्थ प्रथम घूँघट खोलना और प्रथम हस्ताक्षर का अर्थ प्रथम चुम्बन की रेखा खींचना—ऐसा ही मुझे लगा था। जा साला, बिल्कुल महाराजा बन गया हूँ। उसके बाद, ओ रे बाबा ! हाथी डूब जाने लायक खोह है अम्मीजान, (ड्राइवर ने सलाम किया, मेरे बैठने ही सूअर की तरह 'गों-गों' करके दौड़ने लगी जीप) कहाँ जावे हो चाँद, एक बार अच्छी तरह देखो, हाँ, झूठ अगर न बोलो, दिन को अगर रात न बनाओ, घूस अगर न खाओ, तो कट चलो। अगर यह न हो, तो सब प्रेम टें बोल जायेगा, प्राण चीरकर देखो, रस नहीं, सुधा नहीं, बेहतर है मैदान में चले जाओ। ऐसा भी कभी हो सकता है भला ? जो बराबर सुनता आया हूँ, निहायत उल्लू बनकर जिस पर विश्वास भी कर लिया था, जिसे कहते हैं—अचकचा जाना, वही हो गया था, उसके बाद घबड़ा गया था, क्योंकि आखिर जीविका का मामला है ना ! सच कहूँ तो नौकरी भी मेरे लिये एक तरह से नीता हो गई, और ठीक से सोचा जाय तो, बात भी ऐसी ही नहीं है क्या ? उसी प्रथम प्रेम की तरह, जब सोचा था, 'पा गया हूँ !' अर्थात् जीवन-धारण जिसे कहते हैं, जीवन में करने जैसा एक काम पा गया हूँ, जो मुझे, क्या कहा जाता है उसे—'कर्मोन्माद' में मुझको डुबो रखेगा—'पवित्र कर्म' में—लेकिन उसके बाद ही देखा गया कि कर्म के मन्दिर में वह सब कुछ

नहीं है। पूजा-पाठ सब कुछ दूसरी तरह का है। पैसा देकर तेल लगाने जैसा ही है। सभी जो पा रहे हैं, खींचे लिये जा रहे है। सब को एक ही पूजा है, दो और ले जाओ। लेकिन छोड़ने का इरादा किसी का नहीं है, मैं सब छोड़ सकता हूँ, मगर नौकरी को कभी नहीं, यहाँ खूँटे से बँधा हूँ, बहुत कुछ नीता को न छोड़ पाने जैसा ही। नौकरी को, इच्छा होती है, दोनो हाथो से पकड़ सामने ला उसकी देह पर थूक दूँ। कभी-कभी, सच कहूँ तो, इतनी घृणा होती है, इतना क्रोध आता है कि गला दबाकर उसे खत्म कर दूँ। लेकिन नौकरी का गला कैसे दबाया जायेगा, पता नही, सब मेरी वही रंगबाजी है, नौकरी ही तो मुझे दोनों अंजुरियों में भरकर रुपये देती है। उसके साथ इज्जत भी है, क्योकि मैं तो आफिसर हूँ, लेकिन मुझको उसकी ही मर्जी पर चलना पड़ता है, नहीं तो रुपये और इज्जत सब हापिस्। और उसकी मर्जी का अर्थ है सच-झूठ का व्यापार, जैसे वह भी बहुत कुछ, क्या कहते हैं, असहाय है, क्योकि नौकरी-लड़की (नौकरी को लड़की समझना मुझे उचित जान पड़ता है) के चारो ओर सब भद्दे मयूर की तरह पंख फैलाकर उसकी गर्दन पर चढ़ जाने के लिये उतारू हैं, उसके लिये भी अपने को बचाकर चलने का उपाय नहीं है, क्योकि उसे भी सिहरन होती है, जिसे शृंगार कहते है, अतएव वह भी तुमसे चाहेगी ही। और उसका चाहना झूठ बोलने जैसा ही है, (छल-कला जिसे कहते है, पीरित में जैसा होता है) कुत्ते-जैसा भयभीत रहना, सूअर के बच्चे जैसे प्राणी के समक्ष हाथ जोड़ दाँत निकालकर हँसना, यह सब करना होता है। लेकिन वह, जिसे कहते है, 'पान-आहार-मैथुन' की तुम्हारे लिये व्यवस्था करती है, (पवित्र कर्म और सहज सेवा, वह सब तो बहुत पहले ही यूरिनल मे विसर्जित कर दिया है।) इसीलिये उसने तुमको बाँध रखा है, और इसीलिये तुम उसे छोड़ नही सकते। अतः नौकरी भी मेरे लिये वही आसक्ति-अनासक्ति, (फिर वही रंगबाजी !) जिसे खूब चाहता हूँ, साथ ही भयानक घृणा भी करता हूँ, विशेषतः जब यह सोचता हूँ कि इस नौकरी में ऐसा सब कुछ है, महत् परिणति है, जिसके लिये मुझे गर्व-बोध करना चाहिये, सोचकर सुखी होता हूँ; साथ ही दूसरे क्षण अति घृणा से पेशाब कर देने को जी करता है, क्योकि महत परिणतियाँ मुझसे ठीक वेश्या की तरह काम खत्म कर विदा लेने को कहती हैं, जिसका अर्थ होता है, उसकी परिणति यही है, तुम दरअस्ल बड़ी-बड़ी बातो के दाव-पेंच से कामों की फिहरिस्त दे रुपये लूटने आये हो, लूटकर चले जाओ। जिसका अर्थ है, तुम जो हो, वही मैं भी हूँ।

किन्तु इतनी देर में मात्र स्यालदह के पास पहुँचा हूँ, कहना न होगा कि सबसे जघन्य स्थान है यह, जहाँ पुलिस का हाथ एक बार उठने पर, यन्त्र को तरह

बिगड़कर ट्रैफिक रुकी रहती है, और कीड़े-जैसे राशि-राशि मानव (जन-साधारण, अहो, 'सबके ऊपर मानव सत्य', यहाँ आकर ही देखा जा सकता है कि पवित्र मानव जन्म को क्या सार्थकता है।) इस पार से उस पार आ-जा रहे हैं। ये तो सिर्फ शहर के मनुष्य नहीं हैं, इनमें बाहर के मनुष्य भी हैं, जिन्हें ठीक कै जैसा ही लोकल ट्रेनें उगले जा रही हैं। मैं इन्हीं के बीच देख रहा हूँ, भागलपुरी गाय जैसी नितम्बिनी रमणी 'पास' कर रही है, नितम्बिनी। इसका अर्थ क्या है? पिछला भाग तो सबके है, जैसे हाथ-पाँव-पीठ सबके हैं, एवं उसके लिये किसी को हाथवाली, पाँववाली, पीठवाली नहीं कहा जाता है, फिर भी पिछवाड़ेवाली (जिसे नितम्बिनी कहते हैं।) कहने से विशेष छवि उभर आती है, जिस वजह से बहुत-से लोग समय-समय पर भागलपुरी गाय की बात कहते हैं। मन्थरगामिनी पशु को धीरे-धीरे हिलते हुए चलते देखकर स्वस्थ रमणी की छवि याद आ जाती है। अवश्य ही, हाथी की मिसाल हमारे पूर्व-पुरुष पहले ही दे गये हैं—गजेन्द्रगामिनी, हम हाथी से गाय पर उतर आये हैं, और भागलपुर उसके साथ जोड़ दिया है। फर्क इतना ही है कि जिन्होंने हाथी से तुलना की है, वे सब कवि हैं, और हम सब जो भागलपुरी गाय कह रहे हैं, रंगबाज खच्चड़ हैं। पता नहीं, भैंसगामिनी कहने से क्या अर्थ निकलता।

किन्तु उफ्, ट्रैफिक-पुलिस के हाथ का स्क्रू शायद अटक गया है, अब किसी दिन भी नहीं झुकेगा और मानव-सन्तानें दौड़कर, फाँदकर (आह्, बुलेट। एक लड़की।) पार हो रही हैं, भाव ऐसा जैसे सड़क पार होने से ही जीवन सार्थक हो जायगा, त्रिकूल जीवन के नन्दन-कानन में (नरक में नहीं।) पहुँच जायेंगी। इधर घड़ी में सवा नौ बजा है, चाटुर्ज्या मोशाय हाँफ रहे हैं, बाहर की ओर बार-बार देख रहे हैं। सुअर की चिल्लाहट सुनने के लिये कान लगाये हुए हैं और मेरा चेहरा याद कर उनका मुँह सिकुड़ रहा है, जैसे मैं एक जहर की पुड़िया हूँ, क्योंकि उनकी धारणा है, मैंने ही देर की है। आम तौर से छोकड़ों को देखकर मि० चटर्जी का मन खराब हो जाता है, उनका बेटा छोकड़ा है, इसीलिये दुनिया के तमाम छोकड़े शैतान हैं, जो उम्र के जोश में विमाता को याद देकर बात ही नहीं करते। अगर उनका अपना लड़का उस तरह का नहीं होता, अर्थात् उनकी पत्नी के साथ (छोकड़ी मेरी ओर देखकर निकल गई। सोचा ही नहीं जा सकता कि गत रात एक लड़की मेरे हाथ से ही—) लगाव-बुझाव नहीं करता अगर ऐसा हो पाता तो मि० चटर्जी के समक्ष मैं भी 'पुत्र स्नेह' का पात्र होता। लेकिन इस आदमी से कभी पार नहीं पाया जा सकता, अपने

पास लाने के लिये मुझको किसी दिन भी इसने 'तुम' नहीं कहा है, जब कि दूसरे-दूसरे 'बिग बॉस' मुझको वही कहते हैं, यहाँ तक कि, जिसे कहते है, स्नेह के साथ गाली भी दे देते है—'क्या रे छोकड़े, कैसा चल रहा है ?'

आहः, हाथ नीचे आ गया है, जीप दौड़ी है, और तभी फिर मुझे नीता की बात याद आ गई। नीता अभी क्या कर रही है, अर्थात् अभी वह किस हालत में है, कौन जाने। पुलिस उठा ले गई है या नहीं, पोस्टमार्टम के लिये भेजा है या नहीं, और पोस्टमार्टम मे निश्चय ही डॉक्टर उसे चीर-फाड़कर देखेंगे, इस्, कसम से, अगर मैं वहाँ रहता तो उसके भीतर का देखता। अच्छा, डॉक्टर यह भी निश्चय ही समझ जायेंगे कि खून होने से पहले लड़की किसी पुरुष के साथ सोयी थी, लेकिन क्या यह भी समझ पायेंगे कि पुरुष ने बलात्कार नहीं किया है, स्वेच्छा से ही वह सोयी थी। अच्छा, नीता का कौन-कौन है, उसके माँ-बाप के बारे में ही कह रहा हूँ, यह सब खबर पुलिस किस तरह जान पायेगी, पता नहीं। सुना है, नीता के माँ-बाप हैं। भाई-बहन भी हैं। लेकिन बंगाल में नहीं, बिहार के किसी गाँव में हैं। कभी उसके माँ-बाप कलकत्ते में आकर कुछ दिनों तक रहे थे, तभी नीता से कलकत्ते में परिचय हुआ था। वह कलकत्ते के एक कॉलेज में पढ़ती थी और कलकत्ते से इस तरह जुड़ गई थी कि इसे छोड़कर फिर न जा सकी। किन्तु जो कुछ भी हो, मैं कुछ नहीं जानता, सब नुकसान की जड़ कोहनी ही है।

जो सोचा था, ठीक वही हुआ, गेट पर खड़े हुए मि० चटर्जी कोट का आस्तीन सरकाकर घड़ी देख रहे हैं, मूँछ-दाढ़ी सफाचट, तेल से चपचप मुखमंडल गंभीर है, इसीलिये शायद मेरी ओर देखने की उनकी इच्छा नहीं हुई। दृष्टि गाड़ी के चक्के की ओर है (वहीं जाओगे तुम।) जैसे चक्के की ओर देखकर ही देर होने के कारण का अनुमान लगाने की कोशिश हो रही है। तेज धूप में खड़े है, पाँवों के पास बहुत-से सूखे पत्ते बिखरे हुए हैं, निश्चय ही दो-एक बार चहल-कदमी करते समय पत्तों का ममर शब्द भी हुआ है, चलो अच्छा है, उनका मन तो लगा रहा, लेकिन इस बुड्ढे को भला यह सब क्यों अच्छा लगेगा, इसे तो सिर्फ पत्नी और कहाँ से कितना ऊपरी रुपया आयेगा, इसी की चिन्ता रहती है।
मैंने कहा, 'गुडमार्निंग, सर।'
'मार्निंग।' न देखकर ही चटर्जी ने जवाब दिया, जैसे मैं कोई अपराध कर आया हूँ, जैसे मेरे मुँह की ओर देखने से ही उनका सतीत्व नष्ट हो जायेगा।
मैं ड्राइवर की ओर खिसक गया, क्योंकि सुपीरियर के लिये अच्छी जगह छोड़ देनी होगी, यही नियम है। लेकिन वर्षा के समय या ग्रीष्मकाल में जब देह पर धूप पड़ सकती हो, तब सुपीरियर ड्राइवर के बगलवाली सीट पर चले आते हैं, शायद यह भी उसी नियम के अन्तर्गत आता है (जिस नियम से यह ब्रह्माण्ड चल रहा है।)। बहुत बार मैंने गौर किया है कि दरअसल वे चाहते हैं कि मैं पीछे की सीट पर जाकर बैठूँ, ताकि बुड्ढे को आगे की सीट पर हाथ-पाँव फैलाकर बैठने का मौका मिल जाये, लेकिन मैं किसी भी दिन पीछे नहीं बैठता। जानता हूँ, मुझको पीछे बैठने के लिये कहने का उपाय नहीं है, क्योंकि कहने से भी वह होगा नहीं,

और नहीं होने पर जो हालत पैदा होगी, उसके लिए बुड्ढा तैयार नही, इसीलिये नहीं कहता। गाड़ी चलने के पहले मैंने घर की ओर देखा, शायद चटर्जी की जवान वीवी नजर आ जाय, लेकिन कहाँ, एक चील-कौवा भी दरवाजे या खिड़की पर नहीं था, किसी भी दिन नहीं रहता। किन्तु मेरी धारणा है, मैं ही उसे नही देख पाता, वह निश्चय ही अन्दर से मुझको देख रही है। गाड़ी इस बार चल पड़ी है कलकत्ते की ओर, जहाँ सब कुछ खाया जाता है, और जो खाया हुआ पूरे देश की पाक-स्थली में समा जाता है, हजम होगा या नही, वह तो बाद की बात है।

'अखबार देखा है कि नही ?'

चटर्जी ने सामने की ओर देखते हुए कहा और मेरी आँखों के सामने अखबार के प्रथम पृष्ठ पर छपी औंधे मुँह पड़ी नीता की तस्वीर नाच गई। मैंने भी बिना देखे ही कहा, 'नही। क्यो, क्या कोई विशेष खबर है, सर ?'

चटर्जी सामने ही देखते रह गये, जैसे मेरी बात उनके (बुड्ढा पूरा खच्चड़ है !) कान में ही नही गई हो। जैसे गाड़ी वही चला रहे हों, ऐसी व्यस्तता का भाव उनके चेहरे पर था। गाड़ी जब दो लारियों को ओवरटेक करके आगे निकल गई तो निश्चिन्त हो उन्होंने हाथ का अखबार खामोशी से मेरी ओर बढ़ा दिया, जैसे बोलने का कष्ट उनसे नहीं हो पा रहा हो, या जैसे मेरे साथ बात करने की उनकी इच्छा नही हो, गोया इससे उनकी इज्जत में बट्टा लग जायेगा। अन्त में उन्होंने कहा, 'देखिये।'

पहले प्रथम पृष्ठ ही खोलकर देखा। पहली तस्वीर एक लड़की की है और वह सोयी भी है, मगर नृत्य की एक विशेष भंगिमा में, पीठ खुली है, छाती का भी एक हिस्सा दिखाई पड़ रहा है, उरू (बड़ा है) भी बहुत हद तक खुला है, किन्तु एक पाँव प्रायः गर्दन तक उठ गया है, चेहरे पर हँसी है, नीचे अंग्रेजी में लिखा है: 'शीत का नया आगन्तुक। इस चिड़िया का जन्म स्पेन में हुआ है, बाप इटालियन है, इसने नाच पेरिस में सीखा है, योरप और अमरीका को जीत लिया है, नाम मिस मारिया ग्राहम है, इस बार आपका अभिवादन कर रही है। इसका विश्वास है, यह कलकत्तावासियों को खुश कर सकेगी।' सो वह सकेगी, लेकिन यह निर्भर है इस बात पर कि अपनी देह वह कितनी दूर तक दिखा सकेगी, यदि पूरी दिखा सके (या-हू)···और अपनी देह कितनी हिला सकती है, जिसका अर्थ है कि वहीं से हर व्यक्ति सीधा किसी-न-किसी लड़की के पास दौड़ जाय।

'पाँचवाँ पृष्ठ देखिये।'

चटर्जी ने फिर कहा। बुड्ढा जान गया है कि मैं मिस मारिया को ही देख रहा हूँ। मैंने पृष्ठ उल्टकर पृष्ठ पाँच देखा। तस्वीर है, लेकिन फीना काटने की तस्वीर, वह भी पुरुष की है जिसे देखने की जरूरत ही नहीं, लेकिन नीता की तस्वीर या खबर तो कहीं नही देख रहा हूँ। एक तरफ एक आदमी की तस्वीर है, वह न जाने क्या बोल रहा है, उसी का पूरा सूची-पत्र है, जिससे मुझे कुछ लेना-देना नही, और उसके बाद वही रोजमर्रा की बातें—चावल-दाल-सरसों तेल।

'कुछ समझे ?'

किस खबर की बात कह रहे हैं, यही नहीं समझा, अतएव समझने के लिये क्या कह रहे है, नहीं जानता। इसीलिये मैंने चटर्जी के मुँह की ओर देखा, और बुड्ढा (सचड) उसी तरह बाहर की ओर देखकर बोल रहा है। मैंने कहा 'आप किस खबर के बारे में कह रहे है, मैं समझ नहीं पाया।'

'क्यो, वही तो, उस तरफ तस्वीर है न, देशभक्त हरलाल भट्टाचार्य की, देश की इन्डस्ट्रीज किस तरह बढाई जा सकती हैं, यह वे अपने कार्य से और लेखनी से दिखा रहे है। हाल में कल-पुर्जों का एक छोटा-मोटा कारखाना बनाने में भी वे सफल हो गये है। आठ बीघा जमीन पर कारखाने की बिल्डिंग बन रही है।'

चटर्जी कहते जा रहे है और मैं अखबार देखता जा रहा हूँ। एक तरफ तस्वीर है और जिसे मैंने सूची-पत्र समझा था, वही असली खबर है, इसीलिये लगा था कि आदमी का चेहरा पहचाना-पहचाना-सा है, तब उधर ध्यान देने का कोई कारण न था। अखबार में रोज-रोज एक ही चेहरा दिखाई देता है, इसलिए पहचाना-पहचाना-सा लगना आश्चर्यजनक नही। लेकिन यह आदमी, एक विशेष माल है, मैं इसे अच्छी तरह पहचानता हूँ। एक महीना पहले इससे मुलाकात करने के लिये मुझे जाना पडा था, एक इन्वेस्टिगेशन के लिये। और यह चोरों का शिरोमणि, यह हरलाल भट्टाचार्य, हमारे इन्डस्ट्री-विभाग से कई लाख रुपये खाकर (जिसका नाम कर्ज है, जिसे उधार लेना कहते हैं, साला, किसका जंगल कौन बाँस काटता है!) बैठा है। इसलिये कि वह एक बहुत बडा कारखाना बनायेगा, जिसके लिये उसे रुपये की जरूरत है, और मालिकों में से बहुत-से उसके परिचित हैं, क्योंकि वह एक देशभक्त है सिर्फ यही नहीं, वह पीडित भी है, अतएव उसका विश्वास किया गया था, कर्ज मंजूर किया गया था, उसे कई लाख रुपये मिले हैं, और भी मिलेंगे, लेकिन दो बरसों में, लगता है, उसने सिर्फ माल ही लिया, काम नहीं किया है, जब कि, कागज पर, जिसे दस्तावेज कहते हैं, मैप, प्लान, सब कुछ ठीक-ठाक है। उस आदमी के साथ मुलाकात कर सब विषयों की खोज लेने के लिये, सब बातों को जानने के लिये कि कुछ असली काम भी हुआ है

या सब जालसाजी है—यानी सारा रुपया घर-गाड़ी-औरत और शराब में ही चला गया है—मेरे आफिस के अधिकारियों ने मुझ पर ही भार दिया था। इसमें कोई शक नहीं कि इन्हीं सब चीजों में रुपया स्वाहा हुआ है, आदमी खूब ही भयानक है, असली जगह पर तीन बीघा जमीन के सिवा और कुछ नहीं है। यह सब हमलोगों को ही देखना और जानना पड़ता है, खोज करनी पड़ती है, (बहुत हद तक चोर का साथी गिरहकट जैसा ही। कौन किसे पकड़ता है, आओ भाई, बाँट-बाँट लें, झमेले की क्या जरूरत है !) जाँचकर रिपोर्ट लिखनी पड़ती है, दंड की व्यवस्था करनी पड़ती है। वैसे, हमारा बुनियादी काम है इन्डस्ट्री को बढ़ावा देना, नई इन्डस्ट्री तैयार करना, और ऐसी जगहों पर तैयार करना जहाँ कालोनी-टालोनी हो, छोकड़े सब बेकार हों और छोकड़ियों के पीछे लगे रहते हों, दलबंदी और मार-पीट करते हों, ताकि उन्हें उन कारखानों में काम देकर उनके खाने-पहनने की व्यवस्था कर शान्त रखा जा सके (क्योंकि पेट में भात न होने पर ही, 'यौवन-जलतरंग' अधिक बाढ़ पैदा करता है।) अर्थात् एक तरफ इन्डस्ट्री-निर्माण और दूसरी तरफ 'बेकारी-नाश', हालाँकि सीधे 'बेकारी-नाश' हमारा काम नहीं है, तब भी यह एक बहुत बड़ी बात है। यदि अधिकारी-वर्ग यह समझे कि इस आदमी को रुपये देकर सहायता करने से, एक काम होगा, तब उसको रुपये दे दिये जाते हैं। मंजूरी देना ऊपर के अधिकारियों के हाथ में है, वैसे हमारी राय और सिफारिश भी माँगी जाती है, (मैं तो अभी बालक हूँ, जिनकी राय माँगी जाती है, वे सब घाघ, उम्रदराज लोग हैं।) क्योंकि मंजूरी के बाद, जिसे 'सर्वाङ्गीण कुशल' कहते हैं, वह हमें ही देखनी पड़ती है, इसीलिए यह सब पार्टियाँ हमको हाथ में रखना चाहती हैं। यह सब कर्ज का रुपया इतना मीठा होता है कि हाथ में आते ही बेटे लोग राजा हो जाते हैं, सोचते हैं कि चलो, एक अच्छी ठकैती की है, अब देखा जाय कितनी दूर तक क्या किया जा सकता है, अभी तो अच्छी रिपोर्ट हो। अब हम उनके पीछे लग जाते हैं; 'कहाँ क्या हो रहा है महाशय', मूँछ पर ताव देते हुए पूछते हैं, (बिलाव की मूँछ, ताव देने का उद्देश्य सब समझते हैं।) जिसे बहुत-कुछ चूहे के पीछे-पीछे घूमना कह सकते हैं। 'कहाँ, क्या हो रहा है, महाशय,' खाली यही चलता है कुछ समय तक, और पार्टी हमारे हाथ में कुछ दे देती है जिससे रिपोर्ट न हो सके। उधर चुप-चुप एक दिखावटी नाटक-रचना की चेष्टा होती रहती है, किन्तु 'कहाँ, क्या हो रहा है, महाशय,'—कहना रुकना नहीं, यानी कुछ और देना होगा, और जल्दी ही, ताश के महल की तरह पूरा खेल खत्म हो जाता है, अर्थात् आप्राण चेष्टा करने पर भी बेचारा किसी भी तरह अपने कार्य में सफल नहीं हो सका है, बेचारे ने जरूर ही

कोई भूल-चूक कर दी है, अनाड़ीपन के कारण नुकसान सहकर बिल्कुल कंगाल हो गया है, इस रूप में सब घटना, जिसे कहते हैं, उद्घाटित होती है। उस तरह फेरे में पड़ जाने पर मामला-मुकद्मा, सजा, सब हो सकती है। सब इस पर निर्भर करता है कि आदमी अपने को निर्दोष साबित कर सका या नहीं, (एक प्रमाण चाहिये, हूँ-हूँ बाबा, बच्चों का खेल नहीं है।) नहीं करने पर (मूल। जाओ मरो।) हम तो तुलसी के धुले पत्ते हुए बठे हैं, देवता के पाँव पर नहीं, पेड़ पर। हाँ, हमने बहुत-से ऐसे चालाक लोगों को भी देखा है जो आसानी से छोड़ते नहीं। मैं उन्हें समझ नहीं पाता कि वे किस धातु के बने होते हैं। जानता हूँ, इस तरह के लोग बहुत भयानक होते हैं, क्योंकि ऐसे लोग जानते हैं कि ऊपर उठने की सीढ़ी पर कहाँ-कहाँ पाँव रखना पड़ेगा, कहाँ पाँव रखने पर गिरने से बचा जा सकता है, जिसे कहते हैं, न सिर्फ रुपये सायेगा, बल्कि रुपये तैयार भी करेगा, और जो रुपया बना सकता है, उसके लिए सब कुछ ठीक है, जगत वश में है। ऐसे एक आदमी को जानता हूँ, उसे आठ लाख रुपये दिये गये थे, अब उसने पाँच करोड़ रुपये की सम्पत्ति तैयार कर ली है। एक कारखाने की जमीन के लिये ही उसने तीन आदमियों का खून किया था, (साला, कसम से, पाँव पकड़ लेने को मन करता है।) अपने एक सगे भाई को भिखारी बना दिया था, (बहुत कुछ मेरे बाप की तरह ही, जगदीश्वनाथ ने अपने भाइयों यानी मेरे चाचाओं का बहुत पैसा मार लिया था, फिर भी भिखारी नहीं बना पाये थे। हालाँकि वे कहते यही है कि 'यह सब झूठ बात है', उन्होंने तो बाप की सम्पत्ति का समान बँटवारा कर लिया था।) शायद उसका कुछ रुपया था और उसने अपनी लड़की को दूसरे के हाथ में दे दिया था। दूसरे के हाथ में दे देने का अर्थ मैं नहीं समझ पाता, वैसे भी किसी-न-किसी के हाथ में वह अपने को दे ही देती। यहाँ उसने बाप के कहने के अनुसार दूसरे के हाथ में अपने को डाल दिया था, विवाह करने पर भी तो वह अपने को इसी तरह डाल देती। अभी यही लाभ हुआ है कि अब वह जिसके साथ मर्जी हो, उसके हाथ में अपने को डाल सकती है। डार भी देती है, जो वह विवाह होने पर नहीं कर सकती थी, मन में ही रखना पड़ता, अब उसे वह भय नहीं है। अब वह सम्पत्ति-भोग रही है, गाड़ी पर चढ़कर हित-मित्रों के साथ घूम रही है। जानती है, बाप उससे कुछ नहीं कहेगा, कह भी नहीं सकता। हो सकता है, पाँच करोड़ का कोई और रहस्य लड़की को मालूम हो। बाप का हाथ-पाँव बँधा है, वह एकमात्र हत्या ही कर सकता है। लेकिन इसकी जरूरत क्या है, जो हो रहा है, हो न, अगर रुपया हो तो बदनामी कैसी। पहले के लोगों की रुपया होने पर जितनी इज्जत होती थी, उससे अधिक,

अगर घर की लड़की बाहर निकल जाय तो, बेइज्जती हो जाती थी। जो हो, इस तरह का कोई तो नजर आया, जिसने सचमुच ही कुछ कर दिखाया, दस लाख को पाँच करोड़ कर दिया।

अब, यही जो हरलाल भट्टाचार्य नामक आदमी है, (काइयाँ माल) इसने अधिकारियों की मंजूरी से कई लाख रुपये ले लिये थे, अब साफ समझ में आ रहा है कि इसने कुछ नहीं किया है, और इस विषय की जाँच करने के लिये मुझे ही भेजा गया था। यह आदमी तो कलकत्ता में ही बैठा हुआ है, 'कहाँ, क्या हो रहा है, महाशय'. कहकर जितना ही मैं खोंचा दे रहा था, उतना ही वह तड़प रहा था, जिससे मैं प्राय: विश्वास कर बैठा था कि पाँच करोड़ का एक और खेल होगा, किन्तु (गाड़ी आफिसवाले मुहल्ले में पहुँचो, आदमियों की भीड़ बढ़ रही है।) इसका कोई उद्योग-आयोजन नहीं दीख रहा था। सब कुछ प्राय. कागज पर ही चल रहा था. जितने भी तरह का व्यय या लेन-देन है, वह प्रत्यक्ष या यथार्थ में कहीं भी नजर नहीं आ रहा था। सबसे ऊपर के अधिकारी चाहे न भी चौंकें, लेकिन विभागीय-अधिकारियों यानी आफिसरों और डायरेक्टरों के चौंके बिना काम नहीं चलनेवाला था। क्योंकि बाद में वे बुरे फँस सकते हैं,—'तुमने अपने काम में गफलत क्यों की ? तुमने नियमानुसार, कहाँ क्या हो रहा है, रेगुलर इन्वेस्टिगेट करके रिपोर्ट आदि क्यों नहीं दी ?' कहकर उसे कसूरवार करार दिया जायेगा और फिर उसे भी सजा मिल सकती है। अतएव हमारे लिये चुप बैठे रहना मुमकिन नहीं था। सिर्फ कार्य की जिम्मेदारी के कारण ही नहीं, वह सब जिम्मेदारी-टिम्मेदारी का थोड़े ही केयर करता हूँ; जो देखूँगा, समझूँगा, उसकी ही रिपोर्ट दूँगा, एक्शन लूँगा, बैठे रहने का अब उपाय नहीं था। यह आदमी किसी तरह गुनगुना भी नहीं रहा था, अर्थात् माल-कौड़ी नहीं छोड़ रहा था। उसका जो होना है, वह तो होगा ही, मैं क्यों खाली जाऊँ, यही हमारा सिद्धान्त है। अतएव 'क्या हो रहा है महाशय'—अब यह नहीं। 'कहाँ तक क्या किया है, जरा दिखाइये', अब तो इसी नियम के अनुसार चलना पड़ रहा था, और देखता था कि वह बहुत अकड़ के साथ 'हुड आउट' करता जा रहा था। लगता था, मुझे तो वह प्राय: कुत्ते के बच्चे जैसा ही समझता था। कागज-पत्र ऐसे दिखाता, जैसे मुझ पर दया कर रहा हो, और बराबर यही सोचता रहता कि मैं कब वहाँ से टलूँ! साले ने पहचाना है······जो हो, उसके पास से हिसाब-किताब की फेहरिस्त लेकर मैंने कलकत्ता से प्राय: चालीस मील दूर, बिलकुल स्पॉट में, जिसे कहते हैं, अभियान चलाया। और वहाँ लोगों से बातचीत करने पर पता चला कि वहाँ बहुत-से लोग कारखाना बनने की आशा में बेकार बैठे हैं, क्योंकि बहुतों को, वहाँ के कारखाने में काम

मिलेगा, इसी बात के कारण दूसरी जगह काम नहीं मिला। क्योंकि जब उन्होंने यह बताया कि फलाँ जगह से आये हैं, तभी उनसे कह दिया गया कि उन्हें लोकल फैक्टरी में ही (वह जब भी बने, उल्लू!) काम करना होगा। यहाँ के ही लोगों ने मुझको दिखाया कि केवल तीन बीघा जमीन खरीदी गयी है, जब कि मिनिमम आठ बीघा जमीन खरीदने की बात थी (रुपये मिलते ही खरीदने की बात थी।)। कुछ कोरोगेटेड टीन, टाली का एक छ टा घर, एक जगह पाँच हजार ईंटों का ढेर, जिस पर जमे सेवार को देखकर लगता था, दो बरसात तो बीत गई है। उसके अपने रुपये का हिसाब तो दूर की बात है, हमारे कई लाख रुपये में दस हजार का भी सामान वहाँ नहीं था। यह भी मालूम हुआ कि वहाँ जमीन की कीमत कम है, सात-आठ सौ रुपये बीघा है, जिसे कम-से-कम तीन-चार हजार रुपये प्रति बीघा दिखाया गया है।

जो हो, मैंने अपनी पूरी रिपोर्ट ठीक ठाक करके तैयार की और अपने चीफ की राय से उस आदमी से एक बार मुलाकात करने गया। और वह रहता कहाँ था, निश्चय ही वह कोई फेमिली क्वार्टर नहीं था। कितनी ही छोकड़ियाँ देह मटकातीं मैदान से सटे उस बड़े मकान में इधर-उधर घूम रही थीं, उसे विलास गृह कहना शायद अधिक उचित होगा, (मालूम हुआ, बात भी वही थी, महाशय एक हरम बनाकर ही वहाँ रहते है, जब कि उसका आश्रम-टाश्रम कुछ नाम दिया गया है।) क्योंकि छोकड़ियों का हाव-भाव देखकर ही यह बात समझ में आ जाती थी, इसलिए कि चारपाई की गंध और पीने-पिलाने की छाप उन पर थी। जो हो, उससे मेरे बाप का कुछ बन-बिगड़ नहीं रहा था। किन्तु महाशय के साथ जब मुलाकात हुई और जाँच का आम परिणाम जब (दु:ख के साथ, इट इज रिग्रेट टू .) मैंने उसे बताया, तब देखा, मुझको खदेड़ रहा है। सच कहूँ तो, उस वक्त वह आदमी मुझको साहसी, जिसे बहादुर का बच्चा कहते है, लगा, लौटकर उसी वक्त अपने चीफ, प्रथम श्रेणी के एक अफसर, से मैंने सब बताया। उसके बाद सभी ने, अर्थात् जो अधिकारी इस केस में थे, मिलकर फैसला किया कि मैं डिटेल रिपोर्ट मालिक को दे दूँ और उस आदमी के कारनामों और जालसाजी (मैंने एक रीयल सत्य लिखा है, एक निष्पाप अधिकारी, अहो!) के बारे में सब बताकर उसकी सजा के लिये भी अपनी राय दे दूँ। फैसला होने के साथ ही मैंने, जाँच करनेवाले अधिकारी के रूप में, वही किया। यह आदमी रुपये लेकर नाटक खेल रहा है, (क्यों रे खचड़, हमको कुछ दे देते तो यह सब क्यों होता!) बरस भर से रुपये के व्यय का कोई हिसाब नहीं दिखा पा रहा है, साथ ही जिम्मेवार अधिकारी के साथ दुर्व्यवहार कर रहा है, उसे अकारण परेशान कर रहा है। सारी बातों को सप्रमाण

विस्तार से लिखकर मैंने रिपोर्ट तैयार की और उस पर दूसरे सुपीरियर अधिकारियों की राय ले ली है यह बताने के लिये नियमतः उनसे भी दस्तखत करा, स्वयं मालिक के पास भेज दी।

भेज दी है, यानी महीने भर पहले भेज दी थी और आज हठात् देख रहा हूँ कि वही आदमी अब कहाँ-कहाँ भाषण देता घूम रहा है—देश भर में उद्योग खड़े करने होंगे, देश को आत्मनिर्भर (जिसका अर्थ है, और कई लाख रुपये शायद माँग रहा है।) होना होगा, इत्यादि। इसी समय गाड़ी आफिस-बिल्डिंग के अहाते में घुमी। मैंने अखबार लपेटकर चटर्जी के हाथ में दे दिया। गाड़ी खड़ी हुई, उतरकर हम दोनों लिफ्ट पर चढ़े, और लिफ्ट में चटर्जी ने पूछा, 'घटना से क्या समझा आपने ?'

'बेटा है पक्का धोखेबाज।'

चटर्जी की निगाह अब भी उसी तरह सामने की ओर है, जैसे वह किसी भद्र घर की वहू हो, देखने से ही······। लिफ्ट रुकी। उतरकर डिपार्टमेंट में कॉरीडोर से हम दोनों चलने लगे। आफिस के क्लर्क-कुल का कोई-कोई मेरी ओर देख रहा है—'सा ग आ गया', 'दण्डकुमार रूप दिखाने आ गया, एक दिन साले को लंगी मारूँगा'—इस तरह की बातें, जिसे मुख-रोचन आलोचना कहते है, हो रही है, यह भी मुझे मालूम है। 'साला बुड्ढा आज बिलकुल ढीला हो गया है रे, छ कड़ी की फरमाइश से भहरा गया है'—और चटर्जी के बारे में निश्चय ही इसी तरह की बातें (हो सकता है, यह सब निचले दर्जे के कर्मचारियों के विक्षोभ का रूप है।) हो रही हैं।

चटर्जी ने अपने चेम्बर में जाने से पहले (वही, न देखते हुए) कहा, 'धोखेबाज तो जरूर है, लेकिन, मतलब······।'

मैंने कहा, 'रिपोर्ट का फल शायद निकला है, इसीलिये कोई 'वे आउट' खोज रहा है।'

चटर्जी ने मेरी ओर देखा। इस आदमी की आँखें इतनी घृणित रूप से सफेद हैं, ठीक धव्व-धव्व सफेद कृमी-जैसी, कि उनकी ओर देखने से मेरी देह कैसी तो होने लगी; हालाँकि उन आँखों में कोई तीक्ष्णता नहीं है, लेकिन ऐसा कुछ है, जिससे मैं चुप हो गया। चटर्जी अपने कमरे में चले गये, एक आवाज निकाल गये—हुम्।

'हुम्। ईडियट!' कहते-कहते मैं अपने चेम्बर में चला गया। और सच ही, फिर मुझे नीता की बात याद आई और कोहनी के पास, बाँयी कोहनी के पास हाथ चला गया। हाथ लगाते ही जैसे मैंने नीता के नर्म गले का एहसास किया। चेम्बर में प्रवेश करने के पहले ही बेयरे ने मुझको सलाम किया, वह रोज ही करता है, और

रोज ही की तरह एक बार गर्दन क्वाटर इच भुकाकर मैंने चेम्बर में प्रवेश किया। टेबुल पर ढके रखे पानी को पी लिया, पीने के बाद लवेटरी में प्राय मिनट-भर गुजारकर निकला और एक कप कॉफी का आर्डर दिया। उसके बाद—नहीं, फोन बज उठा, (साला !) चोंगा उठाकर पूछा, 'हैल्लो, स्पीकिंग, ओ! गुड मार्निंग सर, (ब्लडी चीफ !) यस सर, जस्ट नाऊ ? (क्या हुआ, क्यों बुला रहा है ?) ओ, इमीडियेटली सर।'

क्या हो सकता है ? चीफ, यानी मि बागची, हम तमाम लोगों के सर के ऊपर जो है, हमारा भाग्य-विधाता, आफिस में आते-न-आते बुलाता क्यों है ? लाल बाजार (पुलिस हेड क्वाटर) से कोई आकर बहाँ बठा तो नहीं है, कोई सबूत वगैरह हाथ लग गया है क्या, यहीं से सीधे थोधर (जेल) ले जायगा ? भट लवेटरी के आईने में अपने को एक बार देख लिया, होठ दबा, भौंहें मटकाकर देखा, एक बार आँख मारी, उनके बाद, चलो, देखा जाय, क्या होना है। निकलकर चीफ का दरवाजा ठेल, घुसने से पहले एकबार कहा, 'मे आई—।'

'यस, कम, कम, सिट डाउन प्लीज।'

बचे, बेटा कमरे में अकेला है, कोई और नही है, यह और बात है कि उनसे लाल बाजार से कुछ पूछा गया हो। किन्तु चीफ इसमें-उसमें अकारण देर कर रहे हैं, यह बात मेरे सामने खुलकर आती जा रही है। लगता है, जो कहना चाहते हैं, वह कही अटक रहा है, इसीलिये लगता है, कुछ गभीर बात है। कह देने में क्या हर्ज है बाबा, मेरे पास तो साफ जवाब है ही।

'हाँ, बात यह है कि हरलाल भट्टाचार्य के केस ने कुछ दिक्कत पैदा कर दी है।'

ओ, अब समझ में आया, चटर्जी बार-बार क्यों कह रहे थे—'कुछ समझा ?' लेकिन कौन-सी दिक्कत पैदा की है, बिना जाने कुछ नहीं कह पा रहा हूँ, क्योंकि हमारे लिये कौन-सी दिक्कत पैदा हो सकती है मैं अब भी सही अनुमान नहीं लगा पा रहा हूँ। जहाँ तक याद है, हरलाल भट्टाचार्य के मामले की सही व्यवस्था करने पर, मेरी एफीसियेन्सी के लिए, कुछ जम्प हो सकता है। अर्थात् नौकरी में तरक्की हो सकती है, इसी तरह की बात हमारे सुपीरियरों ने कही थी। किन्तु चीफ का मुँह तो बगला के अङ्क पाँच (टेढा) जैसा नजर आ रहा है, जैसे उन्हें चैन नही है, सुख नहा हैं, लेने-के-देने पड गये हैं। पता नही उनकी देह में कहीं फोडा हुआ है क्या ? कहा, 'दिक्कत ? यानो मेरी ओर से किसी तरह की कोई '

'ऊँ ?' चीफ जसे पूछ रहे हों (मुझसे पूछने में भला क्या तुक है, आदमी है बास्टर्ड !) ऐसा एक शब्द निकालते हुए चोफ ने कहा, 'ऊँ, नहीं—यानी, तुम्हारी वह रिपोर्ट, जो तुमने हरलाल भट्टाचार्य के नाम की है, ऐज ऐन इन्वेस्टिगेटर,

उसे वीड़ा कर लेना होगा।'

'वीड़ा ?'

'हाँ, फाइल पर खुद मालिक ने भी तो दस्तखत कर दिये थे, जैसा कि तुम जानते हो; उसके लिये अब वे हाथ मल रहे हैं।'

'हाथ मल रहे हैं ?'

'हाँ, क्योंकि इस दफ्तर में कल ही यह प्रचारित कर दिया गया था, सिर्फ यही नहीं, भ्रष्टाचार-विरोधी-संघ में भी उसकी प्रतिलिपि चली गई है।'

'वह तो मैं जानता हूँ, यानी हम सभी जानते हैं।'

'जानते है, लेकिन गलत जानते हैं।'

'गलत जानते हैं ?'

'हाँ, गलत, यानी गलत, समझे नहीं, मैं तुमसे ठीक कैसे बताऊँ—।'

यह आदमी मेरे सामने दुष्ट साबित हो रहा है, खैर दुष्ट तो यह हमेशा का ही है, इस वक्त चालबाज खच्चड़ बन रहा है, जिसका कोई अर्थ समझना कठिन है, अर्थात् निश्चय ही कुछ दिक्कत पैदा हो गयी है, जिसका इस आदमी के शान्त भाव और मुलायम स्वर के साथ बिलकुल मेल नहीं बैठ रहा है। ऐसा कुछ खराब और भयंकर हो गया है, जिसको यह प्रमाणित करने की कोशिश की जा रही है कि सचमुच ऐसा कुछ नहीं हुआ है। मामले को दफ्तर में प्रचारित कर दिया गया है, यह सब जानते है, भ्रष्टाचार-विरोधी-संघ में (किसका भ्रष्टाचार कौन ठीक करता है! सामर्थ्यवान होने पर कोई भी कानून उसे नहीं छू सकता।) केस गया है, यह भी सब जानते है। लेकिन खुद मालिक ही हाथ मल रहे हैं, (सर्वनाश, अब और बैठा रहना सम्भव नहीं है, निश्चय ही कोई बड़ा कांड हुआ है।) और पूरा मामला ही गलत है, इसका अर्थ क्या है ? जैसे लगता है, हाथ से तीर, अब तीर कहाँ है, गोली छूट गयी है, और वह गलत हुआ है।

चीफ ने हठात् पूछा, 'रात दस बजे कहाँ थे ?'

लो मर गये, अब यह बात क्यों पूछ रहा है ? निश्चय ही इस गलती के साथ पिछली रात का कोई सम्बन्ध नहीं है। मेरे साथ फरेब तो नहीं किया जा रहा है ?

कहा, 'एक जगह अड्डेबाजी करने गया था।'

'घर में तुमसे किसी ने कुछ नहीं कहा ?'

घर पर ? यह आदमी जैसे महान् खच्चड़ होता जा रहा है। यह कहना क्या चाहता है ? फिर घर की बात क्यों कर रहा है ? निश्चय ही कल रात की बात घर पर कोई नहीं जानता है। और इसी वक्त मैंने घर के तमाम लोगों के चेहरों

को याद करने की कोशिश की, खोजकर देखना चाहा, चेहरों पर कोई ऐसा भाव तो नहीं था, जिससे यह पता चले कि सब मेरे बारे में कुछ जानते हैं, कुछ कहना चाहते हैं, जब कि कह नहीं पा रहे हैं। लेकिन नहीं, ऐसा तो मुझको कुछ याद नहीं आ रहा है।
कहा, 'कहाँ, नहीं तो?'
'मैंने कल रात को तुम्हें घर पर फोन किया था।
'ओह, यह बात है, एक्सट्रीमली ·'
'किन्तु तुम्हारे नहीं मिलने पर आज सवेरे का इन्तजार कर रहा था। आज सवेरे का अखबार तो जरूर ही देखा होगा?'
'हाँ, हरलाल भट्टाचार्य का इंडस्ट्री पर लेक्चर—।'
'हाँ, खूब योग्य पुरुष है, समझे, ही इज ए टैलेन्टेड मैन, जीनियस, ए पैट्रियट, ए रूफर—।'
शायद चीफ का गला भीग गया था, बात अटक गई। मैं जिस आदमी को एक निकृष्ट सूअर समझता हूँ, यानी इसी रूप में जिसका परिचय मुझको मिला है, और मेरे साथ और तमाम लोग भी, यहाँ तक कि यह महान् खबड भी एकमत था, वही अचानक मुझसे यह सब बातें क्यों कह रहा है? निश्चय ही यह मेरे साथ मजाक नहीं कर रहा है एक चोर को टलेन्टेड, एक शैतान को जीनियस—मैं भी निश्चय ही उल्लू हो हूँ नहीं तो चोर को, शैतान को टैलेन्टेड, जीनियस नहीं कहा जा सकता, यह क्यों सोच रहा हूँ। कितने 'विशेषणों से भूषित'—हो रहा है वह, क्या मैं नहीं देख रहा हूँ?
चीफ ने फिर मुँह खोला 'बात यह है हरलाल बाबू के बारे में जो हमारी रिपोर्ट है, यानी तुम्हारे इन्वेस्टीगेशन की रिपोर्ट है, वह गलत हुई है। ही इज ए ग्रेट मैन, (मेरा रिमार्क 'बास्टर्ड') उसके बारे में थोड़ा और कीन—यानी कान्सस—अर्थात् एलर्ट होना चाहिये था, यानी हम तमाम लोगों को चाहिये था। अगर वह (रिपोर्ट) प्रचारित न की गई होती, उसे तभी ही दबा दिया गया होता, तो कोई झमेला ही न था। अब एक और रिपोर्ट लिखनी होगी, यानी फर्दर इन्वेस्टीगेशन में तुमको जैसे असली बात मालूम हुई है इस तरह हरलाल बाबू पर से चार्ज वापस ले लेने होंगे, यानी मेरे शब्दों में जिसे बीड़ा कहते हैं।'
टेलीफोन बज उठा, चीफ ने उठाया, 'यस, स्पीकिंग, यस-यस, दैट्स ऑलराइट, ही विल सी यू इमीडियेटली।'
रिसीवर रख, भौंहें मटकाकर उन्होंने मेरी ओर देखा, 'तुम्हारे चेम्बर में कोई आवश्यक काम से बैठा है। उसे निपटाकर तुम फिर यहाँ चले आओ, फिर

तरह बीड़ा किया जाय, इस पर बातचीत की जायगी, आई लाइक टु हेल्प यू, मि० चटर्जी के साथ मैं बात कर रहा हूँ, मि० घोष को भी बुला रहा हूँ।'

मैं उठा, उन तमाम घटनाओं पर सोचने की कोशिश की जो मेरे दिमाग में आ-आकर भी नही आ पा रही हैं, जब कि, (मैं जैसे अपने साथ ही चाल चल रहा हूँ।) घटनाएँ तो शायद पानी की तरह ही साफ लग रही हैं। हरलाल के बारे मे जो रिपोर्ट की गई है, अर्थात् मैंने जिसे उगल दिया है (कै करने की तिक्तता से ही मैंने उगल दिया है।) उसे फिर अमृत-जैसा चाट-चाटकर निगलना होगा। और—

'एक बात और है—।'

दरवाजे से पलटकर देखा। चीफ ने कहा, 'कल-परसों के अन्दर कोई बिजनेस तो नही किया ?'

बिजनेस, अर्थात् घूस लेना, यही हमारी कोड भाषा है। जहाँ तक याद आया, नही किया है, फिर भी कल-परसों की बातें सोचकर याद करने मे समय लगेगा। नीता की बात अब भी मुझको याद है, लगता है, उसे भूलने में दो-एक दिन लग जायेंगे। लेकिन उसके बाद की तो बहुत सारी बातें मुझे याद नही है।

कहा, (जैसे थोड़ा शर्माकर, फिलहाल मैं अपने-आपको ही महान् लग रहा हूँ।)

'नही तो।'

'अच्छा, ठीक है, जाओ, जल्दी लौट आना।'

निकल आया, लेकिन यह बात उसने क्यों पूछी, समझ नही पाया। अभी क्या मुझे धमकाने की कोशिश हो रही है, अर्थात् मुझे समझने की कोशिश हो रही है, मैं समझ नही पाया, क्योंकि अगर बिजनेस होता तो चीफ जरूर ही जानता, उसे चकमा देकर माल मार लेना असम्भव है। निश्चय ही ऐसी बात नही कि (अपने चेम्बर में घुसा, तो देखा कि एक आदमी बैठा है। उसने हाथ उठाकर नमस्कार किया, मैंने भी हाथ उठाकर जवाब दिया।) उनके अनजान में कभी घूस ली ही नही हो, लेकिन खूब ही सावधानी से ली है, और जानता हूँ कि उसकी खबर कभी भी उन तक नही पहुँचेगी, नही तो पता है, घर का शत्रु ही विभीषण हो जायेगा।

किन्तु ठंड मुझे अब नही लग रही है, इसलिये कोट खोलकर ब्रैकेट मे लटका दिया, टाई को थोड़ा खीच दिया, फिर प्रतीक्षारत आदमी की ओर घूमकर देखा, उसके सिर का एक बड़ा हिस्सा गंजा है, गोल चेहरा अधिक फूला-फूला-सा है, बहुत कुछ बच्चा-जैसा लग रहा है, आँखें काली चमकीली है (शायद पाक-स्थली अब भी ताजा है, क्या खाकर ?) जैसे कोई बच्चा गाल फुलाकर गम्भीर

बना बैठा हो, और मुख पर बिना कोई विशेष भाव लाये, चचल आँखों में कौतूहल भरकर सब देखना चाहता हो। निरीह गाय-जैसा है बेचारा, गम कपड़े की शर्ट का बटन गले तक बन्द है, किन्तु टाई नहीं बाँधी है, कोट भी नहीं है, पेट पर बेल्ट से तोंद बाँध रखने की कोशिश की गई है। मैंने, स्वभावत जो करता हूँ, भौंहों में तनाव लाकर, चेहरे पर गम्भीरता को चादर फैलाई, टेबुल से एक फाइल निकाल ली, (व्यस्त जो हूँ।) और उसका फीता (लाल नहीं) खोलते-खोलते कहा, 'कहिये, आपके लिये क्या कर सकता हूँ ?'
जैसे दुनिया के लिये सब कुछ करने के लिये ही यहाँ सिद्धि-दाता गणेश होकर बैठा हूँ, और यह आदमी निश्चय ही किसी ऐसे काम के लिये आया है, जो इस विभाग के अन्तगत आता है।
आदमी ने कहा, 'आप निश्चय ही खूब व्यस्त है, लेकिन मेरे लिये आने के सिवा कोई उपाय न था।'
मैं व्यस्त हूँ या नहीं, यह मेरे समझने की बात है, तुम्हें मुझसे क्या काम है, वही बककर अभी यहाँ से टलो, चाँद। लेकिन इस आदमी की आवाज अद्भुत रूप से मोटी है, लगता है, किसी की ऐसी ही आवाज मैंने ओथेलो के पाट में सुनी थी। तब भी कहना पड़ा, 'ऐसी बात है क्या, खैर, क्या बात है, कहिये ?'
आदमी ने उसी तरह, बहुत-कुछ नरक के सिपाही की तरह मोटी आवाज में कहा मैं आपके पास इन्टेलीजेंस ब्राच से आया हूँ, इन्वेस्टिगेशन का एक दायित्व मेरे ऊपर आ पड़ा है, इसीलिये आना पड़ा।'
'अरे साला,' यही वाक्यांश सबसे पहले मेरे मन में आया और उसके साथ-ही-साथ 'सावधान कहकर मैंने स्वयं को मन-ही-मन चेतावनी दी, और तत्काल चेहरे का भाव अफसर-जैसा ही करके, गोया नितान्त एक सामान्य कौतूहल के अलावा और कुछ नहीं, उसी तरह भौंहों को थोड़ा चढ़ाकर उसकी ओर देखा। चीफ ने जो पूछा था, कल-परसों कोई बिजनेस किया है या नहीं, वह अब समझा, वे फोन पर ही जान गये थे कि इन्टेलीजेंस ब्राच का आदमी मेरे कमरे में बैठा है। मैंने उस आदमी की ओर और भी अच्छी तरह देखा, लेकिन चेहरा देखकर कुछ भी समझना मुमकिन नहीं कि 'माल' का आगमन कहाँ से हुआ है।
बहुत कुछ अवाक् होने की हालत में ही पूछा, 'क्या बात है, कहिये, हमारे आफिस के बारे में—।'
'नहीं, नहीं,' आदमी ने झट से कहा, (वह तो मैं भी जानता हूँ, तुम क्या बताओगे ?) 'आपके आफिस के बारे में कोई बात नहीं है, मैं आपके ही पास

आया हूँ, कई बातें पूछने के लिये, दया करके थोड़ा-सा समय मुझको देना होगा।'

दया करके ? तुम्हे-जैसे मुँह को देखकर कुछ भी न समझ पाने पर भी, लगता है, माल फरेबबाज है, कहता है, दया करके। तुम चोर पकड़ने के लिए जाल बिछाने आये हो, तब भी मुँह से जैसे फूल झड़ रहे हैं।

मैंने कहा, 'किन्तु बिना सुने तो कुछ कहा नहीं जा सकता, वैसे मुझे आज ही एक आवश्यक काम आ पड़ा है, जिसे जल्दी ही सुपीरियर के साथ बैठकर निबटा लेना होगा। (थोड़ा हँसा) यानी मैं भी एक इन्वेस्टीगेशन के ही गोल-माल में पड़ गया हूँ। तब भी, चूँकि आपको मुझसे ही कुछ पूछने की जरूरत है, तो मैं जरूर ही आपकी बात सुनूँगा।'

'अजी हाँ, आपसे ही, यानी आपके काम का नुकसान कर......।'

आदमी वह सब औपचारिक बातें कहने लगा; उधर मैं सोचने लगा कि बात कहाँ तक पहुँची है, अर्थात् मुझे जानना चाहिये कि मेरे बारे में कहाँ तक पहुँची है। अन्दाजन ढेला मारने आया है, या कुछ निश्चित सुराग पाया है।

मैंने कहा, 'ठीक है, आप कहिये, क्या बात है।'

'बात है सर, एक खून।'

'खून ? (वह तो जानता ही हूँ, लेकिन मुझको ही तो सबसे ज्यादा आश्चर्य-चकित होना होगा।) किसका, कहाँ ?'

'सेन्ट्रल कलकटा,—नं० मकान के सात नम्बर एपार्टमेंट में—।'

मैंने उस आदमी को बात खत्म नहीं करने दी, (जो होना चाहिये।) कह उठा, 'क्या कहते हैं, वह तो, जिसके बारे में आप कह रहे हैं, वह तो नीता का एपार्टमेंट है।'

'नीता राय।'

'हाँ, हाँ, कहिये न—वह तो मेरी, क्या कहूँ, आई मीन—।'

प्रेमिका, हाँ यही कहना उचित है, क्योंकि (वह अगर मर ही गई हो, आहा!) तब मैं तो उसका खून कर नहीं सकता।

उस आदमी ने गंभीर होकर या शायद व्यथित होकर, चेहरा कुछ झुकाए ही रखा, और उसी तरह कहा, 'जानता हूँ, उनके साथ आपकी खूब ही हार्दिकता थी, उनका कल रात अपने घर में खून हो गया।'

'खून ? नीता का खून ?'

मैं प्रायः चिल्ला उठा, (पता नहीं, इसके बाद यह आदमी कहेगा या नहीं, 'और वह आपने ही किया है।') ठीक जिस तरह कोई अचकचाकर दुःख में आर्त-

नाद कर उठता है, 'हाऊ, हू-हू डन इट ?'
इनवेस्टिगेटर ने अपने फूले-फूले चेहरे पर एक तरह की संवेदना और सान्त्वना की हँसी फैलानी चाही, कहा, 'वही जानने के लिये तो आपकी शरण में आया हूँ।'
मैं भट् बोल उठा, 'लेकिन मैं तो कुछ भी नहीं जानता, महाशय।'
'जो जानते हैं, उतना ही बताने से चलेगा, अर्थात् (वह आदमी अब ठीक गिर-गिट की तरह मेरी ओर देख रहा है।) मिस राय के बारे में जो जानते हैं, वही बताने से चलेगा, जिससे कुछ तो सहायता मिल सके।'
'जरूर, तो कहिये, किस तरह से मैं आपकी सहायता कर सकता हूँ, उसके बारे में मैं जो-जो जानता हूँ, वह सब आपको बता दूँगा।'
'अच्छा, मिस राय के साथ आपकी आखिरी मुलाकात कब हुई थी, कुछ याद कर सकते है ?'
'यही दस-बारह दिन पहले, लेकिन एक बात, यह खून हुआ किस तरह ?'
'गला दबाकर, मतलब, पोस्टमार्टम की रिपोर्ट अभी तक नहीं मिली है, लेकिन साफ समझ में आ रहा है कि गला दबाकर ही मारा गया है।'
मैं अपने में एक दुख भरा भाव पैदा कर, जैसे उस विभीषिका को देख रहा होऊँ, चुप रहा (बात नहीं कह पा रहा हूँ, अहा!) जब कि मेरी आँखों के सामने पिछली रात का, ठीक दम निकलते समय का क्षण और उसके साथ ही मेरे पेट पर की नाखून से खरोची जानेवाली चमड़ी नाच उठी। निश्चय ही यह आदमी मेरी वह जगह नहीं देखना चाहेगा, जहाँ अब भी दाग है।
'आपके साथ क्या कल उसकी मुलाकात हुई थी ?'
देखते हो, इस आदमी के पूछने का तरीका देखते हो, (सचड!) जब कि मैं कह रहा हूँ, दस-बारह दिन पहले मुलाकात हुई थी, तो, कल मुलाकात हुई थी या नहीं, पूछने का क्या अर्थ है ? अगर तुमने सब कुछ स्वयं ही देख लिया है, तो कह दो न मेरे बाप, रेड हैंडेड घटना हो, तो स्वीकार कर लूँगा, इसमें अब अधिक बात करने की क्या जरूरत है।
कहा, 'ऐसा होता तो आपसे कहता ही।'
वह आदमी जैसे सकुचा गया, बोला, 'नहीं, तब भी एक बार पूछ लेना मेरा कर्तव्य है। अच्छा, आपको क्या किसी पर संदेह है ?'
'मुझको—?'
'हाँ, आपके साथ उनका खूब ही, जिसे कहते हैं, हुआ था, (पीरित हुई थी, कहो न बाबा।) हो सकता है, आपसे उसने कभी कुछ कहा हो।'
'क्या वह सकती है मुझसे ?'

'यही मान लीजिये, उसके साथ कोई आदमी बुरा व्यवहार करता था, मार डालने का भय-वय दिखाता था।'

'नहीं, ऐसा तो उसने कभी कुछ बताया नहीं। और मैं किसी खून कर डालने-वाले आदमी का अन्दाज भी नहीं लगा पा रहा हूँ।'

'उनके किसी दुश्मन का आपको पता है क्या ?'

'नहीं, मुझे तो इस बारे में कोई जानकारी नहीं, हो सकता है, अन्दर-ही-अन्दर ऐसा कुछ रहा हो।'

वह आदमी चुप रहकर कुछ देर तक पाँव हिलाता रहा, अपनी मोटी उँगली से टेबुल ठोकता रहा, फिर भी चेहरा देखकर कुछ भी समझना कठिन था कि इसके बाद क्या पूछ सकता है। चेहरा बिना उठाये, जैसे संकोच कर रहा हो, उस आदमी ने कहा, 'कुछ अन्यथा न लें, आपकी क्या राय है, क्या मिस राय बहुत ही फेयर लाईफ लीड करती थी ? यानी आपके साथ तो खैर, उनका खूब ही था, लेकिन क्या आप जानते हैं, आपका कोई प्रतिद्वंद्वी भी था या नहीं ?'

प्रतिद्वंद्वी, नीता के पुरुष-मित्रों में मेरा कोई प्रतिद्वंद्वी भी था क्या ? हममें से क्या कोई किसी का प्रतिद्वंद्वी था, या प्रतिद्वंद्विता कहने से जो अर्थ निकलता है, आज-कल उसका कोई अस्तित्व भी है क्या ? मैं तो नहीं जानता। सब नीता की इच्छा पर ही निर्भर था। जैसे, मैं जब किसी लड़की के पास जाता हूँ, तो क्या मैं सोचता हूँ कि वह नीता की प्रतिद्वन्द्विनी है ? वह नीता की प्रति-द्वन्द्विनी कैसे हो सकती है, वह तो उस समय सिर्फ मेरी इच्छा पूरी करने के लिये ही होती है, नीता के साथ उसका कोई सम्पर्क नहीं होता।

मैंने कहा, 'नहीं, इस तरह का तो कोई याद नहीं आता।'

'क्या आपको ऐसा लगता है कि इस तरह की बात बिल्कुल असंभव थी ?'

'इसका कोई सही जवाब नहीं दे पा रहा हूँ।'

'अच्छा, उसके यहाँ और किसका आना-जाना था, ऐसा कोई नाम-धाम बता सकते हैं ?'

'हाँ, यह बता सकता हूँ।'

मैं जितने नाम जानता था, सभी बता दिये; पहले वे सब भी तो जवाब देकर मरें। अनेक ही तो उस घर में, उस पलँग पर क्रीड़ा कर गये हैं, देखा जाय, उनमें से किसी को फँसाया जा सकता है या नहीं। उस आदमी ने सब नामों को लिख लिया, लेकिन वह मेरे बारे में क्या और कितना जानता है, कुछ समझ में नहीं आया। इसके अलावा, क्या वह पूछ-ताछ के लिए सबसे पहले मेरे ही पास आया है; यदि ऐसा है तो कुछ सुन-समझकर ही आया है या नहीं,

कुछ भी पता नही।
मैंने कहा, 'अच्छा, पूरी घटना क्या है, क्या जान सकता हूँ ?'
'निश्चय ही, कल रात बारह बजे पुलिस के पास फोन आया कि मिस राय अपने घर में सोयी हैं, अन्दर से दरवाजा बद है, घर मे लाइट जल रही है, किन्तु अनेक बार पुकारने पर भी दरवाजा नहीं खोल रही हैं। मकान-मालिक का कहना है कि उनको घटना सदेह-जनक लगी, अतएव (यह सब तो मुझे मालूम ही था) पुलिस को सूचना देना ही ठीक समझा। मेड-सर्वेंट बाहर से आकर प्रतीक्षा कर रही था, उसको हमलोगो ने अरेस्ट कर लिया है।'
'चित्रा को ?'
इस बार नाम मुझको साफ-साफ याद आ गया। आदमी ने कहा, 'हाँ, इसलिये कि लड़की का चरित्र अच्छा नही है, एक बार एक होटल से प्रोस्टिट्यूशन के अपराध में पकड़ी गई थी, बसे रिहा कर दी गई, फिर भी उसका चरित्र संदेहजनक है। और घर का दरवाजा बाहर से खींच देने मे ही बद हो जाता है, वैसी हालत में नौकरानी पर सदह किये बिना नहीं रहा जा सकता। ओफकोर्स, उनके पक्ष में खून करने का कोई मोटिव हमें नहीं मिला है। बिकॉज—घर की कीमती च जा में से कुछ भी गायब नहीं हुई है, जो वह कर सकती थी। इसके अलावा, उस मकान के सभी कह रहे है कि नौकरानी मिस राय को बहुत ही विश्वस्त थी। उसी को देख-रेख में सब कुछ रहता था, फिर भी उसे अरेस्ट किये बिना कोई उपाय न था, विशेषत पूछ-ताछ के लिये। गाँव-देहात की अशिक्षित लड़की है न, अचानक भयभीत हो भाग सकती है, इसीलिये उसे रोक रखा गया है। खैर, जो हो, कुल मिलाकर पुलिस को सदेह हो गया कि खून हुआ है, इसलिए मैंने निक को बुला दरवाजा खुलवाया और भीतर जाने पर देखा गया, सो इज डड, सभवत गला दबाकर ही मारा गया है, वैसे शाम को ही इस बात का निश्चित पता लग सकेगा। आपके बारे में हमें नौकरानी से ही मालूम हुआ ।'
यह आदमी कहना क्या चाहता है, मेरे बारे में इसे क्या मालूम हुआ है ? चित्रा ने तो कल मुझको निश्चय ही नही देखा था ? निश्चित रूप से कुछ कह नहीं सकता, शायद लौटते समय रास्ते में कहीं देखा हो।
कहा, 'क्या मालूम हुआ ?'
'आपके बारे में, यानी आपलोगों के बारे में, जिनका मिस राय के यहाँ आना-जाना था। आपने जिन नामों को अभी बताया, नौकरानी ने प्राय वे सभी नाम पुलिस को बताये है, उसी से आपके पास आ पाया हूँ।'

'आपलोग किस पर संदेह कर रहे हैं, अर्थात् किसको ऐसा समझ रहे हैं ?'
'मैं अब तक आपको मिलाकर तीन आदमियों से मुलाकात कर चुका हूँ, उनमें से मुझे किसी पर भी संदेह नहीं है, लेकिन आप जानते हैं, हमारा काम ही ऐसा है, सर, कि सब पर ही हमें संदेह करना पड़ता है, और साथ ही किसी पर भी ठीक से संदेह नहीं कर सकते।'
'खूनी की कोई पहचान नहीं पाई गई क्या ?'
'इस बारे में अभी मैं आपसे कुछ नहीं कह सकता। लेकिन आपने इसी बीच लगातार कई सिगरेटें भी डालीं, क्या आप चेन-स्मोकर हैं ?'
वह आदमी थोबड़े मुँह से हँसा, हालाँकि उसकी हँसी को ठीक हँसी कहना उचित नहीं, लगा, माँस का रेशा थोड़ा-सा फैल गया। सिगरेट पीनेवाली बात के माध्यम से उसने क्या कहना चाहा है, समझ नहीं पाया। क्या यह आदमी सोच रहा है कि मैं नर्वस हो गया हूँ, इसीलिये इतनी जल्दी-जल्दी सिगरेट पी रहा हूँ ? इसके अलावा, पिछली रात नीता के घर में मैंने जो सिगरेट पी थी, यह सिगरेट वह नहीं है, ब्राण्ड देखकर कुछ नहीं समझा जा सकता, रहो बेटा चक्कर में।
कहा, 'आपने जो दुर्घटना सुनायी है, सुनकर अगर कुछ अधिक सिगरेट पी गया हूँ, इससे तो—।'
टेलिफोन बज उठा, रिसीवर उठाया, चीफ की आवाज सुनाई पड़ी, 'वह आदमी गया ? इधर तो अब अधिक देर नहीं की जा सकती, इमीडियेटली तुमको एक दूसरी रिपोर्ट तैयार कर देनी होगी।'
कहा, 'हाँ, मेरा खयाल है सर, अब वे उठेंगे, उनके जाते ही मैं आऊँगा।'
रिसीवर रख दिया, और उस आदमी के मुँह की ओर देखने लगा, सड़े कद्दू-जैसे माँस के लोथड़े में दो आँखें, ऊपर से देखने में बिलकुल निरीह लगता है; गाल फुलाये बबुआ-जैसा है वह आदमी, जिसकी आँखों की पुतलियाँ बेहद चमकीली हैं, जिस ओर देखना है, जो देखता है, उसी में जैसे डूब जाता है; सब कुछ देखता है, लेकिन सियार-जैसा सयाना धूर्त नहीं है, शार्प—अर्थात् तीक्ष्ण नहीं है, कि अन्धकार में भी देख पायेगा, फिर भी जैसे उसकी निगाहें सब कुछ पकड़ ले रही हैं। अभी यह आदमी मुझको डिवाइन खचड़-जैसा लग रहा है, जिसे क्या कहते हैं, एक पुण्यवान धर्मोपदेशक, ईश्वर का उपासक, 'जय गुरु बाबा, तुमको ही प्राण सौंपे बैठा हूँ,' ऐसा ही भाव है उसका, लेकिन अनुभवी निगाहों को धोखा देना मुश्किल है, छोकड़ा-शिष्या को देह पवित्र भाव से, निष्काम भाव से चाट जाय, एक भी आसामी इसकी नजर से बच नहीं सकता, शायद ऐसे आदमी

को ही डिवाइन ब्लफ कहा जाता है। इसीलिये इस बार उस आदमी के प्रति मुझे घृणा होने लगी, क्रोध आने लगा।
उस आदमी ने कहा, 'आपका बहुत मूल्यवान समय नष्ट कर दिया लेकिन आप ही कहिये, क्या करूँ। काम का दायित्व, बिना आये चलता नहीं। जब तक इसे एक किनारे पर नहीं लाता, यानी खूनी को नहीं खोज निकालता तब तक हो सकता है, आपको परेशान करने कई बार आऊँ। और आप तो जानते ही हैं, अखबारवाले किस तरह पीछे लग जाते हैं जितनी ही देर होगी, उतना ही निकम्मा कहकर शहर सर पर उठायेंगे, जब कि ऐसा तो है नहीं कि खूनी खुद हमारे पास आकर जाने को पकड़ा देगा। अगर ऐसा होता तो सब ठीक ही हो जाता। अच्छा, तो अब चलूँ—।'
किन्तु डिवाइन उठा नहीं, बल्कि उस अजय बालक ने निरीह दृष्टि से देखते हुए फिर कहा, 'अच्छा, आप कल रात में कहाँ थे ?'
मैं एक फाइल का फीता लगभग खोलने ही जा रहा था, उसका प्रश्न सुनकर जिस क्षण यह समझ में आया कि उपदेशक-जैसे निरीह जाल बिछानेवाले की असली बात शायद अब शुरू होने जा रही है, तब सीधी बात करने का मेरा मन नहीं हुआ, यह देखने की इच्छा हुई कि उकताहट दिखाकर इस आदमी को भगाया जा सकता है या नहीं। नयी रिपोर्ट तैयार करने की जल्दी मैं अभी महसूस नहीं कर रहा था लेकिन, क्या कहते हैं, इस जासूस से मुझे क्या कहना चाहिए इस बारे में थोड़ा सोच लेना चाहता हूँ। क्या कह रहा हूँ और क्या नहीं कह रहा हूँ, और भविष्य में क्या कहा जा सकता है, इन सब बातों के बारे में सोचने का समय मिले बिना अभी मुँह नहीं खोल पा रहा हूँ। इसलिये मैंने कहा, 'कलकत्ते में मेरा घर है।'
उस आदमी ने जल्दी में गर्दन झुका, जैसे भूल हो गई हो, चेहरे पर हँसने का भाव लाकर (नहीं जानता, वह हँसी है या नहीं) कहा, 'शायद बात सही तरीके से नहीं पूछी गई। मैंने पूछना चाहा था, कल शाम से ग्यारह बजे के बीच आप कहाँ थे ?'
'रात ग्यारह बजे भी रास्ते पर, और शाम को भी रास्ते पर।'
वह आदमी मेरी ओर देखता रहा, जैसे बालक की कुछ भी समझ में नहीं आया और उसने कहा भी वही, 'बात मैं ठीक से समझ नहीं पाया।'
'मुझे बहुत सारा काम है। आपकी बात भी मैं ठीक-ठीक नहीं समझ पा रहा हूँ।' (उल्टा।)
बालक उसी तरह देखता रहा, जैसे निष्पाप धर्मयाजक भगवान के समक्ष मन-प्राण

सौंपे बैठा है। बोला, 'डाक्टर की राय है कि सन्ध्या से ११ बजे रात के बीच मिस राय का खून हुआ है। मै आपसे पूछता हूँ,—आप उस समय कहाँ थे ?'
'मुझसे यह क्यों पूछ रहे है ?'
'जिससे यह जान पाऊँ कि उस समय आप मिस राय के अपार्टमेंट मे थे या नहीं।'
'वह तो मैंने आपको पहले ही बता दिया है, कल नीता के साथ मेरी मुलाकात ही नही हुई।'
'ओह, आपने कहा था मुझे याद ही न रहा, लेकिन आप कहाँ थे, यह तो आपने बताया नही।'
'आप कहाँ थे ?'
वह आदमी कुछ देर तक चुप रहा। कद्दू! उसके बाद भारी आवाज मे बोला, 'मैं ? मेरे साथ तो मिस राय का परिचय था नही, आना-जाना भी नहीं था। इसलिये इस बारे मे मेरी बात ही नही उठती।'
'तब क्या, मेरे किसी परिचित का खून हो, तो उस खून के वक्त मैं कहाँ था, यह मुझे याद रखना होगा ?'
'कानून यही कहता है कि याद रखना अच्छा होगा, न हो तो परेशानी में पड़ जाना होता है, यही और क्या। आप अगर याद कर पाते तो अच्छा होता, विशेषत: जब कि इस घटना में आप पर संदेह किया जा सकता है!'
'इसका अर्थ है, आप कहना चाहते हैं, नीता का खून मैं भी कर सकता हूँ ?'
'क्या ऐसा नही हो सकता ?'
'सच, आपके साथ बात करने का समय अब मेरे पास नही है। मैं भी एक इन्वेस्टिगेशन में ही व्यस्त हूँ।'
वह आदमी उठ खड़ा हुआ। उसी तरह गाल फुलाए मुँह और बालक-सुलभ निगाहो से देखते हुए, अभिनेता-जैसी भारी आवाज मे बोला, 'तो आपने बताया नहीं, कहाँ थे ?'
मैंने सिगरेट जलाकर कहा, 'जब आप सुनना ही चाहते हैं, तो सुन लीजिये, मैं कहाँ था यह मुझे याद नही, बहुत ज्यादा माल चढ़ा लिया था न।'
'माल ?'
'माल नही जानते ?'
'शराब की बात कह रहे है ?'
यह आदमी सच ही डिवाइन खच्चड़ है, बल्कि सल्लाइम बदमाशी भी इसमें कहीं है।
उसने फिर कहा, 'आप शराब पीते हैं क्या ?'

कुरबान जाऊँ, आप शराब पीते हैं क्या,' उसके बाद अब कहेगा, 'ओ, आप स्त्रियों के साथ सहवास भी करते है क्या,' और उसके बाद, 'आप वस्त्र धारण भी करते हैं, भोजन भी करते है क्या,' आदि भी पूछेगा। मैंने कहा, 'हाँ महाशय, माल-वाल पीता हूं। और उसके बाद किसी लड़की-वड़की के घर गया था या नहीं, याद नहीं आ रहा है, हो सकता है, गया भी था।'

'गये थे या नहीं, यह भी याद नहीं है ?'

'नहीं, झोंक में वह सब मुझको याद नहीं रहता।'

'वह कौन लड़की है और कहाँ रहती है, कुछ याद कर सकते है ?'

'नहीं।'

'वह लड़की मिस राय थी या नहीं, याद कर सकते है क्या ?'

'हाँ, सो कर सकता हूं नीना नहीं थी। (साले, तुम्हारा फरेब क्या समझ नहीं रहा हूं ?) मैं उसको प्यार करता हूं, यानी करता था, इसीलिए जब उसके निकट जाता हूं तो उसकी बात याद रहती है।' (कसम से, यह मैं झूठ नहीं कहता, नीना के पास जब मैं जाता हूँ तो सचमुच याद रहता है, जब कि पियार किसे कहते है, मैं नहीं जानता।)

'और जिन लड़कियों-वड़कियों के पास, यानी जैसा कि आप कह रहे हैं, आया-जाया करते हैं, शायद आप उन्हें प्यार नहीं करते ?'

'आप जिन लड़कियों के पास जाते हैं, क्या सबको ही प्यार करते हैं ?'

'मैं ? मैं तो किसी लड़की के पास—।'

'जाते-वाते नहीं। लेकिन अन्य बहुत-से लोग तो जाते ही है—वेश्याओं के पास या हाफ-गृहस्थ औरतों के पास, या और भी तो कितनी ही तरह की होती हैं, इन सबकी जानकारी तो आपलोगों को रहती ही है, उदाहरण के लिए, मैदान में, शराब के अड्डों पर, बगल के मकान में या मुहल्ले में, वह सब तो प्रेम (पियार) नहीं होता, देह सुलझाना ही अधिक होता है, उन्हीं के बारे में कह रहा था।'

फिर टेलिफोन बज उठा, चीफ की आवाज थी, 'क्या हुआ, वह आदमी अभी तक नहीं गया ?'

वह आदमी जिससे चला जाय, मैंने उसी भाव से कहा, 'उठ खड़े हुए हैं, इस बार जाएँ शायद।'

'अभी उनसे जाने के लिये कहो, बाद में देखा जायेगा, अब और अधिक देर नहीं की जा सकती। चटर्जी, घोष सब मेरे रूम में आ गये हैं।'

रिसीवर रख दिया। वह आदमी मेरे चेम्बर में उसी निरीह दृष्टि से चारों ओर देख रहा था।

बोला, 'अच्छा, जा रहा हूँ, फिर भी आप एक बार याद करने की कोशिश करेंगे, शाम से रात ग्यारह बजे के बीच आप कहाँ थे। जरूरत होगी तो फिर आऊँगा। नमस्कार।'

वह आदमी चला गया। मुझे लगा कि कल रात की सब बातें उसे मालूम हैं, वह आदमी जैसे मुझको, अर्थात् मेरे अन्दर को, बिलकुल साफ देख रहा था, स्वप्न-जैसा ही, जल के तल में मरी लड़की-जैसा ही स्पष्ट। बल्कि मुझे तो ऐसा लग रहा है कि वह आदमी अब भी यहाँ से नहीं गया है, (शायद मैं स्वप्न देख रहा हूँ) मेरे सामने ही है, मेरी ओर देख रहा है।

किन्तु यह सब सोचने का समय अभी मेरे पास नहीं है, एक नई परिवर्तित रिपोर्ट के लिये सब रंगबाज बैठे हुए हैं। अच्छा तो, स्थिति कहाँ तक पहुँच गयी है, जरा रुककर सोच लिया जाय, (जैसे कि सोचकर ही कुछ किया जायगा। जो करना है वह तो करना ही होगा।) क्योंकि सब बातें मेरे सामने साफ हो जानी चाहिएँ। अभी जो परिस्थिति है, वह यह है कि हरलाल भट्टाचार्य ने (हरिनबाटा के आस्ट्रेलियन सूअर से भी अधिक कीमती) कई लाख रुपये, एक इण्डस्ट्री खड़ी करने के नाम पर आत्मसात कर लिये हैं, और उसके बारे में जाँच करके जो रिपोर्ट उचित थी, एक दायित्वशील आफिसर के रूप में मैंने वही दे दी थी। कर्ज के रुपयों की सही संख्या, काम की मियाद बहुत दिन पहले ही खत्म हो गई, काम कुछ भी नहीं हुआ, कर्ज का सब रुपया एक महीने में सूद सहित वापस देना चाहिये, और नहीं दिया तो सख्त सजा, चल-अचल समस्त सम्पत्ति को नीलाम करके कर्ज वसूल लेने का निर्देश इत्यादि, इस तरह मैंने पूरी रिपोर्ट और सिफारिश लिखी थी। मेरे ऊपर के सब अधिकारियों ने इसका समर्थन किया था, यहाँ तक कि मालिक ने भी दस्तखत कर दिये थे, जिसके बाद और कोई बात ही नहीं रह जाती है, इसीलिये जिन दफ्तरों का इससे सम्बन्ध था उनको एक दिन पहले ही यह बात बता दी गई थी। अब देखा जा रहा है कि हरलाल भट्टाचार्य इतना क्षमताशाली है कि मालिक तक का माथा झुका है, (जिसका अर्थ है कि उन्हें किसी तरह का डर-वर है, किसी-न-किसी रूप में हरलाल से उनकी नस दबती है, यानी व्यक्तिगत या दल का सर्वनाश हो सकता है, इसके सिवा और कोई कारण नहीं हो सकता; क्योंकि ऐसी बात न होती तो खुद मालिक छोड़ देने की बात कभी नहीं कहते; वे भी दाँत किटकिटा रहे हैं, और हरलाल को सूअर का बच्चा कह रहे हैं, फिर भी निरुपाय हैं, इसीलिए शायद उन्हीं के निर्देश से हरलाल से अखबारों में उद्योग पर स्टेटमेंट दिलाया गया है, जिससे भूल को सुधारा जा सके।) उन्होंने इसी क्षण भूल सुधारने के लिये एक दूसरी रिपोर्ट

तैयार करने का हुक्म दिया है। जिसका अर्थ है, हरलाल रुपये मार ले, उससे कुछ आना-जाना नहीं, बल्कि इसके लिये उसको कोई सजा देने की बात तो दूर, जल्दी में उसके नाम जो एक कलंकजनक रिपोर्ट निकल गई है, उसे भी अभी हो वापस ले लेना होगा। इसीलिये बागची कह रहे हैं—हरलाल टैलेन्टेड, जीनियस, पैट्रियट, सफरर, यानी पोलीटिकल सफरर, है, अतएव, जिस तरह बाण मारकर उसे वापस भी ले लिया जाता है, उसी तरह मुझे ही (क्योंकि मैं ही तो जाँच करनेवाला था। मैंने ही तो रिपोर्ट की है।) दूसरी रिपोर्ट लिखनी होगी (बागची की बातों से तो यही समझ पाया हूँ) बहुत ही रिग्रेट के साथ, कि मेरी जाँच की बुनियाद में ही कुछ गलतियाँ रह गई थीं, कि पूरी घटना की ही गलत रिपोर्टिंग हो गई थी। हरलाल भट्टाचार्य, (चोट्टा।) दरअसल जिसे बहुत दूर तक 'बढ़ जाना' कहते है, बढ़ गया है। अर्थात् कलंक को छिपाने के लिये जो-जो करना पड़ता है, वही करना होगा।

लेकिन मैं एक बात अचरज से महसूस कर रहा हूँ कि मैं अपने को ही नहीं पहचान पा रहा हूँ। पिछली रात भी मेरे साथ यही हुआ था, अर्थात् मैं जो अपने सुख की माँद में निश्चिन्त था, आराम से था, अब भी वहीं होते हुए भी वह सुख और आराम महसूस नहीं कर पा रहा हूँ। ऐसा क्यों है, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, और इसीलिए जो सबसे खराब लग रहा है, वह है कि मैं अपने को समझ नहीं पा रहा हूँ, ठीक से पहचान नहीं पा रहा हूँ। जो सबसे खराब है, जिसे कुत्सित स्वाधीनता कहते हैं, जो बीभत्स और भयंकर है, उसकी दरअसल कार्य-पद्धति क्या है, ठीक से पकड़ नहीं पा रहा हूँ। मेरी 'इच्छा', जो किसी दूसरी माँद में निवास नहीं कर सकती, मेरी हो माँद में, मेरी पराधीनता के सुख की माँद में हो किसी तरह रहना चाहती है, बहुत-कुछ पिंजड़े में बन्द बाघ की तरह ही। किन्तु पराधीन बाघ की हालत में होने पर भी, मेरी पराधीनता (ओ री मेरी पराधीनता, तुम कितनी सुन्दर हो।) में इतनी क्षमता है कि स्वाधीनता की बैटरी चार्ज करके रख देती है, स्वाधीनता में चूँ-चपड़ करने का भी साहस नहीं है। फिर भी वह कौन-सा गली-कूचा खोजती हुई भटक रही है, पराधीनता की दुर्बल जगहों को खोजते-खोजते कब किस जगह वह अचानक कूद पड़ेगी, मैं ठीक समझ नहीं पा रहा हूँ। पिछली रात से ही मुझको ऐसा लग रहा है कि वह सुख की माँद के दुर्बल स्थानों को खोजती घूम रही है, और जगह मिलते ही कूद पड़ेगी। *इसलिये कल रात से ही मैं यह अधिक महसूस कर रहा हूँ कि* मैं अपने को सही-सही समझ नहीं पा रहा हूँ, पहचान नहीं पा रहा हूँ। वैसे मैंने

इंटेलिजेन्स ब्रांच के आदमी से तो झूठी बातें बनाकर कह दी थीं, उस समय तो मैंने (उल्लू) किसी तरह का गोलमाल नहीं किया, यानी मेरी यह गंदी कुत्सित स्वाधीनता एकदम से फाँदकर बोल नहीं उठी, 'हाँ महाशय, नीता का खून मैंने ही किया है, क्योंकि आसक्ति और झूठ से पार पाना अब मेरे लिए और अधिक संभव नहीं था। हाँ, हाँ, आप जो कह रहे हैं, वह मैं अब समझ रहा हूँ, आप कह रहे हैं, नीता अगर मुझको नहीं चाहती थी और छल रही थी, तो उसका खून न कर मैंने उसे छोड़ ही क्यों नहीं दिया, (जैसे कि महान् नायक करते हैं और फिर कहते हैं, 'ए-हो, अगर तुम मुझको पियार नहीं कर सकती तो मैं भी तुम्हारे हृदय का भार बनना नहीं चाहता', ओह_, इन बुजदिलों को कौन समझायेगा, 'हे महत्, छोड़ तो जाओगे, किन्तुक् कहाँ जाओगे हे, चले ही जाने से क्या तुम्हारा पियार 'स्वर्गिक' हो जायगा ?') किन्तु उसे छोड़ जाना और, क्या कहूँ, मिटा देना, यानी मार डालना एक ही बात तो है। कैसे ? यही तो आपने मुसीबत में डाल दिया महाशय। इतनी बातें क्या मैं बता सकता हूँ, यानी मैं अपने को क्या इतना पहचानता हूँ ? जैसे मान लीजिये, अपने शरीर के हर अंग को ही हम कितना प्यार करते हैं, लेकिन किसी समय उसके भी किसी अंग को काट देना पड़ता है। जिस अंग के न होने से काम नहीं चलता, लेकिन रखने से भी कष्ट है, इच्छा है कि वह रहे, लेकिन वह किसी भी काम में नहीं आता, तो उसे काट फेंकना ही अच्छा है। तब मालूम हुआ कि वह अंग अब नहीं है। हाँ, उस हालत में, आप कह सकते हैं, मैं अंगहीन हूँ, लेकिन इस तरह सड़ जाने की हालत से तो, जिसे सेप्टिक कहते हैं, बचा जा सकता है; तब एक नीरोग स्थिति, तृप्ति, हाँ, आह —अब दर्द नहीं है—की स्थिति तो होती है।

लेकिन कहाँ, मैंने तो थोबड़े मुँहवाले से वह सब बातें कही नहीं। उस समय तो मैं खुद को बचाने की कोशिश कर रहा था, और अपनी माँद से ढोर सरकाते जा रहा था; तब फिर मुझको ऐसा क्यों लग रहा है कि खुद को पहचान नहीं पा रहा हूँ। पेट कनछ रहा है, लैवेटरी में जाऊँ। जाकर पेट खाली करते-करते आईने की ओर देखा, और आँख मारकर कहा, 'दोहाई, कसम से, मेरे साथ ऐसा मत करो।' यह देखो, फुल्का-पूड़ी की गैस निकल रही है, पेट ऐंठने लगा है। फोन फिर बज उठा, बजता रहे, अब मुझको जवाब देना अच्छा नहीं लग रहा है, 'बज रे साला, बज,' कहकर आईने की ओर फिर देखा। फोन का बजना बन्द हो गया, मैं अपनी प्रतिच्छाया की ओर ही देखता रहा, और पूछा, 'अच्छा, तुम्हें सच-सच क्या हो रहा है, मुझसे एकबार बताओ तो।' 'कुछ भी नहीं ? 'किच्छूई नाई',' कहकर एकबार मुँह बिचका दिया। सोचा,

बिचकाकर हँसूँगा, मगर उसके पहले ही टेबुल पर ठक ठक की आवाज हुई। पीछे की ओर देखा, (लैवेटरी का दरवाजा-खुला ही था) बागची, चटर्जी, घोष तीनों आदमी मेरी टेबुल को घेरकर खड़े है, और मेरी ही ओर देख रहे हैं। तीनों की नजरों में क्रोध के साथ-साथ अचरज भी भरा है। मैंने पीछे की ओर मुड़कर बटन बंद किये, और फ्रश चलाकर बाहर निकल आया।

बागची, यानी चीफ, छूते ही धमकी के स्वर में बोले, 'इसका मतलब क्या है ? बेयरा ने बताया कि वह आदमी काफी पहले ही चला गया है, फिर तुम आये क्यों नही ?'

चटर्जी ने कहा, 'आपका बचपना नहीं गया अभी तक, काम का महत्व नहीं समझते।'

घोष ने कहा, 'सिट डाउन, सिट डाउन, यहीं बैठा जाय, यहीं बातें खत्म कर ली जाँय, दूसरे कमरे में जाने की जरूरत नही है। बेयरा से कह दिया जाय कि फिल्हाल इस कमरे में कोई न आये, और कोई खोज करे तो बता दे कि फिलहाल हम चारो व्यस्त हैं।'

कहकर घोष ने मेरी ओर देखा, अनुमति के लिये नहीं, इसलिए कि बेल दबाकर बेयरा से मैं ही कहूँ, जब कि मैंने अपने अंदर ऐसा कोई आसार नहीं देखा। क्योंकि ये तीन आदमी, जिनकी धारणा है कि वे मेरे सुपीरियर और बॉस हैं, उनके काम के 'महत्व' और 'व्यस्तता' (खूब ही काम की चिन्ता है न आपको, मेरे भाई रे !) की भावना मुझमें किसी भी तरह की हरकत नहीं पैदा कर पा रही है। मेरी ऐसी हालत देखकर चीफ की भौंहें सिकुड़ गईं और उनके माथे पर अँग्रेजी का जेड अक्षर उभर आया। चटर्जी अचरज में पड़ गये और साथ ही उनके चेहरे पर 'क्रोध की अभिव्यक्ति' फूट पड़ी। एकमात्र घोष ही अचरज या क्रोध में नहीं आये, मेरी धारणा है, वे कुछ-कुछ समझते हैं, क्योंकि मेरे साथ एक टेबुल पर एक-आध कुल्हड़ चढ़ा लिया करते हैं, (इसे हो लिबरल कहते हैं, क्योंकि आखिर उम्रदराज सुपीरियर जो हैं !) यह बात चीफ बागची या चटर्जी नहीं जानते, हालाँकि घोष के साथ मेरा अच्छा सम्बन्ध है, यह वे भी जानते हैं। आखिर घोष ने कहा, 'कुछ नहीं, लड़का कुछ इसी स्वभाव का है।' फिर उन्होंने बेयरा को बुलाकर खुद ही निर्देश दिया, और फिर कहा, 'आप लोग बैठें, काम शुरू किया जाय। बैठो भाई, अब और देर नहीं।'

कहते-कहते हो उन्होंने एक आँख को छोटाकर मेरी ओर स्नेह और डाँट-फटकार की दृष्टि से देखा, और साथ-ही-साथ आश्वासन में गर्दन भी हिलायी, (बैल कहीं का ! प्यार में—) जिसका अर्थ है, शायद आज मेरे साथ एक-

आध कुल्हड़ चलेगा। वे तीनो बैठ गये, मैं भी बैठ गया। बागची ने इस लघु क्षण की अवधि में ही सोचकर मेरे व्यवहार के कारण का पता लगाने के लिये पूछा, 'इन्टेलिजेंस ब्रांच का अफसर तुम्हारे पास क्यों आया था ?'
इस बात को घोष या चटर्जी मे से कोई नही जानता था, वे अवाक् हो गये, सिर्फ अवाक् नही, कुछ भयभीत भी हुए, क्योकि सभी तो एक ही थैली के चट्टे-बट्टे, पक्के चोर और घूस-खोर हैं। इसीलिये चीफ ने मुझसे अपने कमरे में पहले ही पूछा था, 'पिछले दो-एक दिन में तुमने कोई 'बिजनेस' किया है क्या ?'
मैंने कहा, 'एक खून की खोज-खबर लेने आया था।'
'खून ?'
तीनों आदमी जैसे घबड़ा-से गये। मैंने फिर कहा, 'हाँ, ऐसा ही तो कह रहा था।'
'किसका, कहाँ ?' तीनो मेरी ओर ऐसे लपके जैसे मजा आ रहा हो; ऊपर से भय का भाव भी उनमें है, लेकिन असल में भय उन्हे बिलकुल नहीं है, क्योकि वे जानते है कि उन्होने किसी का खून नही किया है।
'नीता का, उसके एपार्टमेंट में,' बात को इस तरह सीधे कह देना ही ठीक होगा, और वही कहने जा रहा था कि हठात् मुझे याद आ गया, कोहनी जब गले पर बैठ गयी थी तो वह किस तरह देख रही थी, वही सब मुझे याद आ गया; याद आ गया कि उसके दाँत बैठे जा रहे थे, साँस लेने के लिये नाक फूल रही थी, (उन तीनो आदमियो को मैंने जवाब दिया, 'एक लड़की का, उसके घर में।') और आँखों की दोनो पुतलियाँ बड़ी होती जा रही थी, जैसा कि भीषण आश्चर्य और भय के समय होता है, और वैसी ही हालत में उसने मुझसे कहा था, 'यह क्या, मुझको सच ही मार दे रहे हो क्या ?' और उसके भिंचे दाँत घृणित रूप में बाहर निकल आये थे, और उसके बाद धीरे-धीरे दाँत पर से दाँत हट गये थे, जैसे किसी असहनीय कष्ट से चेहरा फक् होता जा रहा था······अच्छा, मैंने क्या सच ही उसको मार डाला है ? बाह, अच्छा, मुझे क्या कोई कष्ट था, बहुत दिनो का कोई कष्ट, या वह क्रोध······।
'कौन लड़की थी ? तुम्हारी कोई परिचित थी क्या ?'
कारण, मैं उस समय सचमुच जान ही नही पाया था कि मैं नीता को मार डाल रहा हूँ, क्योकि तब मुझको कैसा तो लग रहा था, मैं जैसे किसी से कह रहा था, 'नही, नही, अब मुझको पीछे की ओर मत पुकारो,' लेकिन वह नीता को मार डालना, ('हाँ, मेरी परिचित थी, यानी मित्र, यानी···' उन तीनो को मैंने जवाब दिया।) क्या मैं सचमुच यह जानता था ? यहाँ तक कि, जब उसने मेरे पेट

के पास पजे से पकड लिया था, इतनी शक्ति से जैसे वह भी मुझे मार डालना चाहती थी, तब भी जैसे घृणा और क्रोध में एक युद्ध हो रहा था। लेकिन, अच्छा, पेट के पास पकडना क्या असल में भीषण कष्ट के समय किसी भी चीज को पकड लेना जैसा ही नहीं था क्या, क्योंकि उसके दोनों हाथ तो उस समय मेरे शरीर के नीचे इस तरह दबे थे कि मेरी कोहनी हटाने के लिये अपने गले के पास हाथ ले आना उसके लिए सम्भव नही था। लेकिन बात वह नहीं • •।

'कौन थी वह, नाम क्या है ?'

बात दरअसल यह है कि नीता के पास जाने के लिये, ('नीता राय,' उन लोगों को जवाब दिया।) सिर्फ जाने के लिये पाँव उठाना ही क्यो, उसके मरने के समय की निश्वास की गध भी मुझे याद आ रही है, और उसकी साँसों की गध के लिये ग्रीष्म ऋतु की धरती की तरह मेरी छाती फटी रहती थी, उसी नीता को मैंने मार डाला है।

चीफ बागची बोल उठे, 'ओ, देयर इज दी कॉज, यानी तुम शॉक्ड हुए हो। लेकिन यह बताना तो चाहिये न।'

मुझे यही बात सुनाई पडी, और उसके बाद उन्होंने आपस में ही क्या बातें की, मैं समझ नही पाया। लगा, मैं आफिस में नहीं हूँ, और कहाँ हूँ, यह भी नहीं जानता, लेकिन मुझे यह जरूर महसूस हो रहा है कि उसी अपरिचित जगह से किन्हाल मैं आफिस में, यानी अपने चेम्बर में घुसना चाहता हूँ, और यह कोशिश फलीभूत होते-न होते ही त्रिमूर्ति मेरी आँखों के सामने स्पष्ट हो उठी, और इस बार मुझे चीफ की बात साफ सुनाई पडी, 'हाँ, मैं तो डिनाई नहीं कर रहा हूँ, आघात लगना बिलकुल स्वाभाविक है। लेकिन किया ही क्या जा सकता है, मनुष्य का जीवन •।'

चलो, ठीक है, मैंने इन्हें इग्नोर नही किया, दरअसल मैं 'आघात से अस्त-व्यस्त' हो गया हूँ, यह जानकर (यूरेका! यूरेका!) तीनो मद खूब खुश है, सिर्फ यही नहीं, सम्वेदना से उनका चेहरा बगला के अक पाच की तरह लटक गया है। यहाँ तक कि (कुरबान जाऊँ!) सान्त्वना भी दे रहे हैं, 'मनुष्य का जीवन! अहा, जो जीवन बेदाग घूस का एक स्वर्ग है, ऊँचे पद पर बैठ-कर, धीरे-धीरे मजे उडाते चलना, लोगो को उपदेश देना (वास्तव में दुनिया रसातल को जाय, कुछ नहीं बिगडता, अपने सुख के लिये सब करते जाओ।) —'आशावादी बनो, दुःख तो है ही, तब भी ईश्वर का देय तो देना ही है,' और भी इसी तरह की सान्त्वना, (बडी व्यथा है।) 'मनुष्य का जीवन •।'

मनुष्य का जीवन, कहें कि हृदयंगम कर ही, एक दीर्घ निःश्वास छोड़, चीफ ने फिर कहा, 'लेकिन यह जरूरी काम पहले पूरा करना ही होगा। कोई उपाय नहीं। मेरी राय में तुम इस तरह रिपोर्ट लिखो कि पहली पूरी रिपोर्ट ही गलत थी, जिसकी वजह से हरलाल भट्टाचार्य के बारे में एक गलत धारणा पैदा हुई है; कुछ दुःख-दुख प्रगट करके कहना होगा कि हरलाल भट्टाचार्य एक महान् कर्मठ व्यक्ति है, उनका कर्म-क्षेत्र इतना विस्तृत है कि एक बड़ा काम इतने कम समय में पूरा करना उनके लिये मुश्किल है। इसीलिये कुछ रांग इनफोरमेशन के कारण तुम्हें त्रुटिपूर्ण रिपोर्ट देनी पड़ी। ह्वाट डू यू थिंक ?'

बागची ने घोष और चटर्जी से पूछा। घोष ने कहा, 'हाँ, इसके सिवाय इसे और किस तरह बीड़ा किया जा सकता है ?'

चटर्जी ने कहा, 'सिर्फ यही नहीं, संभव हो तो हरलाल के टिटेल वर्क का एक सूचीपत्र भी दिया जा सकता है।'

मैंने कहा, 'मतलब, इमेजिनरी।'

'यही समझ लो। सुना है, खुद रूबी दत्त ने ही मालिक को यह रास्ता सुझाया है।' जा, तब तो 'जाँबाज स्त्री' इसमें कूद पड़ी है। पड़ेगी ही, खूब ही स्वाभाविक है, मालिक उसके प्रेमी जो हैं, मुसीबत आने पर वही राय दिया करती है। उसे निश्चय ही हरलाल भट्टाचार्य ने पकड़ा है, या सीधे मालिक को ही कोई भय दिखाया है, जिससे वह लड़खड़ा गये हैं, और गिरने की एकमात्र जगह तो रूबी दत्त की ही गोद है, तभी उसने यह सब राय दी है।

बागची ने हठात् कहा, 'वट दैट चैप, दैट ग्रेट ब्लन्डरर हरलाल, अब उसे जीनियस, सफरर जो कहा जाय, लेकिन यह कई लाख उसने किसमें फूंक डाले, मैं समझ नहीं पा रहा हूँ।'

'और इसका हिसाब भी किसी दिन नहीं मिलेगा।' चटर्जी ने कहा और तीनों कुछ देर तक इस तरह बैठे रहे, जैसे उनकी पाकिट मारी गई है, मतलब यह कि इतने रुपयों में से उन्हें कुछ भी हिस्सा नहीं मिला, बल्कि उसी को बचाने की बात सोच-सोचकर मरना पड़ रहा है। ठीक जैसे तीन शोक-मग्न चेहरों की शोक-संतप्त नजरों के सामने कई लाख जीवन्त रुपये फड़-फड़ कर रहे हैं, जब कि वह मर चुकी है, (अहा, यदि जिन्दा होती !) अब कोई आशा नहीं। लेकिन मैं सही-सही क्या कहना चाहता हूँ, समझ नहीं पाता और किसी भी तरह अपने को पहचान नहीं पाता, प्रायः मैं भूल ही गया कि मेरे कमरे में और भी तीन आदमी हैं, और सब एक क्राइसिस के लिये लड़ रहे हैं।

बागची ने कहा, 'जो हो, सारी बातों को मन में सजाकर, स्टेनोग्राफर बुला एक

रिपोर्ट तैयार कर डाले, जिससे आज ही सब ठीक किया जा सके।'
और मैंने अपने ही मुँह से निकली आवाज सुनी, 'न्हो, रिपोट जो होनी थी, हो गई है, फिर नये सिरे से कुछ करने की दरकार नहीं है।'
यह आवाज सुनने के साथ ही, मुझे पिछली रात की बात याद आ गई, जब मैंने नीता के गले पर कोहनी दबा दी थी, अर्थात् वही वीभत्स जानवर, जिसका नाम स्वागोनना है, जैसे वही कुत्सित गन्दगी बोल उठी हो। वे तीनों प्राय एक ही साथ बोल उठे, 'इसका मतलब ?'
'इसका मतलब कि मुझसे यह नहीं होगा।'
जो आवाज मेरे गले से निकली, उसके लिये कोई तर्क-सगत कारण मेरे पास नहीं है, और मुझे लगा, जैसे नीता ने मेरे पेट के चमड़े को जकड़कर पकड़ लिया था, उसी तरह उन तीनों की आवाज 'इसका मतलब, के सिंह-स्वर ने मेरी छाती, हाँ ऐसा ही लगा, छाती के बीच पकड़ लिया है और उससे छुटकारा पाने के लिये ही 'इसका मतलब कि मुझसे यह नहीं होगा,' मेरी यह बात, नीता की गरदन में कोहनी धँसने की तरह धँस गई। फिर भी मुझे ऐसा नहीं लगा कि मैं अपने सुख की जीविका को हत्या यानी खून कर रहा हूँ। ऐसा मुझे इसलिये नहीं लगा कि मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या कह रहा हूँ, फिर भी मुझे मानना पड़ेगा कि मैं एक शांति महसूस कर रहा हूँ।
बागची चीख उठे, 'तुम इसका नतीजा जानते हो ?'
'जानता हूँ।' खून जो कर डाला है, उसके बारे में ठीक से न जानने के बावजूद उसके बाद की मेरी हालत मेरे सामने स्पष्ट है—मेरा सजाया हुआ जीविका का सुन्दर घर टेबुल, फाइल, आल्मारी—सब मृत पड़ी हैं। ऐसा ही होता है या नहीं, मैं नहीं जानता, लेकिन देख रहा हूँ कि हो रहा है यही, और इसके लिये मैं क्या कर सकता हूँ।
चटर्जी ने कहा, 'सवेरे-सवेरे ही पी ली है क्या, जैसी कि आपकी आदत है ?'
मैंने कहा, 'नहीं।' (खच्चड़ बुड्ढे, तीसरी पत्नी के सामने छोकड़ा बनने के लिये तुम्हारी तरह मकरध्वज और मोदक नहीं खाता।)
घोष ने कहा, 'अच्छा, तुम्हारे मन में यह तो नहीं है कि हम लोगों ने हरलाल से रुपया खा लिया है और मामला तुम्हारे हाथों रफा-दफा करा रहे हैं ?'
'नहीं।'
'फिर ?' बागची झल्ला गये, 'तुम किस साहस से कह रहे हो कि तुमसे यह नहीं होगा ?'
सचमुच नहीं जानता कि मैं किस साहस से कह रहा हूँ। लेकिन यह समझ रहा

हूँ कि कोई मुझको मेरी माँद से बाहर निकाल दे रहा है, जिसका अर्थ है, (अरे साला !) मेरा घर ही ढहता जा रहा है, जिसे आश्रय कहते हैं, वहीं से ही मुझको निकल जाना होगा, तो मैं रहूँगा कहाँ, बैठूँगा कहाँ, खड़ा कहाँ होऊँगा, वही तो नही समझ पा रहा हूँ। अर्थात् मेरी माँद में जो हैं, जिन्होने वहाँ मुझे पकड़ रखा है, अगर वही वहाँ से निकल जायँ, तो मेरे लिये कौन-सा दरवाजा रह जायगा।

चटर्जी ने कहा, 'मुझे लगता है; आप मामले के महत्व को अभी नहीं समझ पा रहें हैं, अभी आप बचपना कर रहे हैं, किन्तु सब समय ऐसा करने से कही काम चलता है। आपसे जो कहा जा रहा है, वही करते चलिए।'

घोष ने कहा, 'हाँ, तुमको तो मैं बहुत ही प्रतिभाशाली समझता था, कम उम्र में ही तुनने इतनी उन्नति की है, तुम्हारे सामने उज्ज्वल भविष्य है। तुम्हारे कामों से सब मालिक खुश हैं, तुमसे तो हठात् इस तरह आशा नही की जा सकती।'

बागची भौंहें सिकोड़कर मेरी ओर देख रहे थे, जिसका अर्थ है कि उनका अब भी यही दृढ़ विश्वास है कि मैं जो कह रहा हूँ, कार्य रूप में उसे कभी नहीं कर सकता। और शायद यही सोचकर उन्होने कहा, 'आजकल के लड़कों की मति-गति समझना सचमुच कठिन है। इनकी वजह से देश डूब रहा है। ये क्या कहते हैं, क्या करते हैं, कुछ पता नही चलता। इनमे थोड़ा-सा भी रेस्पेक्ट नहीं, विनम्रता नही। समझते हो छोकड़े, यह तुम लोगों की पोशाक-वोशाक, चाल-चलन जो है, ऑल इररेस्पोन्सिबुल,......खैर जो हो, समय बहुत बीत गया, अब और अधिक देर नही की जा सकती।'

'हाँ,' मैंने मन-ही-मन कहा, 'हमारी ही वजह से, हम छोकड़ों की ही वजह से देश डूब रहा है, और घाघो, तुम लोग स्वर्ग का निर्माण कर रहे हो। देश के लोग तुम लोगों को पहचानते नही। सब दोष छोकड़ो की पोशाक-वोशाक का है, और तुम लोगो की भद्र और शालीन पोशाक के नीचे सब सही है, और यह 'न्याय का सुन्दर राज्य' तुम लोग ही चला रहे हो। हम सब किसके पुत्र हैं और तुम सब किसके बाप हो, वह सब तुम नही जानते। हम सब भूमि फाड़कर निकले हैं, कुरबान जाऊँ।'

चटर्जी ने हँसकर, (वाह, साला हँसता है, सफ़ेद चमकते दाँत, जो निश्चय ही बहुत कीमती हैं, घूस खाते समय निकल जाते है या नहीं, कौन जाने !) आँख नचा, (इतने दिनो के बाद समझा, यह आदमी बीबी से किस तरह बात करता होगा।) कहा, 'उसके बाद आप जो सोच रहे हैं, वही होगा, यानी हरलाल भट्टाचार्य ने प्रोमिज किया है कि वह देगा, मोटी रकम भी देगा, जिसका

फल मुफस्सिल में कई कट्ठा जमीन होगी, समझे ?'
घोष ने कहा, 'यह भला ऐसा कहाँ करेगा ? भविष्य के लिये कुछ करने की अपेक्षा, यह दूसरी जगह जाकर सब खर्च कर बैठेगा।'
जानता हूँ, घोष मुरा और सुन्दरी की बातें कह रहे हैं। उनका खयाल है, मैं उनका रेस्पेक्ट करता हूँ, (पीठ पर लात मारूँगा।) इसीलिये वह सब (गदी) बातें खोलकर मेरे सामने उन्होंने नहीं कहीं। मैंने कहा, 'आप ही में से कोई बीड़ा कर ले न।'
तीनो ने ही क्रोध में आँखें लाल कर (बच्चे पर शासन किया जा रहा है।) मेरी ओर देखा, और बागची फिर भड़ाकर बोले, 'हम क्यो करें ? तुम्हारा केस है, तुम्हीं बीड़ा करो।'
'मुझे जो कहना था, वह आप सबों से कह दिया है।' मैंने शात भाव से ही कहा, क्योंकि मैंने अपना काम बहुत पहले ही पूरा कर दिया था और अब मैं बहुत कुछ, जिसे कहते हैं शान्ति, महसूस कर रहा हूँ, मैंने सिगरेट का पैकेट निकाल लिया, और अपनी चाकरी-जीवन की सम्पूर्ण अवधि में आज तक जो नहीं किया था, आज वही किया, यानी सिगरेट निकालकर होंठ से लगाते-लगाते कहा, 'इफ यू ऑल परमिट मी, प्लीज'—उसके बाद तिल्ली जलाकर सिगरेट सुलगा ली। नीता को मार डालने के बाद भी मेरा बहुत समय इसी तरह गुजरा था। जो कुछ मैंने कर डाला था, उसे ठीक ठीक न समझ पाने के कारण, इसी तरह एक प्रशान्त खुमारी में मैं काफी देर तक सिगरेट पीता रहा था, उसके बाद क्या होगा, क्या नही होगा, (जैसे कि हत्या के सब चिह्नों को मिटा देना आदि) वह सब कुछ भी दिमाग में नहीं आ रहा था।
चटर्जी बोल उठे, 'क्यों, हठात् आपको यह क्या हो गया है ? चोरी, जुआचोरी, फरेबबाजी आपके लिये नई है क्या ? घूस लेने के लिये बहुत-सी फाइलें आपने उलट-पलट दी हैं।'
मैंने भर गाल धुआँ छोड़कर कहा, 'अब और अच्छा नहीं लगता।'
बागची चेयर पर बैठे क्रोध में काँप रहे थे। घोष ने कहा, 'कोई पॉलिटिक्स तो तुम्हारे दिमाग में नहीं आई है ?'
'अरे नहीं, इस दिमाग में खच्चड का दाँत नही है।'
लगा, खच्चड शब्द ने उन लोगों को विशेष रूप से आहत किया, इसीलिये तीनों ने कुछ अवाक् होकर मेरी ओर देखा, शायद सोचा, मेरा दिमाग खराब हो गया है क्या ? अगर वे ऐसा सोचते है तो मुझे कुछ भी नही कहना है, क्योंकि मैं अपना अन्दर उनको दिखा नहीं पाऊँगा कि वहाँ क्या-क्या हो रहा है, कि मेरा

स्वाधीनता नामक जो जघन्य जीव है, जिसने मेरे सुख की माँद के साथ, लोगों के साथ, दफ्तर के साथ, कौन जाने पूरे देश के साथ ही नहीं क्या, विश्वासघात कर बैठा है, उसे समझने की शक्ति मुझमें सचमुच नहीं है।
बागची एक वीर-पुरुष की तरह उठ खड़े हुए, (इस तरह करना उचित नहीं है, बेटे, प्रेसर फट पड़ेगा) टेबुल पर हठात् एक मुक्का मारकर उन्होंने कहा, 'यू, यू डोंट थिंक, दैट—कि तुम नहीं करोगे तो यह पड़ा रहेगा। हम अच्छी तरह ही इसको मैनेज कर लेंगे। लेकिन तुम याद रखो, तुमको मैं स्पेयर नहीं करूँगा, किसी भी तरह नहीं,—तुमको—तुमको—।'
मैंने कहा, 'भगाकर छोड़ेंगे।'
'यू विल सी दैट। आइये आप लोग।' बागची खट-खट करते बाहर निकल गये। बाकी दोनों कई क्षण तक अवाक् हो देखते रहे, जैसे इस घटना पर अब भी वे विश्वास नहीं कर पा रहे हैं। उनकी आँखों में भी खून कर डालने की इच्छा जग उठी है, ऐसा मुझे लगा। 'इच्छा' अर्थात् जिसे स्वाधीनता कहते हैं, उससे मेरी तरह उन्हें भी भय लगता है, अतएव ताकते रहना ही एकमात्र रास्ता है। कारण, मेरा अनुभव है कि 'इच्छा' या 'स्वाधीनता' इस तरह के कामों में नहीं कूदा करती, पराधीनता का सुख जहाँ बिना बाधा के माँद में वास करता है, वहाँ उस सुख को बनाये रखने में स्वाधीनता का कोई हाथ नहीं होता, यहाँ तक कि उस माँद में उसका कोई अस्तित्व है, यह भी समझ में नहीं आता।
उन दोनों के बाहर निकल जाने से पहले चटर्जी ने पूछा, 'केस के कागज-पत्र, इन्वेस्टीगेशन की रिपोर्ट, सब कहाँ हैं?'
यहीं आलमारी में है, लेकिन मैंने (गदहे के बच्चों से) कहा, 'वह सब घर पर हैं।'
'वह सब तो आपको ला देना होगा।'
'देखा जायगा।'
'मतलब कि आप वह सब रोक लेना चाहते हैं?'
जानता हूँ, वह सब रोककर भी मैं कुछ नहीं कर पाऊँगा, आफिस की बात कानून के अनुसार बाहर खोलकर नहीं कह सकता। अगर खोल भी दूँ तो अखबारों में जिसे 'सनीसनीखेज पर्दाफाश' कहते हैं, जैसा कि चटर्जी सन्देह करते हैं, उससे भी कोई लाभ नहीं होगा। इसीलिये कि ऐसा 'सनसनीखेज पर्दाफाश' अब तक बहुत हुआ है, और भी होगा, यह भी लोग जानते हैं, लेकिन किसी का कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। जैसे मेरे लिये बीड़ा रुका नहीं रह सकता, खूब अच्छी तरह

ही होगा, बागची ने झूठ नहीं कहा था। फिर भी मैंने कहा, 'सोच नहीं पा रहा हूँ।'
दोनों ही चले गये। बागची ने अब तक मेरे पितृदेव को खबर दे दी है, (दोनों में मित्र-भाव है न) इसमें कोई सन्देह नहीं, इसीलिये अभी हो सब सोच-सोचकर फैसला कर लिया जाना चाहिए, मैं अब कोई भी टेलिफोन नहीं पकड़ूँगा, बेयरा ही पकड़ेगा, कह देगा, 'साहब कमरे में नहीं हैं।'
बेयरा को बुलाकर यह बात मैंने बता दी, और देखा, उसकी आँखों में, जिसे विस्मय कहते हैं, वही है। फिर भी उसे प्रगट करने का साहस उसमें नहीं है। लेकिन उसने कुछ-कुछ अनुमान तो लगाया ही है, सब बातें उसने सुनी भी हैं, इसलिये बहुत-कुछ समझ भी गया है।
मैंने दूसरे कागजों में मन लगाना चाहा, लेकिन हो नहीं सका, क्योंकि यह भी नीना की मृत देह में उतार खोजने को चेष्टा जसा ही था। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नौकरी की मैंने हत्या कर डाली है, बागची मुझको स्पेयर नहीं करेगा। और बागची जो कहता है, उसे खुद मालिक का हुक्म समझना चाहिए, और मालिक से लड़कर यहाँ नौकरी बचाये रखना, चिन्ता की आग में जिन्दा रहने की कोशिश जैसा ही है, अतएव कहना होगा कि मैंने मार ही डाला है, और सच कहने में क्या लगा है, पिछली रात नीना को मार डालने के पहले भी मैंने जिस तरह मन-ही-मन उसे कई बार मार डाला है, उसी तरह इस नौकरी को भी इसके पहले मन-ही-मन कई बार मार डाला है, जो मुझे दिवाल जैसी लगती रही है, अर्थात् कर्म की अच्छाई और जन-सेवा आदि बातें जब मुझको फालतू लगी थीं, तभी इसे भी कई बार मन-ही-मन मार डाला है, लेकिन इस पर सचमुच हाथ उठाने का साहस इसलिये नहीं हुआ था, क्योंकि मेरी माँद में सुख के बीच यह जमकर बैठी थी, मेरी पराधीनता की यह अन्तरंग थी। महीने में मात्र चार-पाँच दिन होने पर भी नीना का ससग जैसा सुख देता था (सुख! मैं नहीं जानता, मैं न-हीं-जा-न-ता, शायद यह तब की बात है जब मैं बाईस या तेईस वर्ष का था, मैंने नीना के पाँवों पर अपना चेहरा रख दिया था और नीना अचानक रो पड़ी थी, उसने कहा था, 'नहीं, नहीं, तुम कभी सच नहीं बोल सकते, मुझको भी कभी सच नहीं बोलने देते'—उस वक्त उसने यह बात क्यों कही थी, मुझे याद नहीं, लेकिन वह बहुत रोई थी, उसके बाद मेरे केसों को हठात् मुट्ठी में पकड़कर खींचा था, फुसफुसाकर कहा था, 'तुम झूठे हो, तुम कह नहीं सकते कि तुम सिर्फ मेरे साथ एक घर में रहना चाहते हो? तुम भी वही-वही-वही—लम्पट

कहीं के ! निकल जाओ मेरे घर से,' यही कहा था नीता ने, लेकिन साथ ही रो भी रही थी, मेरी देह पर पड़ी मेरे केस खींच रही थी, और कह रही थी, 'सुखखोर, सब सुखखोर हैं'—किन्तु यह सब बातें इसी समय मुझको क्यों याद आ रहा हैं ? 'सुखखोर' कहा था, क्या इसीलिए ? और क्या इसीलिये मैं इस समय नीता के संसर्ग-सुख की याद कर रहा हूँ ?) यह नौकरी भी उसी तरह थी, बल्कि नीता के लिए मेरे मन में जो एक घृणा और अनासक्ति थी, आश्चर्य, नौकरी के लिये भी यही बात थी।

शीत ऋतु की शाम, पाँच बजे जब बाहर आया तो अंधकार हो गया था। मेरी सोचने की शक्ति इतनी शून्य लग रही थी, कि सोचने के कष्ट से बचने के लिए, जितना जल्दी हो सका मैं एक शराबखाने में घुस गया और ह्विस्की माँगी। ह्विस्की का गिलास जब आ गया, तो देखा कि मेरे सामने की टेबुल पर एक आदमी आकर बैठ गया है। देखते ही मैं पहचान गया—यह तो वही माल था, थोबड़े मुँहवाला इंटेल्जेंस ब्रांच का इनवेस्टीगेटर। उसने कहा, 'आपको यहाँ प्रवेश करते देखा, इसीलिये मैं भी चला आया।'
'अच्छा किया, थोडी चलेगी ?'
'नहीं, नहीं, वैसे ही ठीक हूँ, यह सब मुझे रास नहीं आता, जनाब। आपको आफिस में कई बार फोन किया था, किन्तु हर बार सुना, साहब नहीं हैं।'
गिलास से घूँट भरते हुए मैंने कहा, 'हाँ, बेयरा को यही कहने का हुक्म दे दिया था, लोग बहुत परेशान करते हैं।'
थोबडा मुँहवाला कुछ अचरज में पड गया, बोला, 'तो आप कमरे में ही थे ? ताज्जुब, आप एक व्यस्त अफसर है, आपको हर समय जनता को देखते हुए चलना पडता है, और इस तरह फोन रिसीव किये बिना आप बैठे रह सकते हैं !'
'आपने देख तो लिया, रह सकता हूँ।' (बोलो, अब क्या कहोगे, मेरे चाँद, अब टलो यहाँ से। थोडी शान्ति से बैठने आया था यहाँ, सो यहाँ भी आ गये उपदेश देने।)
थोडी देर उसी बाल-सुलभ नजरों से मेरे चेहरे की ओर देखते रहना और फिर प्रश्न, 'आप याद नहीं कर पाये, उस समय कहाँ थे ?'

मैंने फिर खुद को देखा, महसूस किया कि फिर उसी माँद में प्राणपण से घुसने की चेष्टा में हूँ, वहीं से कहा, 'नहीं, कौन जाने, शायद यहीं रहा होऊँ।'
'नहीं, यहाँ तो नहीं थे, इस बारे में मैंने पता लगा लिया है। करीब ६ बजे आप और एक अन्य आदमी 'रंजन बार' में थे।'
बात झूठ नहीं है, देख रहा हूँ, बहुत-सी खबरें संग्रह कर ली हैं। तब मेरे ही मुँह से सुनने की क्या जरूरत है बाबा, खुद ही खोज कर पता लगा लो न। बेटा कष्ट नहीं उठायेगा, खूनी को पकड़ेगा, तनख्वाह मारेगा, लेकिन सिर्फ यही सोचने से तो नहीं होगा ? कहा, 'सच, तो हो सकता है।'
उस आदमी ने फिर कहा, 'कल दस के बाद, या उसके आस-पास, आप 'मारियाना' मिडनाइट-बार में गये थे।'
वाह, शराबखाने की खबर तो आदमी ने सही-सही पा ली है, टू दी पाईंट। कहा, 'हो सकता है। यही तो करता हूँ, जनाब !'
'किन्तु, सच, आप-जैसा एक जिम्मेदार अफसर, यंग मैन, रेस्पेक्टेबुल बड़े घर का लड़का, अगर शाम से ही इस बार से उस बार घूमता फिरे, तो अच्छा नहीं लगता।'
'किसके लिये अच्छा लगता है, बता सकते हैं ?'
'और चाहे जिसके लिये हो, लेकिन आपके लिये नहीं। बड़े-बड़े होटल फिर भी ठीक हैं, जहाँ आमलोगों का आना-जाना अधिक नहीं होता, या फिर अपने किसी निजी अड्डे—'
'आप कलकत्ते के टॉप ग्रेड के लोगों की बात कह रहे हैं तो ? मुझसे भी जो अधिक जिम्मेदार हैं, जिन्हें भोर में होटल से लादकर गाड़ी में रख दिया जाता है। लेकिन मैं उतना बड़ा नहीं हूँ। आप जिनकी बात कर रहे हैं, मैं उन जैसा रईस नहीं हूँ कि पेरिस या न्यूयार्क तफरीह करने जाऊँ। सच कहने में क्या लगा है, रोज रात में शराब और लड़की के पीछे रुपये खर्च करने की मेरी एक सीमा है, सो आप निश्चय ही समझते होंगे। जो करता हूँ, वह सब रिश्वत के रुपये से ही तो।'
'रिश्वत ? तो आप रिश्वत भी खाते हैं ?'
'आप नहीं खाते ?'
'आपकी बातें बहुत खराब हैं। किसी अफसर के मुँह से ऐसी बातें मैंने कभी नहीं सुनी।'
'हो सकता है। अभी आप मुझको जरा शांति से रहने दें।'
'शांति आपको है भी ?'
'आपसे अधिक ही है।'

जो हो, कल शाम ६ से १० के अन्दर कहाँ थे, जरा याद कीजिये।'
'आपसे तो पहले ही बता चुका हूँ, याद नहीं आ रहा है।'
'तो इसका अर्थ है कि आप अपनी एलिबी प्रमाणित नहीं कर पा रहे हैं।'
'नहीं, इस बारे में मुझे कोई चिन्ता-फिक्र नहीं है।'
'आप जानते हैं, आपको गिरफ्तार किया जा सकता है।'
'करें, अगर उस खून का सधान मिल जाय तो, निश्चय ही करें।'
'किन्तु आप एक अफसर—'
'कानून की निगाह में क्या इसका कोई महत्व है ?'
वह आदमी चुप रहा, मैंने फिर कहा, 'अच्छा, आपसे एक बात पूछ सकता हूँ ?'
'जरूर।'
'अच्छा, आप बता सकते हैं, मैं, आप, हम सब जेल से बाहर क्यों है ?'
'मतलब ?'
'मतलब कि, क्या हम सभी बदमाश नहीं हैं ? आप लोगों की नौकरी तो, कहते हैं, समाज के अपराधियों को पकड़ने की है, लेकिन आप क्या सचमुच उन्हें पकड़ते हैं ? इस तरह की आजादी क्या आपको दी गई है ? क्या आप दावे के साथ कह सकते हैं कि आपने कभी कोई अपराध नहीं किया है, जैसे मान लीजिये, मैं रिश्वत खाता हूँ, उसी तरह क्या आप कह सकते हैं कि आप सविधान और कानून के अनुसार चलते हैं ? हम तमाम लोगों को देखकर क्या ऐसा लगता है ? इस देश को देखकर, और इस देश के इन्सानों की हालत को देखकर क्या ऐसा लगता है ? अगर ऐसा नहीं है, तो हमारे और आप जैसे लोगों की तरह ही, हमसे बड़े-बड़े लोगों से क्या जेलखाना नहीं भर जाना चाहिये ?'
मैंने अब पहली बार उस आदमी की लाल जीभ देखी, उसने होंठ चाटे, (पाक-स्कॉच सचमुच अच्छी है।) कहा, 'आपको, लगता है, नशा चढ़ गया है।'
'नहीं भी चढ़ा हो, तो अब चढ़ जायेगा।'
'तो मैं चलूँ, याद करने की कोशिश करेंगे।'
'हाँ, जाइये।'
साले ने पहचाना है ·। कई पेग पीने के बाद बाहर निकलने का जी करने लगा, लेकिन जाऊँ कहाँ, यही नहीं सोच पा रहा हूँ। और आश्चर्य, आज यहाँ किसी परिचित दोस्त को भी नहीं देख रहा हूँ। प्राय अनहोनी बात है। यहाँ कोई-न-कोई तो आता ही है, और उसके साथ रोज ही जमती है और उसके बाद ही जो जमना रोज ही अर्थहीन हो जाता है। तब भी सन्ध्या के

वाद जैसे पंछियों को अंधे होकर अपने-अपने घोसले में घुसना ही पड़ता है, ठीक वैसे ही मैं भी अंधे की तरह ही यहाँ चला आता हूँ, (दिव्य-दृष्टि प्राप्त करने के लिये, अहा, क्या रोशनी है, विलकुल फूलझड़ी !) शराव पीता हूँ; और क्या वातें होती हैं वह तो मैं खुद भी नही जानता, सिर्फ इतना याद रहता है कि वीच-वीच में नीता की वात याद आ जाती है, हालाँकि नीता के पास जाना नहीं हो पाता, उसे देख नहीं पाता, यही सोचते-सोचते, क्या कहूँ, वहुत-कुछ विगड़े हुए इंजन की तरह मेरे अन्दर का गो-गों करने लगता है, गों-ओं-अँ-अँ,...गों-ओ-अँ-अँ...लेकिन चलता नहीं, उसके वाद गदाम् से एक लात, (कौन मारता है, पता नहीं चलता) और लात खाकर ही छकड़ा-गाड़ी की तरह दौड़ने लगता हूँ। किधर ? किसी संगिनी के या अपने घर के विस्तरे की ओर। लेकिन आज कोई क्यों नहीं आया, क्या नीता के मर जाने की खवर पाकर ? क्योंकि जो यहाँ आते हैं, उनमें वहुत-से नीता के भी परिचित हैं; आज वे क्यों नहीं आये, शोक के मारे या भय के मारे, यह मैं समझ नही पा रहा हूँ। इसी समय एक लड़की को देखा, दो-तल्ले की ओर जा रही थी, मुझ पर नजर पड़ते ही उसने हाथ हिलाया। मैंने उसे पुकारा। पूछा, क्या ऊपर उसका 'कोई पुरुष' है, और न हो तो उसे अपने साथ आने को कहा। उसने जानना चाहा, मैं कहाँ जाना चाहता हूँ, उसके घर या किसी होटल में ? मैंने वताया कि टैक्सी करके सुनसान में थोड़ा घूमने की इच्छा है, क्योंकि शहर में, विशेषतः शीत ऋतु की सन्ध्या के धुएँ से दम-घोटू इस शहर में रहने को मन नहीं कर रहा है। लड़की के राजी होने पर हम निकल पड़े। वह किसी एक को पकड़ना चाहती थी, और जव वह मिल ही गया तो थोड़ा घूम लेने में हर्ज क्या है। टैक्सी में वैठकर लड़की की देह-वेह पर थोड़ा हाथ फेरा, उसे पकड़े वैठा रहा। लेकिन माथे का पिछला हिस्सा इतना दर्द कर रहा है कि कुछ भी अच्छा नही लगता। देह-वेह पर हाथ रखने से जैसा लगना चाहिये, वैसा क्यों नहीं लगता, पता नहीं; माथे के पीछे का दर्द किस कारण है, किसी प्रेसर से ऐसा हुआ है, या नर्व का कोई गोलमाल है ? क्योंकि अभी तो मुझे मौज में ही रहना चाहिये था। चौवीस घण्टे के अन्दर ही इतने दिनों की अलमस्त आदत कैसे टूट गई, यानी लगता है, कहीं कुछ टूट गया है, लेकिन क्या टूट गया है यह मैं समझ नहीं पा रहा हूँ, लेकिन नहीं, कौन कह सकता है कि चौवीस घण्टे भी पूरे हुए हैं या नही, (इस वक्त घड़ी देखने को मन नहीं करता।) कल इस समय तो मैं एक टैक्सी में ही था, नीता की देह के साथ······यह वात याद आते ही मैंने साथ की लड़की को एकवार देखने-समझने की कोशिश की; यह देखकर उसने हाथों

से घेरकर मुझको पकड़ना चाहा, लेकिन मैं कुछ भी समझ न सका। मैं नहीं जानता कि यह किस किस्म की घटना है, मैंने क्या देखना-जाँचना चाहा था, यह समझ नहीं पा रहा हूँ, सिर्फ वह लड़की उई, आह, कर उठी, बोली,
'लगता है।'
'लगता है ?'
'हाँ, आप जो इतनी जोर से चिकोटी काट रहे हैं।'
'ओह्, सॉरी।'
'क्या हुआ है आपको, तबियत खराब है क्या ?'
'हूँ—पता नहीं।'
'जनिक पी ली है क्या ?'
'नहीं तो। अच्छा, तुम्हारा नाम क्या है ?'
लड़की हँसी, बोली, 'जितनी बार आपसे मिली हूँ, उतनी बार आपने नाम पूछा है, क्यों, याद नहीं रहता है क्या ?'
'नहीं।'
'सावित्री।'
'सुसावित्तिरी। अच्छा, तुम हूलाहुप क्यों नहीं करतीं ?'
'उफ्, आप फिर दुखा दे रहे हैं। भला हूलाहुप क्यों करूँगी ?'
'बड़ी चर्बी जम गई है। अच्छा, तुम पूरी गृहस्थ हो या हाफ-गृहस्थ ?'
'पूरी ही कह सकते हैं।'
'शादी-वादी हुई थी ?'
'सो एक हुई थी।'
'वह सत्यवान कहाँ है, मर गया ?'
'यह सब तो आप कभी भी पूछते नहीं थे।'
'आज पूछ रहा हूँ, यानी पूछने का मन हो रहा है।'
'भाग गया है।'
'मर जाना ही उसे कहे, क्यों ? अच्छा, आज तक कितने लोग तुम्हारे पास आये ?'
लड़की फिर हँसी, कहा, 'इतना सब याद रहता है क्या ?'
'काउंटलेस, ना ? अच्छा, उन्हें तुम क्या समझती हो ?'
'क्या समझूँगी ?'
'सूअर का बच्चा, क्यों ?'
'छी छी, किन्तु—।'
'खरीदार लक्ष्मीपति—नहीं ?'

'हॉं, वह कह सकते हैं, किन्तु देखिये, मुझे लग रही है, आज आपको हो क्या गया है ? आप इस तरह क्यों कर रहे हैं ?'
'किस तरह,-कहो तो ?'
'आपने पेट के पास, लगता है, मेरा वस्त्र ही फाड़ डाला है ।'
'ओह्, सॉरी...... । चलो, तुम्हारे घर ही चलें ।'
'वहीं चलिये ।'
ड्राइवर से गाड़ी घुमाने के लिये कहा, उसके वाद लड़की से पूछा, 'अच्छा, सीता— ।'
लड़की वोल उठी, 'सीता नही, सावित्री ।'
'एक ही वात है । तुम्हारे लिये मैं हूलाहुप की रिंग खरीद दूँगा । अच्छा,······ कौन-सी तो वात तुमसे पूछना चाहता था, याद ही नही आ रहा है ।'
'आज आप दूसरे ही कुछ हो गये हैं, आपकी वह अलमस्ती—।'
उसकी वात खो गई, आगे सुन नही पाया, उसके वदले मे अपने ही कंठ से मैंने एक गीत सुना, नही, वैसे मैं गाता-वाता नहीं, फिर भी मैंने सुना, 'आई लॉक्ड माई हार्ट, एण्ड थ्रू ओवर दि की !'··· जिसका अर्थ है, मैंने अपना हृदय ताले में वंदकर चावी फेंक दी है ! जिसका अर्थ है, परान में ताला जड़, चावी, हैपीस ! जा वावा, ऐसा भी कही होता है ? गायक को और शब्द नहीं मिले ? एक घंटे तक लड़की के डेरे पर रहा, जो होना उचित था, वही हुआ; उसके वाद घर लौट आया । विदिशा का वही प्रेमी और विदिशा आदि, सव कुछ ठीक-ठाक ही हैं । सिर्फ ऊपर चढ़ते ही माँ ने भयभीत आवाज में कहा, आफिस की सव घटना पितृदेव को मालूम हो गई है, नीता की हत्या के वारे में भी, जिसके कारण पुलिस मेरे पीछे घूम रही है, सव खवरें उन तक पहुँच गई है । माँ ने पितृदेव से मुलाकात करने के लिये कहा । मैंने कहा, अभी नींद के सिवा मुझसे और कुछ नही हो सकता । कल की तरह ही आज भी शरीर चकराने लगा है; लगता है, लीवर ऐंठ गया है ।

दूसरे दिन जव मैं आफिस गया तो लगा, आफिस के तमाम लोग अद्भुत दृष्टि से मेरी ओर देख रहे हैं । अद्भुत यानी, वहुत-कुछ द्वेषहीन, प्रशंसासूचक नजरों से देख रहे हैं, जिससे समझा जा सकता है कि कल की आफिस की घटना सवको मालूम हो गई है । नीचे के कर्मचारी इससे वहुत खुश हैं । शायद उन्होंने अपनी 'लड़ाई' के साथ मुझको मिला लिया है । लेकिन मैं जानता हूँ, हर आदमी फरेवी और फाँकीवाज है, सव अपनी-अपनी घात में हैं । सव चाहते

हैं, उनके साथ तुम्हारा कहीं मेल हो तो तुम्हें अपना बना लें। अगर अपराध करने से लाभ होने की आशा हो तो, मौका मिलते ही सब इसके लिए तैयार हो जायेंगे। अगर मुझको मार डालने से सबकी एक वर्ष की तनख्वाह बढ़ जाय, तो अभी ही मुझे मार डालें। क्योंकि, गरीब और भद्र लोग, मेरी धारणा है, सबसे ज्यादा खतरनाक होते हैं। अपने चेम्बर में जाते ही देखा, मेरी मेज पर कागज का एक टुकड़ा रखा है, जिस पर लिखा है, 'हे साहसी वीर, हमारा अभिनन्दन ग्रहण करो।'

देखते ही बेयरे को चीखकर पुकारा, और पूछा, 'इसे यहाँ कौन रख गया है?'

बेयरा भय से घबड़ाकर बोला, 'देखा नहीं, साब।'

कागज के टुकड़े-टुकड़े कर वेस्ट-पेपर की टोकरी में न डाल, दरवाजे से बाहर फेंक दिया। गोया उनके अभिनन्दन के लिये ही मैंने कुछ किया है। लेकिन मैं सोचता हूँ, यह सब खबरें इनलोगों के पास जाती कैसे हैं, सब तो सीक्रेट रहता है। ऐसी कोई बात नहीं देखी, जो बाहर नहीं पहुँच जाती हो, हालाँकि कहने को सीक्रेट होती है।

लेकिन काम करने के लिये खोजने पर भी कुछ नहीं मिल रहा है। चलो, एक तरह से अच्छा ही है, क्योंकि कल से ही नस-नस में जो झनझनाहट है, वह इस समय और भी बढ़ गयी है, उस पर पेट की ऐंठन और बार-बार पैखाना जाने की इच्छा ने भी धर दबाया है। एक बार बाथरूम से निकलकर देखा, वह थोबड़े मुँहवाला फिर आया है, उसके हाथ में एक अखबार है। उसने वह अखबार मुझे दिखाया, जिसमें खाट पर पड़ी हुई नीना की तस्वीर और खबर प्रकाशित हुई है।

फिर पूछा, 'देखा है तो?'

'नहीं।'

'यह क्या, सवेरे अखबार—!'

'नहीं देखता।'

लेकिन अब मैं नीना की तस्वीर देखने लगा, जिसके नीचे लिखा है, 'इस युवती को उसके एपार्टमेंट में चारपाई पर मृत अवस्था में पाया गया। शव-परीक्षा के बाद मालूम हुआ है कि इसे गला दबाकर मारा गया है। अपराधी अभी तक पकड़ा नहीं गया, पुलिस खोज रही है।' जानता हूँ, थोबड़े मुँहवाला मेरी ओर वही अबोध की तरह अपलक ताक रहा है, शायद यह देखने के लिये कि मेरे चेहरे पर कोई 'भावान्तर' होता है या नहीं। लेकिन मैं उल्लू हूँ क्या, जो भाव-भंगिमा से उसे कुछ समझने दूँगा। फिर भी, यह सच है कि मैंने

तस्वीर देखते-देखते ही नीता की देह का स्पर्श किया, और उस तरह से स्पर्श करने तथा लिपट जाने की स्थिति पैदा होते ही मेरा हाथ हिल गया। उसी क्षण मैंने अखबार थोवड़े मुँहवाले को लौटा दिया।

'आपने कुछ समझा ?' थोवड़े मुँह ने पूछा।

मैंने कहा, 'मर गई है, यही तो अखबारवालों ने लिखा है।'

वह आदमी कुछ देर तक चुप रहकर मेरी ओर देखता रहा। उसके बाद वही एक ही बात पूछने लगा। मैंने गाली की मात्रा बढ़ा दी। वह विदा लेने से पहले बता गया कि कल रात जो लड़की मेरे साथ थी, उससे उन्होंने पूछ-ताछ की है, अर्थात् मेरे ऊपर वे हर समय नजर रख रहे हैं और उन्होंने मान लिया है कि उस लड़की के साथ मेरा पहले से ही एपॉइन्टमेंट था। लड़की ने क्या कहा है और क्या नहीं कहा है, यह मैंने नही पूछा; थोवड़े मुँह ने बताया भी नहीं, लेकिन स्पष्ट है कि लड़की ने मन-ही-मन जरूर मुझको बुरा-भला कहा है।

मुझसे कोई काम नही हो रहा था, इसलिये मैं टेलिफोन पर बागची से कहकर (कहने का कोई अर्थ नहीं था, बागची ने सिर्फ रिसीवर उठाकर सुना और बिना कोई जवाब दिये ही वापस रख दिया। गुस्सा है।) लंच के समय बाहर निकल गया। और हर क्षण ही मुझे आशंका होने लगी कि आफिसवाले सब लोग मुझसे कुछ न कह, मेरी वीरता के कार्य से विगलित हो रहे हैं। देख रहा हूँ, टैक्सी पाना कठिन है, इसलिये पैदल ही चलने लगा था, ऐसे समय ही एक नीले रंग की गाड़ी मेरे पास आकर खड़ी हुई; देखकर लगा, चालक ही मालिक है, मेरा अपरिचित है, फिर भी हँसकर बोला, 'सर, मैं आपके ही पास गया था, आपके दफ्तर में, सुना, अभी ही आप निकले हैं, कहिए, कहाँ जायेंगे, पहुँचा दूँ।'

आदमी ने अपना नाम बताया। लेकिन समझ नहीं पाया कि उसको मुझसे क्या काम हो सकता है, और मैं कहाँ जाना चाहता हूँ, यह भी तो मैं नहीं जानता। इसको मुझसे बहुत ही जरूरी काम है, कौन जाने, इन्टेलिजेंस का ही आदमी है या नहीं। जब मैंने बताया कि मेरा कोई गन्तव्य स्थान नहीं है, तो उसने कहा, 'तो चलिये, कहीं एकान्त जगह में बैठकर बातें हों।'

गाड़ी पर बैठाकर वह उत्तर की ओर चला, और पग-पग पर मेरी प्रशंसा करने लगा, अर्थात् मैं हड़ताल के मामले में मालिक के साथ, उसकी भाषा में 'पवित्र संग्राम' में (उल्लू !) उतर गया हूँ, यह एक बड़ी घटना है। उसके बाद देखा, वह आदमी दक्षिणेश्वर जा पहुँचा है। वह जगह खराब नहीं लगी, बल्कि कलकत्ता से बाहर आकर कुछ अच्छा ही लगा। हालाँकि यहाँ भी माँ-काली के दर्शन के लिये लोग दौड़ रहे हैं, जिन्हें देखने से ही लगता है, सब पाप करके ही

दौड़े चले आ रहे हैं, जैसे देह के घाव की ज्वाला से, 'ओ माँ, रक्षा करो माँ,' (माँ का खाने-पीने का नाम नहीं है, बदमाशी करेंगे, और सन्देश-बताशा लेकर यहाँ आयेंगे, और काली-मूर्ति तुम्हारे घाव की मलहम बन जायगी।) जैसा ही भाव बनाकर खदेड़े जाने की तरह दौड़ रहे हैं। मैं नहीं जानता, क्या उन्हें शर्म नहीं आती, जब वे इस तरह दौड़ते हैं, और सोचते है, (जिस पर वे स्वयं ही विश्वास नहीं करते।) माँ को पुकारने से निश्चित फल मिलेगा। क्योंकि दरअसल यह सब कुछ पाने की, क्या कहूँ, एक आवसेशन है। सब तरह की आकांक्षाओं की एक आवसेसन। लेकिन जिस आदमी की गाडी में आया हूँ, उनमें मूर्ति-दर्शन की कोई बेचैनी नजर नहीं आती। वह मुझी में इतना व्यस्त है, (यह कौन आदमी है ? इस तरह से हमारे दफ्तर से माल-पत्तर हड़पने की तदबीर कर रहा है क्या, तब तो, लेकिन ऐसा तो नहीं लगता, क्योंकि यह तो दूसरी ही तरह की बातें कर रहा था।) जैसे माँ-काली से अधिक मुझको ही खुश करने के लिये व्याकुल हो। उसने कहा, 'चलिये सर, गंगा किनारे किसी पेड़ के नीचे बैठा जाय, आपको एतराज तो नहीं है ?'

मैंने कहा, 'आपका मकसद क्या है, कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ, आपको मैं पहचानता भी नहीं।'

'सो चाहे मत पहचानिये, बताने पर पहचान लेंगे, चलिये बैठें।'

ठीक हुक्म नहीं, फिर भी वह मुझको प्राय ठेलकर ही गंगा-किनारे ले गया। वहाँ भी शान्ति बिल्कुल नहीं है, क्योंकि कुछ छोकड़े और छोकड़ियाँ आपस में क्रीड़ा कर रहे हैं और उनमें कोई भी किसी का परिचित नहीं है, यह साफ ही समझा जा सकता है। माँ-काली के आँचल तले शीत की प्रबल धूप में, सब एक-दूसरे का शरीर देखकर थोड़ा गर्म होने के लिये आये हैं। कुछ लोग 'हनुमानों' के पीछे भी लगे है, पीछे लगे हैं, यानी उन्हें खिला रहे है। यह भी पुण्य का अंग है या नहीं, कौन जाने। जिस तरह चने और बादाम लेकर लोग खिलाने के लिये चिल्ल-पों मचा रहे हैं, उससे तो लगता है, माँ-काली की पूजा करने से तो यही अधिक मजेदार है। और किन्तु भी तो रहे हैं छोकड़े-छोकड़ियाँ ही, जिनको देखकर ही समझा जा सकता है कि इनका खाना-खिलाना, देखना-दिखाना हनुमानों से भी अधिक है। जाने-पहचाने जोड़ों की भीड़ भी कम नहीं है। सियार और पुण्य सब एक साथ, अहा, माँ, तुम्हारी सन्तानों को ऐसी जगह और कहाँ मिलेगी। मैंने उसके साथ के आदमी से पूछा, यहाँ कोई यूरिनल है या नहीं, आदमी मुश्किल में पड़ गया, क्योंकि, यूरिनल कहाँ है, वह भी नहीं जानता। फिर भी 'मैं देखता हूँ' कहकर वह इधर-उधर दौड़ने लगा, और आखिर खोजकर मुझको ले

गया। इस वक्त मेरी इतनी खातिर क्यों कर रहा है, समझ नही पा रहा हूँ। यह काइयाँ (मुझे वैसा ही लग रहा है) गलती कर रहा है। जो हो, गंगा-किनारे के एकान्त में बैठकर उसने मुझको एक सिगरेट दी। गंगा के सौन्दर्य (उल्लू!) का वर्णन किया, और यह भी कहा, गंगा में रेत बढ़ती जा रही है, आजकल ईलिश मछली नहीं आती, (साला) आदि कहने के बाद उसने जो कहा, उससे उसको किस श्रेणी का खच्चड़ कहा जा सकता है, समझ नही पाया। उसने प्रस्ताव किया, उसकी कोई एक पत्रिका है, मैं अगर मालिक और हरलाल के तमाम घपलों को सबूत के साथ छापने के लिये उसे दे दूँ तो वह मेरी फोटू छापकर रातों-रात मुझको 'हीरो' बना देगा, मुझे एक बड़ी रकम भी देगा। उसका मकसद यह है कि वह ऐसा स्टन्ट देकर छापेगा कि गर्म पकौड़ों की तरह हजारों प्रतियाँ (भवानीपुर के तेल के पकौड़ों की तरह शायद) हाथों-हाथ बिक जायेंगी, अर्थात् वह खासे रुपये पीट लेगा, हालाँकि यह अन्तिम बात उसने मुझे बतायी नहीं।

मैंने कहा, 'आप एक राम-खच्चड़ आदमी हैं।'

'क्या कहा?'

'राम-खच्चड़। आपकी हजारों प्रतियाँ बिकवाने के लिये मैंने यह सब नहीं किया है। तुरन्त खिसक जाइये यहाँ से, लेकिन जाने से पहले यह बताते जाइये कि यहाँ पायखाना कहाँ पर है।'

उसका मुँह दैत्य की तरह भयंकर हो उठने पर भी, वह हँसने लगा, और उसने फिर मुझे समझाने की कोशिश की। कहा, 'वह दिखा देता हूँ, सर, (फिर सर!) किन्तु—मैं जानता हूँ, आप खूब ही अपराइट और फार्वर्ड हैं, और आपकी तबियत भी अच्छी नहीं है, फिर भी सोचकर देखें। इसमें आपकी ओर से—।'

'मेरी ओर से हलुआ।'

'हलुआ?'

'हाँ, अब टलिये। पाखाना—?'

उसके बाद हताश होने के बावजूद (आश्चर्य!) उसने मुझको अपनी गाड़ी में कलकत्ता लौटा ले जाना चाहा; यह सुनकर कि मैं नहीं जाऊँगा, पैखाना कहाँ है, बताकर चला गया। जाने से पहले मुझसे एकबार फिर सोचने के लिये कह गया।

दिन कब ढल गया, मैं जान नहीं पाया, और एक पक्षी, मेरे कान के पास से गुजरते समय, प्रायः मेरा कंधा छूकर मुझे चौंका गया। ऐसा चौंकाना, जिससे

मेरी छाती तक धडक गई। और मैंने घूमकर देखा, नदी नीली है, जैसे उसमें हल्का नीला रंग घोल दिया गया हो। लेकिन उस पार का पानी लाल दिखाई दे रहा है। सूर्य खूब बडा और लाल होकर जैसे उस पार के पेड की डालियों पर (मुझे यही लगता है) मैर कर रहा है। हवा तेज हो रही है। हवा जैसे सब कुछ को सोख रही है। मेरी देह सूख रही है और पेडों के पत्ते तो प्राय पीले हो गये हैं, चूँकि हवा सोख रही है, इसीलिये पत्ते भड रहे हैं। जमीन पर तो झड ही रहे है, उड ही रहे हैं, देखता हूँ, मेरी देह पर भी कितने ही पत्ते आ गिरे है। जिस आजादी के साथ जमीन पर गिरते हैं, उसी तरह मेरे टैरीउल के काले रंग के सूट पर आ गिरे हैं। मैंने आसपास के पेडों की ओर देखा, सभी पेडों के पत्ते हवा में काँप रहे है, उस पार की लाल धूप में चमक रहे हैं। देखता हूँ, इस समय भी एक-एक पत्ता झड रहा है, इसीलिये पेड 'शीर्ण' नजर आ रहे हैं, उसके बाद जल्दी ही वे बिल्कुल मुंडे हो जायेंगे। अभी तो जैसे, जिसे 'विपण्ण' कहते हैं, 'इनि' की तरह ही एक निराकार भाव की 'घोषणा' है। सूर्य बिलकुल डूब गया है, फिर भी जल में अभी लाली की आभा है,. बहुत-कुछ आग से निकाले गये इस्पात की तरह नदी दिखाई दे रही है। उस पर तैरती हुई अकेली नाव कलकत्ता की ओर जा रही है, जिस पर पाल भी तना है। ठीक उसी समय नदी के ब्रिज के ऊपर दम-दमाहट सुनकर उधर देखा, ढेर-सा धुआँ छोडती, ब्रिज के लोहे के जाल के अन्दर से बिना खिडकी-दरवाजे की एक गाडी, निश्चय ही माल गाडी, क्रोध से जैसे गरजती हुई दौडी चली आई, जिसे देखकर मेरी देह भी अन्दर-ही-अन्दर जल गई और मैं कह उठा, 'सूअर!' और तभी हठात् मैंने गौर किया, यहाँ मन्दिर में दौडकर आनेवाले औरत-मर्द सब मेरे चारों ओर भीड लगाये हुए (धम-मुख के लिये) मूँगफली चबाते हुए चिल्ल-पों मचा रहे है। तब कलकत्ता की बात मुझे याद आ गई, और याद आते ही शराब की तृष्णा जगी, (जैसे कलकत्ता एक शराबघर हो!) और मैं इसीलिये गंगा-किनारे से उठ खडा हुआ। कुछ नहीं जानता कि इतनी देर तक क्या सोचता रहा, मगर यह सच है कि मैंने एक बात बार-बार सोचने की कोशिश की है, कि नीता नही है, वह मर गई है, लेकिन अचरज है, मैं किसी भी तरह इस बात का अपने-आपको विश्वास नहीं दिला पाता। केवल यही नहीं कि जिसे अपने ही हाथ से मार डाला है, उसीके बारे में विश्वास नहीं कर पाता, बल्कि उसको अब कभी भी नहीं देख पाऊँगा, छू पाना तो बहुत दूर की बात है, इस बात की सभावना पर भी सोचने की इच्छा नहीं होती, क्योंकि इस अर्थहीन बात के बारे में सोचने का भी कोई लाभ नहीं

है, तव भी (कसम से) मेरे अन्दर का एक तरह की जिद् के कारण ही यह मानने को तैयार नहीं है कि, नीता को (वह चाहे जो हो) अव कभी भी (जिस तरह भी हो) नही पा सकूँगा ।
वहुत-से लोगो को मन्दिर की ओर जाते देखकर, और काँसे के घंटे की आवाज सुनकर, एक वार मैं भी आहिस्ते-आहिस्ते उधर वढ़ा । मन्दिर के पास जाते ही पतंगों की तरह आदमियो की भीड़ देखकर मेरी देह कैसी तो हो गई । जल्दी-जल्दी लौटते समय, एक दरवाजे से नजर आते तालाव को देखता हुआ (वही यूरिनल है) चल रहा था तो अचानक एक छोकड़ा और एक छोकड़ी छिटककर अलग हो गये, जैसे भय के कारण फट गये हो । देखकर (माँ-काली की कृपा से, अहा, वेचारे !) फिर लौट आया । चहारदीवारी से वाहर निकलते ही दरवाजे के सामने रोशनी मे एक पहचाना चेहरा नजर आया । आँख उठाकर जरा गौर से देखते ही पहचान गया, वही थोवड़े मुँहवाला आदमी है, डिवाइन खचड़ ! मैं विना कुछ वोले आगे वढ गया । लेकिन उसने नजदीक आकर कहा, 'काली-दर्शन करने आये थे ?'
'नही ।'
'मैं तो प्राय: ही दर्शन करने आता हूँ ।'
मैंने कोई जवाव नही दिया, देने की जरूरत भी नही, क्योंकि जानता हूँ, वह झूठ वोल रहा है, असल मकसद मेरे पीछे-पीछे घूमना है । घूमे, मुझे कुछ नही कहना है । साथ चलते-चलते उसने कहा, 'हत्यारे का अभी तक भी कोई सूराग नही मिला है, पोस्ट-मार्टम की रिपोर्ट में भी यही कहा गया है कि गला दवाकर हत्या की गयी थी, माँ-वाप को टेलीग्राम किया गया है, आज ही रात को उन्हें डेड वॉडी मिल जायगी । पूछ-ताछ के लिये और भी दो आदमियों को गिरफ्तार किया गया है, फिर भी कोई फायदा नहीं हुआ,' आदि, और उसके वाद, 'आप याद नही कर पाये, कहाँ थे ?'
'ना ।'
'अच्छा, तो चलता हूँ ।'
जाओगे कहाँ, जानता हूँ, तव भी मेरी नजरों के सामने नहीं आने से ही चलेगा, मेरी आँख की किरकिरी ! फिर वस पकड़कर कलकत्ता आया, वार में गया, एक-आध दोस्तो से मुलाकात हुई, जिन्होने नीता के मर्डर के वारे में तरह-तरह की वातें कहीं । शोक में उन्होने कितनो का नाम भी लिया कि उसे कौन-कौन मार सकता है, लेकिन मेरी वात किसी ने भी नही कही । उसके वाद किसी लड़की के पास जाऊँ या नही, यह सोचते-सोचते रोज के समय से वहुत पहले

ही घर चला आया। वहाँ माँ से सुना, दफ्तर के मालिक मुझको डिसमिस तो करेंगे ही, लेकिन पनिसमेंट नहीं देंगे। ऐसी कुछ फाइलें और कागज-पत्र मिले हैं, जिनसे मालूम हुआ है कि मैंने अनेक भ्रष्टाचार किये है, जिसे पाप कहते हैं, (बागची-चटर्जी-घोष के रहते मुझको अपराध में फाँसना क्या कठिन है, विदिशा भी फाँस सकती है।) अब खेल खत्म हुआ, लेकिन फिर भी पितृदेव मुझको ऐसा रास्ता बता सकते है, जिससे अब भी बचाव हो सकता है। माँ ने सलाह दी, मन-मानी न करके, मालिक के मन के मुताबिक ही चलूँ, और मेरी 'स्वीटी' (स्वीटी दत्त) ने भी फोन किया था, मुलाकात करने को कहा है। लेकिन मैं तो अब माँद से निकल आया हूँ। अब मुझको यह समझने में जरा भी भूल नहीं हो रही है कि, जिस क्षण नीना को मार डाला था (नहीं, मरी नही, हाय अल्लाह!) उसी क्षण से ही बाहर छिटक आया हूँ। भीतर जाने का रास्ता बद हो गया है, जबकि स्वाधीनता का आश्रय शायद ऐसा ही होता है, कहीं भी सिकुड़-सिमट-कर रहने की जगह नहीं है, अर्थात्, जिसे कहते हैं, सुख नहीं है।

किन्तु मेरे कमीज-पैंट खोलने के पहले ही कालिंग बेल बज उठी और कोई जैसे सीढी से ऊपर दौडा आया। मैं देख नही सका, क्योंकि मेरा दरवाजा बन्द है। मैं आईने के सामने खड़ा हो कोट खोलने जा रहा था, लेकिन अब खोला नही, सोचा, शायद थोबडा मुँह ही परवाना लेकर आया हो, अतएव कोट खोलने से फायदा क्या है। दौड़नेवाले पाँव का शब्द मेरे दरवाजे के पास नहीं आया, चला गया घर के मालिक के पास। फिर भी निश्चिन्त होने का कोई कारण नहीं है, क्योंकि शायद भयानक खबर विदिशा पहले पितृदेव को ही देना चाहती है, भयानक अर्थात् मेरे जेल जाने की खबर (कितनी घृणा की बात है, हरामजादा खूनी है!) जब कि मुझको जेल-वेल की बात कुछ वैसी खराब नहीं लग रही है। फिर उसके पाँव का शब्द सुनाई दिया, इस बार मेरे कमरे के पास ही, और दरवाजा खुल गया। विदिशा ने (बेचारी! घर की आबहवा देखकर आज शायद उसे अपने बँधे प्रेमी को विदा करना पडा है।) मेरी ओर देखा। उसके चेहरे और आँखों में उत्तेजना है। उसके कुछ कहने के पहले ही सीढी पर मैंने माँ की आवाज सुनी, 'ओह्, आप आई हैं, हम कितने भाग्यशाली है, आइये, आइये।'

विदिशा ने धीरे से कहा, 'स्वी दत्त।'

कहा, फिर वही जाँबाज औरत। कितनी भाग्यशाली हैं मेरी माँ, पितृदेव भी निश्चय ही अपने कमरे में मन-ही-मन हुमस रहे होंगे, और विदिशा की इतनी उत्तेजना, इतनी दौड़-धूप, क्यो न हो, नटोरियस हाबुल दत्त की बीवी, खुद मालिक की उप-पत्नी, (क्यो रे उल्लू, प्रेमिका नहीं कह सकते?) स्वयं चलकर

श्वरी, पिछले दरवाजों की ताला-चाबी जिसके आँचल में बँधी रहती है, क्योंकि कलकत्ता के बहुत-से सामर्थ्यवान लोग उसके आँचल में बँधे हैं, (लेकिन वेश्या-टेश्या मत कहो बाबा, सी इज ए कल्चर्ड, ए जेम् !) वही रूरू स्वी दत्त आई है। मैंने कलकत्ते को वश में रखनेवाला, जिसे कहते हैं 'कंठ-स्वर', सुना, 'नहीं, नहीं, इसमें भला भाग्यशाली होने की क्या बात है, यही आ गई कि जरा दुष्ट (हाय, हाय !) के साथ मुलाकात कर लूँ, कहाँ है वह ?'

उसके बाद चुप्पी, शायद मातृदेवी चुप-चुप कुछ कह रही हैं, अर्थात् समझा रही हैं, और कई सेकंड के बाद ही ठाटेश्वरी दरवाजे पर दीख पड़ी। कुछ-कुछ गंभीर, जैसे कष्ट हुआ हो, (वह तो होगा ही) चेहरे पर ऐसा ही भाव लिये, यद्यपि प्रसाधन और पोशाक अन्य दिनों से अधिक ही भड़कीली हैं, मेरी आँखों की ओर देख, बिना अनुमति लिये ही कमरे में घुस आई। दरवाजा बंद किया, और फिर पलटकर मेरी ओर देखा। इसे कहते हैं खड़ा होना, किस जगह शरीर में जरा खम दिया जाता है, कहाँ से पाँव को जरा किस ओर खिसकाया जाता है, खेल करनेवाली छोकड़ियाँ आकर देख जाएँ। उसके बाद एक-एक कदम चलकर, आँखों-से-आँखों को बिना हटाये, (सम्मोहन !) मेरे सामने आकर खड़ी हुई। उसकी नाक थोड़ी सिकुड़ गई, शायद शराब की गंध के कारण। अहा, स्वी दत्त, शराब की गंध नहीं सह सकती, किन्तु अहा, शरीर को किस तरह मौज से दिखाया जा सकता है। क्यों, अभी डूब न जाऊँ। निखालिस उर्वसी (उर्वशी)। सामने आने पर भी, बहुत देर तक देखते रहने के बाद, मुँह से निकला, 'ओह्, आखिर नजर तो आये तुम !'

मेरा चेहरा इस समय कैसा लग रहा है, मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा हूँ, लेकिन मुँह का चमड़ा-बमड़ा हिल नहीं रहा है, सो मालूम है, यहाँ तक कि, आँख की पुतली भी स्थिर है, मर गया क्या ! स्वी दत्त के मीठी गंधवाले मुँह से (देह से या मुँह से, पता नहीं।) फिर निकला, 'मालिक तो अवाक् हैं कि उनके आफिस में क्या सचमुच इस तरह का डिस-ओबीडियेंट अफसर भी हो सकता है। मुझसे कहते वक्त गले का स्वर तक लड़खड़ा गया था, (ओ माँ, कहाँ जाऊँ !) लेकिन मैंने कहा, 'वह वैसा लड़का नहीं है, निश्चय ही कुछ हुआ है।' मेरा अनुमान है, नीतावाली घटना से ही कुछ गोलमाल हुआ है, हठात् इस तरह की एक खबर…।'

स्वी दत्त की नजरों में जिज्ञासा है, अर्थात् 'सही कह रही हूँ या नहीं ?' ऐसा ही एक भाव है, और उसके साथ-ही-साथ मेरा मुँह देखकर यह जाँच लेने की चेष्टा भी कर रही है कि उसकी बात का मेरे ऊपर क्या असर हुआ है; लेकिन मैं

तो सब समझ रहा हूँ, ऐ मुँह-जली !
एक बार फिर कच्चे माँस की तरह रँगे हुए होंठ हिले, 'वैसे, मैं मान ही लेती हूँ कि तुमने अपने ही हाथ से यह सब किया है, क्योंकि, मैं जानती हूँ, जेलेसी आदमी को समटाइम्स हैल्पलेस कर देती है। पर उसके लिये भी तुम्हें चिन्ता नहीं करनी थी, तुम जानते हो, देयर आर सेवियर्स। लेकिन खुद मालिक के साथ, नहीं, नहीं, यह तो कभी सोचा भी नहीं जा सकता। सुना, हरलाल की एविडेंस के कागज-पत्र तक तुमने घर में ला रखे है। छी, यह क्या बचपना है।'
लेकिन यह क्या, मैं क्या सचमुच मर गया हूँ, क्योंकि स्वी दत्त का सम्पूर्ण शरीर एकदम आगे आ गया है, बिल्कुल, जिसे कहते है, 'सूच्यग्र' विन्दु तक मेरे शरीर में लग रहा है, फिर भी एक बार भी मेरी देह का चमड़ा नहीं काँपा। मुझे तो गले में फाँसी लगा लेनी चाहिये।
स्वी दत्त ने अपने हाथ के बैग का मुँह खोला, टाइप किये हुए कागजों का एक पुलिन्दा निकाला, 'बीड्राअल रिपोर्ट मैं साथ लाई हूँ, लो, सही कर दो।'
अच्छा, इस गीत की एक कड़ी मुझे इसी क्षण क्यों याद आ रही है, मैं नहीं जानता, 'किसने फिर बजाई बाँसुरी, यह टूटी।' तब भी मैं बोल उठा, 'अच्छा स्वी दी, आज आप, वही विलायत से जो लाई थी आप, डेड सौ रुपये दामवाला (पौंड का हिसाब नहीं जानता।) यूडिकोलन लगाकर नहीं आई हैं, नहीं न ?'
जरा अवाक् होने के बावजूद, कलक्तेस्वरी हँसी, बोली, 'वह खुशबू तुम्हें शायद खूब अच्छी लगती है।'
'भीषण।'
'ठीक है, तुमको मैं वही चीज प्रेजेंट करूंगी। अभी लो, जल्दी इसे सही कर दो तो।'
'आपके पेट में शायद आज 'माल' नहीं पहुँचा है, नहीं न ?'
इतनी बदमाशी करने का अधिकार कभी न मिलने पर भी, स्वी दत्त ने उसे वही समझा, बोली, 'बदमाशी मत करो, वह सब जब होगा, पहले सही कर दो।'
नहीं, मैं इनमें से किसी को भी कुछ समझा नहीं पाऊँगा, यहाँ तक कि नीता के खून से रिहाई पाने के लिये भी नहीं। लेकिन स्वी दत्त ने शायद समझ लिया है कि मैं उसका हाथ पकड़कर माँद में फिर घुस जाऊँगा। इसीलिये, इस बार मुझको साफ कहना पड़ा, 'चलिये, आपको गाड़ी में बैठा आऊँ।'
तत्काल स्वी दत्त की चाशीवाली दोनों आँखों में से चिनगारी निकली, और गले की आवाज भी, जिसे कहते हैं, 'विद्युत-तरंग' हो गई। कहा, 'तो तुम सही नहीं करोगे ?'

'मैंने झूठ बोलना छोड़ दिया है।'

'मतलब—।'

अहा, खुद मालिक जिसकी गोद में सर डालकर लेट जाता है, वही कितनी असहाय स्थिति में पड़ गई है। उसने फिर कहा, 'मुझे अपने पर घमंड था—।' बात खत्म न कर सकी, क्योंकि 'विद्युत-तरंग' आँखों से और गले से गायब हो गई, और शॉक्ड, आहत होना जिसे कहें, वही हालत हो गई उसकी, और मैंने देखा, कच्चे माँस के रंगवाले दो होठ मेरी ठुड्डी तक आ गये हैं, (अहो—प्रेम, प्रेम-मयी!) 'मृणाल-भुजाएँ' मेरे कंधे पर है, और खुद मालिक का 'मुख' मेरी छाती पर। सुनाई दिया, 'प्लीज, इस तरह का बचपना न करो, मेरा मान रख लो।'

'कसम से, छवी दी, मुझे अभी ही बाथरूम जाना होगा।'

'इसका मतलब—?'

छवी दत्त इस बार काफी दूर सरक गई, और इस बार उसके पूरे शरीर में ही 'विद्युत-तरंग' आ गया। बोली, 'बहुत आगे बढ गये हो न?'

'हाँ, सँभाल नही पा रहा हूँ।'

'ठीक है, घर पर जो सब कागजात रखे है, वे दे दो।'

'वह सब आज फिर लेकर बाहर गया था, कहाँ रख दिये हैं, कुछ भी याद नहीं आ रहा।'

उसी क्षण छवी दत्त, जिसे कहते है तीर की तरह दरवाजे पर चली गई, और वहीं से ही, काँच खाये हुए गले जैसी आवाज आई, 'तो फिर तैयार रहो।'

धड़ाम् से दरवाजा बंद हुआ, पाँव की आवाज सीढ़ी की ओर चली गई, उसके साथ ही और भी पाँवो की आवाज, जो निश्चय ही माँ के पाँवो की है, और माँ की अस्पष्ट आवाज सुनाई पड़ी, और उसके बाद सन्नाटा। रास्ते पर गाड़ी के स्टार्ट होने की आवाज हुई; उसे सुनते-सुनते ही मैंने आईने की ओर घूमकर देखा, और अपनी आँखों में देखते हुए ही, जैसे मैं अपने में ही डूब गया, और अन्दर से एक गहरी निःश्वास निकल आई, और मैंने एक गहन शांति महसूस की; और उसके बाद, उँगली हिलाकर, मैंने अपनी छाया को ही पुकारा।

सात दिन के बाद ही नौकरी चली गई, अर्थात् पहले सस्पेन्शन, फिर उपयुक्त कैफियत के अभाव में नौकरी खत्म, नियमानुसार जो होना है। पितृदेव ने कह दिया है, 'अनुग्रह-पूर्वक' उनका 'गृह' त्याग दूँ तो उन्हें खुशी होगी, क्योंकि एक नशेबाज (इतने दिनों तक यह कहने का साहस उन्होंने नहीं किया, शायद सोचते होंगे कि उस तरह थोड़ा-बहुत चलता है।) हाथी पालना उनके लिये सम्भव नहीं है। सो मैं सब समझता हूँ, इसलिये कलकत्ता के बाहर कहीं एक पेट पोसने लायक नौकरी ढूँढ रहा हूँ। इसके अलावा, इलाज भी करवाना ही होगा, पेट शायद सड़ता जा रहा है। ऐसी ही हालत में एक दिन एक पुराना दोस्त आया, राजनीति करता है। उसने तो साफ ही कहा, (पियक्कड़ उल्लू, साला) मेरे अन्दर जो एक 'संग्रामी' इन्सान है, (माँ कसम) उसे वह हमेशा से ही मानता रहा है, यहाँ तक कि, उसकी पार्टी के नेता भी जानते हैं। जिस पार्टी के साथ मेरे २० वर्षीय ताजा खून (अभी क्या बासी है ?) का सम्पर्क हुआ था, जिसके आदर्श, नियम, कायदे आदि सब-कुछ को मैंने खाँटी हिन्दू के वेद की तरह माना था, 'अभ्रान्त' मानकर जिन्हें स्वीकारा था, जिन पर विश्वास किया था, उसी पार्टी के नेताओं के हुक्म से वह मेरे पास आया है, उनकी पार्टी का दरवाजा मेरे लिये खुला है। मैं इस समय ससम्मान पार्टी में घुसकर 'लड़ाई' में कूद सकता हूँ। इसके अलावा, मेरे परिचय को भी देखना होगा, लोग जब यह जानेंगे कि मैंने किसलिए और किस तरह नौकरी छोड़ी है, तो एकबारगी ही हल्ला मच जायेगा, जनता मुझको हाथों-हाथ लेगी, (फिल्म-स्टार जैसा ?) नेता होने की योग्यता और साहस मुझ में है। गोपाल ठाकुर ने सब कुछ पहचान लिया है,

और मैं जैसे जानता ही नहीं कि मेरी नौकरी के चक्कर जैसा ही पार्टी में भी चक्कर है; जैसे नौकरी में रिश्वत लेना कोई अपराध नहीं, उसी तरह पार्टी के चक्कर में भी कोई भी पाप पाप नहीं है, बशर्ते कि पार्टी का वैसा प्रयोजन हो, (जैसे कि वोट की चोरी, घर की बहू को वेश्या और वेश्या को घर की बहू बनाकर काम निकालना, जिसको कुत्ते की तरह घृणा करता था और गला दबाकर मार डालने को प्रस्तुत था, उसीसे इस समय गाल चूमकर बात कर रहा हूँ, पॉलिटिक्स जो है!) उसके बाद एक दिन धक्का देकर 'गेट के बाहर'। तुम्हारा परिचय 'मनुष्य' नहीं, पार्टी-मैन होता है। कभी तुम्हें लगे कि पार्टी के नेता गलती कर रहे हैं, या अन्याय कर रहे हैं, या मान लो, तुम्हारी प्रेमिका को ही लूट रहे हैं, या एक आन्दोलन ही असफल हो जाय, तब भी खबरदार, एक भी बात नहीं, मशीन की तरह बढ़ते जाओ, पालतू कुत्ते की तरह 'लायल' रहो, क्योंकि जितने भी पाप किये जाते हैं, अन्ततः भलाई के ही लिये तो! स्वाधीनता से जो डरती नहीं, ऐसी कोई पार्टी मैंने नहीं देखी है और मैं जो माँद से निकल आया हूँ, यह बात दोस्त को समझाना एकदम असम्भव ही है, क्योंकि मैं जिस जघन्य स्वाधीनता को पहचान गया हूँ, वह शायद उसके लिये कोई अर्थ नहीं रखती। इसलिये, टलो।

किन्तु दक्षिणेश्वर की गंगा के किनारे जो बात मैंने सोची थी, (एक महीना तो हुआ।) मैं देख रहा हूँ, वह मुझको छोड़ नहीं रही है, और चिन्ता की यह जिद (रंगबाजी) सच कहूँ तो, एक-एक समय जैसे मुझको, क्या कहूँ, क्लान्त कर देती है, यानी चिन्ता जैसे मुझको पकड़-पकड़कर मारती है, और कहती है, यह असंभव है कि मैं नीता को अब कभी नहीं देख पाऊँगा, छाती से लगाकर (या खुदा, सोचकर ही देह में काँटे गड़ने लगते हैं, लेकिन यह है सच कि उसे पाने पर किसी को भी अपनी छाती से लगाने की मेरी इच्छा नहीं होती) चेहरे को बिल्कुल करीब लाकर प्यार नहीं कर सकूँगा। एक फैक्टरी में सुपरवाइजर का इन्टरव्यू देकर, आज अभी मुफस्सिल से लौट रहा हूँ, नौकरी मिल भी जा सकती है, लेकिन कौन जाने घूस-घूस देनी होगी या नहीं, यदि ऐसा हुआ तो गये काम से। लेकिन इस चिन्ता से नीता की चिन्ता ही अधिक हो रही है। उस थोबड़ा मुँह इन्वेस्टीगेटर ने, कई दिन हुए, मेरा पीछा छोड़ दिया है, इससे नीता के बारे में सोचने का समय अधिक मिल गया है। सच कहूँ, यह सोचकर हँसी आ जाती है (उल्लू!) कि नीता की बात सोचकर मैं कहीं रो न दूँ। बार-बार एक ही बात मन में आती है, जो दरअसल कभी भी संभव न था, (स्यालदह से उतरकर

बस में चढा। मैं अब अपने घर पर नहीं रहता, चाँदनी चौक के पास किराये पर कमरा ले लिया है।) अच्छा, यदि ऐसा होता, मैं और नीता इस तरह घुल-मिल जाते, कि कभी भी बिछुड़ते नही, यानी मेरे कहने का यह मतलब नही है कि, उसे क्या कहते हैं, सेक्स एटैचमेंट या एन्जेग्मेंट हो जाता, यानी जहाँ भी रहें, एटैचमेंट के खिंचाव पर दोनों पागलों की तरह दौडकर पास आ जाएँ, देखकर लोग कहें, 'अरे साले, पियार करते है', क्योंकि वे असली बात तो जान नही पायेंगे, मैं उस तरह से 'नही बिछुड़ने की बात नही कहता। मैं कहता हूँ, (माँ कसम, कहने का साहस नही कर पा रहा हूँ।) मैं कहता हूँ कि, यदि इस तरह होता कि, दोनो एक-दूसरे से कभी भी झूठ नहीं बोलेंगे, नही, नहीं, सब जैसा कहते हैं, मैं बिलकुल वैसा ही कहना शायद नहीं चाहता, (माथा घूम रहा है, मैं आज-कल सब बातें ठीक से सोच ही नही पाता।) मैं कहता हूँ, दोनो एक-दूसरे से झूठ नही बोलने का अर्थ क्या है, इसका अर्थ है, कोई भी सुख या कोई भी दुःख, अर्थात, हाँ—जिसे 'कामना-वासना' आदि कहते हैं, जो मन के अन्दर जगती है, और डूब जाती है, जो कभी भी बाहर प्रकाश में नही आती, किसी के लिए भी सभव नहीं कि दूसरे के अन्दर का देख सके, यदि वही सब हम एक-दूसरे के सामने खोल देते, उफ्, भयानक बुरी बातें भी एक-दूसरे के बीच देख पाते, तब भी, पीछे नही हटते, क्योंकि झूठ तो केवल मुझको या केवल उसको कष्ट नही पहुँचा रहा था, दोनों को ही कष्ट दे रहा था, इसलिये डरने की कौन-सी बात थी, फिर भी जिसे कहते हैं सत्य, वह नहीं, वेश्या नहीं, प्रेमिका नही, उसे क्या कहूँ, मैं नही जानता, क्योंकि नारी के इन तीन रूपों द्वारा, जो बात मैं कहना चाहता हूँ, वह कहना सम्भव नही है, इन तीनों के लिये कोई उपाय नही है, ये तीनो ही असहाय हैं, अतएव वह सब मैं नही कहना चाहता, यदि भयहीन, लज्जाहीन, घृणाहीन (दोनो के बीच जो भी लज्जा, घृणा, भय है।) सत्य दोनों एक-दूसरे के सामने खोलकर रख पाते, अर्थात् वही स्वाधीनता, जिसके भय से मरते हैं, उसी स्वाधीनता के स्वाद के लिये ही एक-दूसरे के पास दौड़े आते, अर्थात् एकमात्र सत्य के लिये ही हम दोनो पागल होते, हाँ, जो सत्य है, यानी अगर कहें, दोनों को एक-दूसरे की जीभ की लार का स्वाद ग्रहण-योग्य है या नहीं, लेकिन वह तो रहेगा ही, क्योंकि जब जिंदा है तो, वह नहीं, मैं क्या कह रहा हूँ, शायद पागलपन की ही बात कर रहा हूँ, जैसे एटैचमेंट का पागलपन सेक्स है, उसी तरह सत्य का कोई एटैचमेंट होना, तब—अच्छा, अगर इसकी जगह मैं बात को घटना के द्वारा ही समझाऊँ—लेकिन यह क्या, मैं जो सीढियाँ चढ आया हूँ, वे कहाँ की हैं, किस मकान की हैं ये सीढियाँ?

कितने अजरज की बात है ! मैं देखता हूँ, मैं नीता के एपार्टमेंट की सीढ़ियों पर चढ़ आया हूँ, सामने ही नीता के घर का बंद दरवाजा है। इसका अर्थ क्या है, समझ नही पाता, क्या दिमाग खराब हो गया है ? वही तो, जो मैंने कहा था, मेरे अन्दर की वही जिद्द, क्योकि मेरे अन्तर की तो धारणा है कि मैंने अपनी गर्दन पर ही कोहनी बैठा दी है, (क्या कहता हूँ !) अतएव, मेरा अन्तर ही ठेलता हुआ मुझको यहाँ ले आया है।

पीछे की ओर, सीढ़ी पर पाँवों की आवाज सुनकर देखा, नहीं, चित्रा नही है, वही थोबड़ा मुँहवाला इन्वेस्टीगेटर है। सीढ़ियों पर एक बड़ी छाया डाल, थप-थप करता हुआ चढ़ा आ रहा है। कौन जाने, कहाँ से आ रहा है, शायद मेरे पीछे-पीछे ही घूम रहा था। आकर मेरे सामने खड़ा हो गया, और वही बच्चे की तरह मासूम नजरो से मेरी ओर कुछ देर देखता रहा। नही, शायद ठीक मासूम नहीं कहा जा सकता। बच्चो की आँखों में कौतुहल खत्म होने पर जो चमक होती है, वैसी ही। उसके बाद, पाकिट में हाथ डाल एक चाबी निकाली, और उसी मोटी खुष्क आवाज में कहा, 'घर खोल दूँ ?'

मैंने कहा, 'खोल दो।'

उस आदमी ने घर खोल दिया, और जैसे मेरा स्वागत कर रहा हो, ऐसा भाव बना-कर, घर में प्रवेश किया और जल्दी मे बत्ती जला दी, कारण अँधेरा हो गया था। उसके बाद खुद ही नीता के सोने के कमरे में घुसकर एक जगह खड़ा हो गया, और फिर उसने मेरी ओर देखा, जैसे मेरा अभिनन्दन कर रहा हो। मैं उसकी ओर से निगाहें हटाकर, नीता के सोने के कमरे में चला आया, भीतर आकर चारपाई के पास गया, वहाँ खड़े होकर मैंने आईने की ओर देखा। मुँह घुमाकर, कमरे में चारों ओर एक बार देखा। उस आदमी से एक बार फिर नेगी निगाहें मिली, लगा, जैसे वह भूत देख रहा हो। क्यों, मैं भूत बन गया हूँ क्या, मेरी छाया नहीं पड़ रही है क्या ? यही तो, खासी बड़ी छाया पड़ रही है, लेकिन मुझे लगा, मैं बगल के कमरे में जाये बिना नहीं रह सकूँगा। उस कमरे का दरवाजा बंद है। मुझे लगा कि, नीता वहाँ है, हालाँकि मैं जानता हूँ कि ऐसा नहीं हो सकता, फिर भी एक जिद्द है—कि नीता वहाँ है। इसीलिये मैं बगल के कमरे के दरवाजे के पास गया, और थोबड़ा मुँह ने खुद आगे आकर लगे दरवाजे को खोल दिया, जैसे माननीय विजीटर को कुछ विशेष दिखा रहा हो। मैं कमरे के अन्दर गया, और सच कहने में क्या लगा है, जैसे मुझे नीता की गंध मिली, नीता क्या वस्त्र बदल रही है, क्योंकि,—लेकिन नहीं, घर में तो

बहुत अँधेरा है, मैं वापस निकल आया। बाहर आते ही बाथरूम के दरवाजे पर मेरी निगाह पड़ी, मैं उसे खोलने ही जा रहा था, लेकिन ना, उसे छोड़ो, वरन् लकड़ी के पार्टीशन के उस पार जाऊँ, गया भी, और देखा, रेफ्रीजरेटर खामोश है, वह पुरानी दबी-दबी आवाज नहीं है, जैसे मर गया हो, फिर भी हैंडिल पकड़कर उसे खोल दिया, कुछ नहीं है, केवल जल की कुछ बोतलों के सिवा। यह उसी दिन का पानी है, या बाद में कोई रख गया है, कौन जाने। रेफ्रीजरेटर बंदकर लौटते ही देखा, थोबड़ा मुँह मेरे पीछे ही खड़ा है, लेकिन मैं बेसिन के ऊपर झुक गया, यद्यपि अब वे प्लेट आदि यहाँ नहीं हैं, जो मैंने उस दिन यहाँ पानी में डुबोकर रखी थी, (नीता का वही आखिरी भोजन था, रात को खाने के लिए बाहर जाने की बात थी।) किसने हटा दी हैं, कौन जाने। फिर भी मैंने, पता नहीं क्यों, नल खोल दिया, कल-कल शब्द के साथ पानी गिरने लगा। मैं कमरे की ओर घूमकर खड़ा हुआ, और मेरी आँखों के सामने जैसे एक झरना गिरने लगा, यह शायद वही ऊखी प्रपात होगा, वही वृक्ष के पत्तों को छू-छूकर कल-कल शब्द करता उतर रहा है, और धूप की चमक में जैसे ।

'मोटिव क्या है, इस मडर का ।'

खुश्क, दबी-दबी आवाज में पूछी गई यह शेष न होनेवाली बात मैंने जिज्ञासा के अंदाज में सुनी। मोटिव! मडर! किन्तु मोटिव, मैं भला क्या बताऊँ, फिर किस बात का मोटिव? और मर्डर, मर्डर का क्या कुछ भी मैं जानता हूँ? मैं फिर नीता के पलँग की ओर गया। लेकिन शीत ऋतु की साँझ का धुआँ जिस तरह घृणित रूप में आदमी का दम घोंट देता है, मुझे उस समय वैसा ही महसूस हुआ। मैंने एक बार फिर उस आदमी की ओर देखा, वह मेरी ही ओर ताक रहा है। ताकता रहे। मैं पीछे मुड़ा, नीता आखिरी बार जहाँ औंधी पड़ी थी, वहाँ गया, उस जगह को छूने की इच्छा हुई, जानता हूँ, अब वहाँ कुछ नहीं है, फिर भी आदमी में क्या है कि, वह न होनेवाली चीज भी पाना चाहता है, नीता तो वहीं (चादर सलीके से है, बेहद सफेद है, कहीं कोई दाग नहीं है, मानो शून्यता की तरह हाहाकार कर रही है।) थी।

पीछे आवाज सुनकर देखा, वह आदमी मुझसे सटकर खड़ा है, उसने क्या तो कहा, लेकिन उसकी बात मेरे कान तक नहीं पहुँची। उस दिन नीता किस तरह नाची थी, तब तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि बाद में वही उस तरह क्रोधित हो जायगी। मैं हाथ टेककर, पलँग पर झुक गया। मेरे कानों में फिर उसी ऊखी प्रपात का कल-कल शब्द बज उठा, धूप में चमकते नीले जल का प्रवाह मैं जैसे

प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। और ठीक तभी नीता का वही गीत, जो उसे बेहद प्रिय था, अनुवाद करने पर जिसका अर्थ होगा, 'कैक्टस की छाती पर इसी बीच धूप पड़ने लगी है,' मुझे याद आया, और मुझे लगा जैसे मैं सुन पा रहा हूँ, वह गुनगुना रही है।
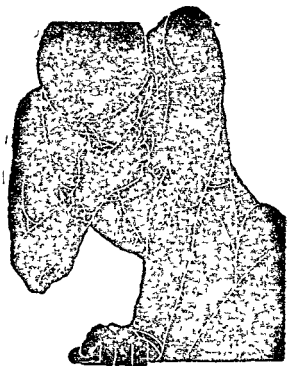
समरेश बसु

जन्म १९२३।

प्रथम कहानी 'आदाब' प्रकाशित हुई 'परिचय' में।

१९५८ मे 'आनन्द-पुरस्कार' प्राप्त हुआ।

प्रमुख ग्रन्थ उत्तरग, बी० टी० रोडेर धारे, श्रीमती काफे, अचिन पुरेर कथकता, छोटो-छोटो ठेऊ, गगा, अयनान्त, वाघिनी और सात मुबनेर पार इत्यादि।

कई उपन्यासो पर बगला मे बहु-चर्चित फिल्मे बनी हैं, और बन रही हैं। हिन्दी मे भी कुछ फिल्में निर्माणाधीन हैं।

बगला के अत्याधुनिक कथाकार समरेश बसु का प्रस्तुत उपन्यास 'विवर' बगला-कथा-साहित्य मे चर्चा और वाद-विवाद का एकान्त विषय रहा है। 'विवर' ने परम्परा - प्रिय बगला-कथा-जगत की रूढियो को, उसकी गलदश्रु भावुकता और रोमानियत को जड से हिला दिया है। चाकू के तीक्ष्ण फल की तरह इसकी कथा-वस्तु और शैली की निर्ममता और पैनेपन ने जहाँ एक ओर पुरानी विचार-धारा के प्रौढ लेखको और पाठको को अपना कटु विरोधी बना लिया है, वहीं नयी विचार-धारा के युवा लेखको और पाठको से अभूतपूर्व प्रशसा भी अर्जित की है।

अपनी रचनाओ के विषय मे इनका कथन है "जीवन के स्थूल आवरण के नीचे जो कल-पुर्जे निरन्तर घूमते रहते हैं, उन्हें हम साधारणतया देख नही पाते। किन्तु उसी के अनुसार जीवन के खेल होते रहते हैं। और इसीलिए हम उसे खोजते-खोजते मरे जा रहे हैं। इसी खोज और मरने का नाम है 'कलाकार की साधना, उसका अध्यवसाय, उसका अविश्रान्त अनुसन्धान'। हमे तो लगता है, हमारे उपन्यास और कहानियाँ इसी अविश्रान्त अनुसधान का फल हैं।"

पूर्णतया लेखन-जीवी।

पता नारिकेल बगान, नैहट्टी, २४ परगना।